द्वितीय पुष्प

कविवर बूचराज
एवं
उनके समकालीन कवि

[संवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले पाँच प्रतिनिधि
कवि बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास एव
ठक्कुरसी का जीवन परिचय, मूल्यांकन तथा
उनकी ४४ कृतियों का मूल पाठ]

लेखक एवं सम्पादक
डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

सम्पादक मण्डल :

डा० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ
डा० दरबारीलाल कोठिया, वाराणसी
पं० मिलापचन्द शास्त्री, जयपुर
डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर
प्रधान सम्पादक

निदेशक मण्डल :

संरक्षक	साहु अशोककुमार जैन, देहली
अध्यक्ष	श्री कन्हैयालाल जैन, मद्रास
उपाध्यक्ष	श्री गुलाबचन्द गंगवाल, रेनवाल (जयपुर)
	श्री अजितप्रसाद जैन ठेकेदार, देहली
	श्री कमलचन्द कासलीवाल, जयपुर
	श्री कन्हैयालाल सेठी, जयपुर
	श्री पदमचन्द तोतूका, जयपुर
	श्री फूलचन्द विनायक्या, डीमापुर
	श्री त्रिलोकचन्द कोठारी, कोटा
निदेशक	डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर

प्रकाशक : श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी
गोदीकों का रास्ता,
किशनपोल बाजार, जयपुर–३०२००३

श्रुत पंचमी
सन् १९७९

मूल्य ३० रुपये

मुद्रक मनोज प्रिन्टर्स
जयपुर ।

कविवर ब्रह्म बूचराज

कविवर ठक्कुरसी

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर, एक परिचय

जैन कवियों द्वारा हिन्दी भाषा में निबद्ध कृतियों के प्रकाशन एवं उनके मूल्यांकन की आज अतीव आवश्यकता है। देश के विश्वविद्यालयों एवं शोध सस्थानों मे जैन हिन्दी साहित्य को लेकर जो शोध कार्य हो रहा है तथा शोधार्थियों मे उस पर शोध कार्य की ओर जो रुचि जाग्रत हुई है वह यद्यपि उत्साहवर्धक है लेकिन अभी तक हिन्दी साहित्य के इतिहास मे जैन कवियों को नाम मात्र का भी स्थान प्राप्त नही हो सका है और हमारे अधिकांश कवि अज्ञात एवं अपरिचित ही बने हुए हैं। अभी तक जैन कवियो की कृतिया ग्रन्थागारों मे बन्द हैं तथा राजस्थान के शास्त्र भण्डारों को छोडकर अन्य प्रदेशों के भण्डारों के तो सूची पत्र भी प्रकाशित नही हुए हैं। देश की किसी भी प्रकाशन सस्था का इस ओर ध्यान नहीं गया और न कभी ऐसी किसी योजना को मूर्त रूप दिये जाने का सकल्प ही व्यक्त किया गया। क्योकि अधिकाश विद्वानो एव साहित्यकारो को हिन्दी जैन साहित्य की विशालता की ही जानकारी प्राप्त नहीं है।

स्थापना—इसलिए सन् १६७६ वर्ष के अन्तिम महिनों में जयपुर के विद्वान् मित्रो के सहयोग से 'श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी' सस्था की स्थापना की गयी जिसका प्रमुख उद्देश्य पञ्चवर्षीय योजना बनाकर समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागो मे प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। इन भागो मे ६० से अधिक प्रमुख जैन कवियो का विस्तृत जीवन परिचय, उनकी कृतियो का मूल्याकन एव प्रकाशन का निर्णय लिया गया। हिन्दी जैन साहित्य प्रकाशन योजना के अन्तर्गत निम्न प्रकार २० भाग प्रकाशित किये जावेंगे—

प्रकाशन योजना

१ महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एव भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति (प्रकाशित)
२ कविवर बूजराज एव उनके समकालीन कवि (प्रकाशित)
३ महाकवि ब्रह्म जिनदास एवं भ० प्रतापकीर्ति (प्रकाशनाधीन)
४. कविवर वीरचन्द एवं महिचन्द
५ विद्याभूषण, ज्ञानसागर एवं जिनदास पाण्डे
६ ब्रह्म यशोधर एवं भट्टारक ज्ञानभूषण
७. भट्टारक रत्नकीर्त्ति, कुमुदचन्द एवं समयसुन्दर
८ कविवर रूपचन्द, जगजीवन एव ब्रह्म कपूरचन्द

९. महाकवि भूधरदास एवं बुलाकीदास
१०. जोधराज गोदीका एवं हेमराज
११ महाकवि द्यानतराय एवं आनन्दघन
१२ पं० भगवतीदास एवं भाउ कवि
१३. कविवर खुशालचन्द काला एवं अजयराज पाटनी
१४ कविवर किशनसिंह, नथमल बिलाला एवं पाण्डे लालचन्द
१५ कविवर बुधजन एवं उनके समकालीन कवि
१६ कविवर नेमिचन्द्र एवं हर्षकीर्ति
१७ भैय्या भगवतीदास एवं उनके समकालीन कवि
१८. कविवर दौलतराम एवं छत्रदास
१९ मनराम, मन्ना साह एवं लोहट कवि
२० २० वीं शताब्दी के जैन कवि

उक्त २० भागो को प्रकाशित करने के लिए निम्न प्रकार एक पञ्चवर्षीय योजना बनाई गयी है—

वर्ष	पुस्तक संख्या
१९७८	३
१९७९	४
१९८०	४
१९८१	४
१९८२	५
	२०

उक्त योजना के अन्तर्गत अब तक पाच भाग प्रकाशित हो जाने चाहिए थे लेकिन प्रारम्भिक एक वर्ष योजना के क्रियान्वय के लिए आर्थिक साधन जुटाने मे लग गया और सन् १९७८ में तीन पुस्तको के स्थान पर केवल एक पुस्तक महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति" का प्रकाशन किया जा सका। प्रस्तुत पुस्तक "कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि" उसका दूसरा पुष्प है। इस वर्ष कम से कम दो भाग और प्रकाशित हो सकेंगे।

आर्थिक पक्ष—अकादमी का प्रत्येक भाग कम से कम ३०० पृष्ठो का होगा। इस प्रकार अकादमी करीब ६ हजार पृष्ठों का साहित्य प्रथम पांच वर्षों मे अपने सदस्यो को उपलब्ध करावेगी। पूरे २० भागों के प्रकाशन में करीब दो लाख रुपये व्यय होने का अनुमान है। योजना का प्रमुख आर्थिक पक्ष उसके सदस्यों द्वारा प्राप्त शुल्क होगा।

सदस्यता—अकादमी के दो प्रकार के सदस्य होंगे जो संचालन समिति के सदस्य एवं विशिष्ट सदस्य कहलायेंगे। संचालन समिति के सदस्यों की संख्या १०१ होगी जिसमे सरक्षक, अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं निदेशक के अतिरिक्त शेष सम्माननीय सदस्य होंगे। सचालन समिति का सरक्षक के लिए ५००१) रु०, अध्यक्ष एव कार्यकारी अध्यक्ष के लिए २५०१) रु०, उपाध्यक्ष के लिए १५०१) रु० तथा निदेशक एवं सम्माननीय सदस्यो के लिए ५०१) रु० अकादमी को सहायतार्थ देना रखा गया है। विशिष्ट सदस्यों से २०१) रु० लिये जावेंगे। सभी सदस्यो को अकादमी द्वारा प्रकाशित होने वाले २० भाग भेंट स्वरूप दिये जावेंगे। अब तक अकादमी की सचालन समिति के पदाधिकारियों सहित ४५ सदस्यों तथा १२५ विशिष्ट सदस्यो की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। मुझे यह सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि समाज मे साहित्य प्रकाशन की इस योजना का अच्छा स्वागत हुआ है।

पदाधिकारी - अकादमी के प्रथम सरक्षक समाज के युवक नेता साहू अशोक कुमार जैन हे जिनसे समाज भली भांति परिचित है। इसी तरह अकादमी के अध्यक्ष श्री सेठ कन्हैयालाल जी पहाडिया मद्रास वाले हैं जो अपनी सेवा के लिए उत्तर भारत से भी अधिक दक्षिण भारत मे अधिक लोकप्रिय हैं। उपाध्यक्ष के रूप में हमें अभी तक सात महानुभावो की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। सभी समाज के जाने माने व्यक्ति हैं और अपनी उदार मनोवृत्ति तथा साहित्यिक प्रेम के लिए प्रसिद्ध हैं। उपाध्यक्षो के नाम हैं सर्व श्री गुलाबचन्द जी गगवाल, रेनवाल (जयपुर) श्री अजितप्रसाद जी जैन ठेकेदार (देहली), श्री कमलचन्द जी कासलीवाल जयपुर, श्री कन्हैयालाल जी सेठी जयपुर, श्री पदमचन्द जी तोतूका जयपुर, श्री फूलचन्द जी विनायक्या डीमापुर, एवं श्री त्रिलोकचन्द जी कोठारी कोटा। इन सभी महानुभावो के हम आभारी हैं।

सहयोग—अकादमी के सदस्य बनाने के कार्य में सभी महानुभावों का सहयोग मिलता रहता है। इनमे सर्व श्री सुरेश जैन डिप्टी कलेक्टर इन्दौर, श्री मूलचन्द जी पाटनी बम्बई, डा० भागचन्द जैन दमोह, प० मिलापचन्द जी शास्त्री जयपुर, श्रीमती कोकिला सेठी जयपुर, श्री गुलाबचन्द जी गगवाल रेनवाल, प्रो० नरेन्द्र प्रकाश जैन फिरोजाबाद, वैद्य प्रभुदयाल कासलीवाल एव प० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ आदि के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि जैसे-जैसे इसके भाग छपते जावेंगे इसकी सदस्य संख्या में वृद्धि होती रहेगी। इस वर्ष के अन्त तक इसके कम से कम ३०० सदस्य बन जायें ऐसा सभी से सहयोग अपेक्षित है। सबके सहयोग के आधार पर ही अकादमी अपनी प्रथम पञ्चवर्षीय योजना मे सफल हो सकेगी ऐसा हमारा विश्वास है।

प्रथम प्रकाशन पर अभिमत—साहित्य प्रकाशन के इस यज्ञ में कितने ही विद्वानों ने सम्पादक के रूप मे और कितने ही विद्वानों ने लेखक के रूप मे अपना सहयोग देना स्वीकार किया है । अब तक ३० से भी अधिक विद्वानो की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है । अकादमी के प्रथम भाग पर राष्ट्रीय एव सामाजिक सभी पत्रो में जो समालोचना प्रकाशित हुई है उससे हमें प्रोत्साहन मिला है । यही नहीं साहित्य प्रकाशन की इस योजना को आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज, एलाचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज एव आचार्य कल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज जैसे तपस्वियो का आशीर्वाद मिला है तथा भट्टारक जी महाराज श्री चारुकीर्ति जी मूडबिद्री, एव श्रवणबेलगोला, भट्टारक जी महाराज कोल्हापुर, डा० सत्येन्द्र जी जयपुर, पडित प्रवर कैलाशचन्द जी शास्त्री, डा० दरबारीलाल जी कोठिया, डा० महेन्द्रसागर प्रचडिया, पं० मिलापचन्द जी शास्त्री एव डा० हुकमचन्द जी भारिल्ल जैसे विद्वानो ने इसके प्रकाशन की प्रशसा की है ।

भावी प्रकाशन—सन् १९७९ मे ही प्रकाशित होने वाला तीसरा पुष्प "महाकवि ब्रह्म जिनदास एव प्रतापकीर्ति" की पाण्डुलिपि तैयार है और उसे शीघ्र ही प्रेस मे दे दिया जावेगा । इसके लेखक डा० प्रेमचन्द रावका हैं । इसी तरह चतुर्थ पुष्प "महाकवि वीरचन्द एव महिचन्द" वर्ष के अन्त तक प्रकाशित हो जाने की पूरी आशा है ।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी को पजीकृत कराने की कार्यवाही चल रही है । जो इस वर्ष के अन्त तक पूर्ण हो जाने की आशा है ।

अन्त मे समाज के सभी साहित्य प्रेमियो से सादर अनुरोध है कि वे श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के अधिक से अधिक सदस्य बन कर जैन साहित्य के प्रचार प्रसार में अपना योगदान देने का कष्ट करें । हमे यह प्रयास करना चाहिए कि ये पुस्तकें देश के प्रत्येक विश्वविद्यालय मे पहुँचें जिससे वहां और भी विद्यार्थी जैन साहित्य पर शोध कार्य कर सके । यही नहीं हिन्दी जैन कवियो को हिन्दी साहित्य के इतिहास में उचित स्थान भी प्राप्त हो सके ।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक एव प्रधान सम्पादक

अध्यक्ष की कलम से

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का द्वितीय पुष्प "कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि" को पाठको के हाथ में देते हुए अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इसके पूर्व गत वर्ष इसका प्रथम पुष्प "महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीत्ति" प्रकाशित किया जा चुका है। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि अकादमी के इस प्रथम प्रकाशन का सभी क्षेत्रों मे जोरदार स्वागत हुआ है और सभी ने अकादमी की प्रकाशन योजना को अपना आशीर्वाद प्रदान किया है।

इस दूसरे पुष्प मे सवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले ५ प्रमुख जैन कवियो का प्रथम बार मूल्यांकन एव उनकी कृतियो का प्रकाशन किया गया है। इस प्रकार श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी समूचे हिन्दी जैन साहित्य को २० भागो में प्रकाशित करने के जिस उद्देश्य को लेकर स्थापित की गयी थी उसमें वह निरन्तर आगे बढ रही है। प्रथम पुष्प के समान इस पुष्प के भी लेखक एवं सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल हैं जो अकादमी के निदेशक भी हैं। डा० साहब ने बड़े परिश्रम पूर्वक राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारो मे सग्रहीत कृतियो की खोज एव अध्ययन करके उन्हें प्रथम बार प्रकाशित किया है। ४० वर्षों की अवधि मे होने वाले ५ प्रमुख कवियो—ब्रह्म बूचराज, कविवर छीहल, चतुरुमल, गारवदास एव ठक्कुरसी जैसे जैन कवियो का विस्तृत परिचय, मूल्यांकन एवं उनकी कृतियो का प्रकाशन आज अकादमी के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। ये ऐसे कवि हैं जिनके बारे मे हमे बहुत कम जानकारी थी तथा चतुरुमल एव गारवदास तो एकदम अज्ञात से थे। प्रस्तुत भाग मे डा० कासलीवाल ने पाच कवियो का तो विस्तृत परिचय दिया ही है साथ मे १३ अन्य हिन्दी जैन कवियो का भी सक्षिप्त परिचय उपस्थित करके अज्ञात कवियों को प्रकाश मे लाने का प्रशसनीय कार्य किया है। वैसे तो श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना ही डा० कासलीवाल की सूझबूझ एव सतत् साहित्य साधना का प्रतिफल है। डा० साहब ने अब तो अपना समस्त जीवन साहित्य सेवा मे ही समर्पित कर रखा है यह हमारे लिए कम गौरव की बात नहीं है।

मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी को समाज द्वारा धीरे-धीरे सहयोग मिल रहा है लेकिन अभी हमे जितने सहयोग की अपेक्षा थी

उसे हम अभी तक प्राप्त नहीं कर सके हैं। अब तक सचालन समिति की सदस्यता के लिए ४५ महानुभावों की एव विशिष्ट सदस्यता के लिए १२५ महानुभावो की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। हम चाहते हैं कि सन् १९७६ मे इसके कम से कम १०० सदस्य और बन जावें तो हमे आगे के ग्रन्थो का प्रकाशन मे सुविधा मिलेगी। अकादमी श्री साहु अशोककुमार जी जैन को सरक्षक के रूप मे पाकर तथा श्री गुलाबचन्द गगवाल रेनवाल, श्री अजितप्रसाद जैन ठेकेदार देहली, श्री सेठ कमलचन्द जी कासलीवाल जयपुर, श्री कन्हैयालाल जी सेठी जयपुर, श्रीमान् सेठ पदमचन्द जी तोतूका जौहरी जयपुर, सेठ फूलचन्द जी साहब विनायक्या डीमापुर एव त्रिलोकचन्द जी साहब कोठ्यारी कोटा, का उपाध्यक्ष के रूप मे सहयोग पाकर अकादमी गौरव का अनुभव करती है। इसलिए मेरा समाज के सभी साहित्य प्रेमियो से प्रार्थना है कि वे इस सस्था के सचालन समिति के सदस्य अथवा अधिक से अधिक सख्या मे विशिष्ट सदस्यता स्वीकार कर साहित्य प्रकाशन की इस अकादमी की असाधारण योजना के क्रियान्विति में सहयोग देकर अपूर्व पुण्य का लाभ प्राप्त करे।

इसी वर्ष हम कम से कम तृतीय एव चतुर्थ पुष्प और प्रकाशित कर सकेंगे। तीसरा पुष्प "महाकवि ब्रह्म जिनदास एव भट्टारक प्रतापकीर्त्ति" की पाण्डुलिपि तैयार है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसे हम अक्टूबर ७६ तक अवश्य प्रकाशित कर सकेंगे।

प्रस्तुत पुष्प के सम्पादक मण्डल के अन्य तीन सम्पादकों— डा० ज्योतिप्रसाद जैन लखनऊ, डा० दरबारीलाल जी कोठिया न्यायाचार्य, वाराणसी, प० मिलापचन्द जी शास्त्री जयपुर का भी मै आभारी हूँ जिन्होने डा० कासलीवाल जी को पुस्तक के सम्पादन मे सहयोग दिया है। आशा है भविष्य मे भी उनका अकादमी को इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

मद्रास

कन्हैयालाल जैन पहाड़िया

विषय-सूची

सम्पादकीय

भाषा निबद्ध पूजा-पाठो, स्तवन-बिनती-पद-भजनों, छहढाला, समाधिमरण, जोगीरासा प्रभृति पाठो, पुराणों की तथा कई एक सैद्धान्तिक एवं चारणानुयोगिक ग्रन्थो की भाषा वचानिकाओ के नित्यपाठ, स्वाध्याय अथवा शास्त्र प्रवचनो में बहुत उपयोग के कारण वर्तमान शताब्दी ई० के प्राथमिक दशको मे, कम से कम उत्तर भारत के जैनी जन मध्योत्तर कालीन अनेक हिन्दी जैन कवियो एव साहित्यकारों के नाम और कृतियो से परिचित रहते आये थे। किन्तु उस समय हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास की कोई रूपरेखा नही थी। कतिपय नाम आदि के अतिरिक्त पुरातन कवियो एव लेखको के विषय मे विशेष कुछ ज्ञात नहीं था। उनका पूर्वापर भी ज्ञात नही था। लोकप्रियता के बल पर ही उनकी रचनाओं का प्रचलन था। मुद्रणकला के प्रयोग ने भी वैसी रचनाओ के व्यापक प्रचार-प्रसार मे योग दिया। किन्तु उक्त रचनाओं का साहित्यिक मूल्याकन नही हो पाया था। जैनेतर हिन्दी जगत् तो हिन्दी जैन साहित्य से प्राय अपरिचित ही था, अत समग्र हिन्दी साहित्य मे उसका क्या कुछ स्थान है, यह प्रश्न ही नही उठा था। केवल 'मिश्रबन्धु विनोद' में कुछएक जैन कवियो का नामोल्लेख मात्र हुआ था।

जबलपुर मे हुए सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन में स्व० प० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने निबन्ध पाठ द्वारा हिन्दी जगत का ध्यान हिन्दी जैन साहित्य की ओर सर्वप्रथम आकर्षित किया। सन् १६१७ मे वह निबन्ध "हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास" नाम से पुस्तकाकार भी प्रकाशित हो गया। शनै शनै हिन्दी साहित्य के इतिहासो एव आलोचनात्मक ग्रन्थो मे जैन साहित्य की ओर भी क्वचित संकेत किये जाने लगे। शास्त्र भण्डारो की खोज चालू हुई। हस्तलिखित प्रतियो के मुद्रण-प्रकाशन का क्रम भी चलता रहा। सन् १६४७ मे स्व० बा० कामता प्रसाद जैन का 'हिन्दी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास' और सन् १६५६ में प० नेमिचन्द्र शास्त्री का 'हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन' (२ भाग) प्रकाशित हुए। विभिन्न शास्त्र भण्डारों की छानबीन और ग्रन्थ सूचियाँ प्रकाशित होने लगी। अनेकान्त, जैन सिद्धान्त भास्कर आदि पत्रिकाओ में हिन्दी के पुरातन जैन लेखकों और उनकी कृतियों पर लेख प्रकाशित होने लगे। परिणाम स्वरूप हिन्दी जैन साहित्य के अपना स्वरूप और इतिहास प्राप्त कर लिया और अनेक विश्वविद्यालयों ने पी० एच० डी० आदि के

लिए की जाने वाली शोध-खोज के लिए इस क्षेत्र की क्षमताओं एवं सम्भावनाओं को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। गत दो दशकों में लगभग आधी दर्जन स्वीकृत शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं, तथा वर्तमान में पचीसों शोध छात्र छात्राएँ हिन्दी जैन साहित्य के विविध अंगों या पक्षों पर शोध कार्य में रत हैं।

इस सब के बावजूद इस क्षेत्र में कई खटकने वाली कमियां अभी भी है, यथा—(१) हिन्दी के जैन साहित्यकारों की सूची अभी पूर्ण नहीं है—शोध खोज के फलस्वरूप उसमें कई नवीन नाम जोड़े जाने की सम्भावना है। (२) ज्ञात साहित्यकारों की भी सभी रचनाएँ ज्ञात नहीं हैं—उनमें वृद्धि होते रहने की सम्भावना है। (३) ज्ञात रचनाओं में से भी सब उपलब्ध नहीं हैं और उपलब्ध रचनाओं में से अनेक अभी भी अप्रकाशित हैं। (४) जो कृतियां प्रकाशित भी हैं उनमें से बहुभाग के सुसम्पादित स्तरीय संस्करण नहीं हैं। (५) सभी साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रमाणिक, विशद आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक प्रकाश डाला जाना अपेक्षित है। (६) रचनाओं का भी विस्तृत साहित्यिक एवं समीक्षात्मक अध्ययन अपेक्षित है, और (७) महत्वपूर्ण जैन साहित्यकारों तथा उनकी प्रमुख कृतियों का उनके समसामयिक जैनेतर हिन्दी साहित्यकारों तथा उनकी कृतियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करके उनका उचित मूल्यांकन करने और समग्र हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका समुचित स्थान निर्धारित करने की आवश्यकता है।

प्रसन्नता का विषय है कि जयपुर के साहित्य प्रेमियों ने श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना की है, जिसके प्राण सुप्रसिद्ध अनुसंधित्सु बन्धुवर डा० कस्तूरचंद जी कासलीवाल हैं। उन्हीं के उत्साहपूर्ण अध्यवसाय और श्लाघनीय सद्प्रयास से श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी उपरोक्त अभावों की बहुत कुछ पूर्ति में संलग्न हो गई प्रतीत होती है। उसका प्रथम पुष्प "महाकवि ब्रह्म रायमल्ल और भट्टारक त्रिभुवन कीर्ति" था, जिसमें उक्त दोनों साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रभूत प्रकाश डालते हुए उनकी रचनाओं को भी सुसम्पादित रूप में प्रकाशित कर दिया है। प्रस्तुत द्वितीय पुष्प में १६ वीं शती ई० के पूर्वार्ध के पांच प्रतिनिधि कवियों—ब्रह्म बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास और ठक्कुरसी के व्यक्तित्व एवं कृतीत्व पर यथासम्भव विस्तृत प्रकाश डालते हुए और सम्यक् मूल्यांकन करते हुए उनकी सभी उपलब्ध ४४ रचनाएँ भी प्रकाशित कर दी हैं। डा० कासलीवाल जी की इस अभूतपूर्व सेवा के लिए साहित्य जगत् चिरऋणी रहेगा। संवत् १५६१ से १६०० तक की अर्द्ध शती एक सन्धिकाल था। राजस्थान को छोड़कर प्रायः सम्पूर्ण उत्तर भारत में मुस्लिम शासन था। उक्त अवधि में राजधानी दिल्ली से सिकन्दर और इब्राहीम लोदी, बाबर और हुमायुं, मुगल तथा शेरशाह एवं सलीमशाह सूर ने क्रमशः शासन

किया। अपभ्रंश में साहित्य सृजन का युग समाप्त हो रहा था, और पिछले लगभग दासौ वर्षों से जो हिन्दी शनै-शनै उसका स्थान लेती आ रही थी, उसने अपने स्वरूप को स्थैर्य बहुत कुछ प्राप्त कर लिया था। मुगल सम्राट अकबर का शासन अभी प्रारम्भ नहीं हुआ था—उसके शासनकाल में ही हिन्दी जैन साहित्य का स्वर्णयुग प्रारम्भ हुआ जो अगले लगभग तीन सौ वर्ष तक चलता रहा।

अस्तु इस ग्रन्थ में चर्चित अपने युग के उक्त प्रतिनिधि कवियो का, न केवल हिन्दी जैन साहित्य के वरन् समग्र हिन्दी साहित्य के इतिहास मे अपना एक महत्व है, जिसे समझने मे अकादमी का यह प्रकाशन सहायक होगा। खोज निरन्तर चलती रहती है, और भावी लेखक अपने पूर्ववर्ती लेखको की उपलब्धियो के सहारे ही आगे बढ़ते हैं। आशा है कि श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की यह पुष्प शृंखला चालू रहेगी और हिन्दी जैन साहित्य के अध्ययन एव समुचित मूल्याकन की प्रगति में अतीव सहायक होगी। योजना की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामना है।

ज्योतिप्रसाद जैन
दरबारीलाल कोठिया
मिलापचन्द शास्त्री

लेखक की ओर से

हिन्दी साहित्य कितना विशाल एवं विविध परक है इसका अनुमान लगाना ही कठिन है। इस हिन्दी साहित्य को अंकुरित, पल्लवित एवं विकसित करने में जैन कवियो ने जो योगदान दिया है उसके शतांश का भी प्रकाशन एवं मूल्यांकन नही हो सका है। काव्य के विविध क्षेत्रो मे उन्होने जो अपनी लेखनी चलायी वह अद्भुत है। जैसे-जैसे ये अज्ञात कवि हमारे सामने आते जाते हैं हम उनके महत्व से परिचित होते जाते हैं तथा दांतो तले अ गुली दबाने लगते हैं।

प्रस्तुत पुष्प मेसंवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले ४० वर्षों के पांच प्रमुख कवियों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। ये कवि हैं—ब्रह्म बूचराज, छीहल, चतुरुमल, गारवदास एवं ठक्कुरसी। वैसे इन वर्षों मे और भी कवि हुए जिनकी संख्या १३ है। जिनका सक्षिप्त परिचय प्रारम्भ मे दिया गया है। लेकिन इन पाच कवियो को हम इन ४० वर्षों का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। इन कवियो मे से गारवदास को छोडकर किसी ने भी यद्यपि प्रबन्ध काव्य नही लिखे किन्तु उस समय की माग के अनुसार छोटे छोटे काव्यों की रचना कर जन साधारण को हिन्दी की ओर आकर्षित किया। अभी तक इन कवियों के सामान्य परिचय के अतिरिक्त न उनका विस्तृत मूल्यांकन ही हो सका तथा न उनकी मूल रचनाओं को पढ़ने का पाठको को अवसर प्राप्त हो सका। इसलिए इन कवियो द्वारा रचित सभी रचनाएँ जिनकी सख्या ४४ है प्रथम बार पाठकों के सम्मुख आ रही है। इनके अतिरिक्त इनमे से कम से कम १५ रचनाएँ तो ऐसी हैं जिनका नामोल्लेख भी प्रथम बार ही प्राप्त होगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सवत् १५६१ से १६०० तक के काल को भक्ति काल माना है किन्तु जैन कवि किसी काल अथवा सीमा विशेष में नही बधे। उन्होंने जन सामान्य को अच्छा से अच्छा साहित्य देने का प्रयास किया। ब्रह्म बूचराज रूपक काव्यों के निर्माता थे। उनका 'मयणजुज्झ' एवं 'संतोषजयतिलकु' दोनों ही सुन्दर एवं महत्वपूर्ण रूपक काव्य हैं। जिनका पाठक प्रस्तुत पुस्तक में रसास्वादन कर सकेंगे। इसी तरह बूचराज की "चेतन पुद्गल धमाल" उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में लिखी हुई बहुत ही उत्तम रचना है। चेतन एवं पुद्गल के मध्य

जो रोचक वाद-विवाद होता है और दोनो एक-दूसरे को दोषी ठहराने का प्रयास करते हैं। कवि ने एक से एक सुन्दर युक्ति द्वारा चेतन एव पुद्गल के पक्ष को प्रस्तुत किया है वह उसकी अगाध विद्वत्ता का परिचायक है साथ ही कवि के आध्यात्मिक होने का सकेत है। सारे जैन साहित्य में इस प्रकार की यह प्रथम रचना है। इन तीन कृतियो के अतिरिक्त 'नेमीश्वर का बारहमासा' लिख कर कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जैन कवि जब वियोग शृ गार काव्य लिखने बैठते हैं तो उसमें भी वे पीछे नहीं रहते। इसी तरह 'नेमिनाथ बसन्तु', 'टडाणा गीत' एवं अन्य गीत हैं। अब तक कवि की ११ कृतियों का मैंने 'राजस्थान के जैन सन्त' मे उल्लेख किया था किन्तु बडी प्रसन्नता है कि कवि की आठ और कृतियो को खोज निकाला गया है और सभी के पाठ इसमे दिये गये हैं।

इस पुष्प के द्वितीय कवि हैं छीहल, जिनके सम्बन्ध मे रामचन्द्र शुक्ल से लेकर सभी आधुनिक विद्वनो ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे चर्चा की है। छीहल कवि एक ओर "पच सहेली गीत" जैसी लौकिक रचना करते हैं तो दूसरी ओर 'बावनी' जैसी विविध विषय परक रचना लिखने में सिद्धहस्त हैं। छीहल की 'पच सहेली गीत' रचना बहुत ही मार्मिक रचना है। प्रस्तुत पुष्प मे हम छीहल की सभी छह रचनाओ को प्रकाशित कर सके हैं।

चतुरुमल तीसरे कवि हैं। कवि के अभी तक चार गीत एव एक "नेमीश्वर को उरगानो" कृति मिल सकी है। ये ग्वालियर के निवासी थे। सवत् १५७१ मे निबद्ध 'नेमीश्वर का उरगानो' कवि की सुन्दर कृति है। अब तक चतुरु की केवल एकमात्र रचना का ही उल्लेख हुआ था लेकिन अब उसके चार गीत और प्राप्त हो गये हैं जो हमारे इस पुष्प की शोभा बढ़ा रहे हैं।

गारवदास हमारे चतुर्थ कवि हैं जिनकी एकमात्र रचना "यशोधर चौपई" अभी तक प्राप्त हो सकी है। लेकिन यह एक रचना ही उनकी अमर यशोगाथा के लिए पर्याप्त है। महाकवि तुलसी के रामचरित मानस के पूरे १०० वर्ष पूर्व चौपई छन्द में निबद्ध यशोधर चौपई हिन्दी की बेजोड रचना है। अभी तक गारवदास हिन्दी जगत् के लिये ही नही, जैन जगत् के लिए भी अज्ञात से ही थे। चौपई में ५४० पद्य हैं जिनमे कुछ सस्कृत एव प्राकृत गाथाएँ भी हैं।

ठक्कुरसी इस पुष्प के पांचवें एव अन्तिम कवि हैं। ठक्कुरसी ढूढाहड प्रदेश के प्रमुख नगर चम्पावती के निवासी थे। इनके पिता घेल्ह भी कवि थे। इसलिए ठक्कुरसी को काव्य रचना की रुचि जन्म से ही मिली थी। ठक्कुरसी की अभी तक १२ रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें "मेघमाला कहा" अपभ्रंश की कृति है बाकी सब

राजस्थानी भाषा की कृतिया हैं। कवि की ७ रचनाओं के नाम जो प्रथम बार सुनने को मिलेंगे। कवि की पञ्चेन्द्रिय वेलि, नेमिराजमति वेलि एव कृपण छन्द, पार्श्वनाथ सकुन सत्ताबीसी, सप्त व्यसन वेलि बहुत ही लोकप्रिय रचनाएँ हैं।

उक्त पाच प्रतिनिधि कवियो के अतिरिक्त सवत् १५६१ से १६०० तक होने वाले कविवर विमलमूर्त्ति, मेलिग, प० धर्मदास, भ० शुभचन्द्र, ब्रह्म यशोधर, ईश्वर सूरि, बालचन्द, राजहस उपाध्याय, धर्मसमुद्र, सहजसुन्दर, पार्श्वचन्द्र सूरि, भक्तिलाभ एव विनय समुद्र का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस प्रकार ४० वर्षों में देश में करीब १८ जैन कवि हुए जिन्होने जैन साहित्य की महत्वपूर्ण सेवा की।

इस प्रकार प्रस्तुत पुष्प मे पाच कवियो का जीवन परिचय, उनकी कृतियो का मूल्याकन एव उनकी कृतियो के पूरे पाठ दिये गये हैं जिनकी सख्या ४४ है। ये सभी रचनाएँ भाषा एव शैली की दृष्टि से अपने समय की प्रमुख रचनाएँ है जिनमे सामाजिक, आर्थिक एव राजनैतिक सभी पक्षो के दर्शन होते हैं। सामाजिक कृतियो मे 'पञ्च सहेली गीत', 'मयणजुज्झ', 'सन्तोष जयतिलकु', 'सप्त व्यसन वेलि' के नाम उल्लेखनीय हैं जिनमे तत्कालीन समाज की दशा का सजीव वर्णन किया गया है। 'कृपण छन्द' सुन्दर सामाजिक रचना है जिसमे एक कृपण व्यक्ति का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त उस समय की प्रचलित सामाजिक रीति रिवाज, जैसे सामूहिक ज्योनार, यात्रा सघ निकालना आदि का वर्णन उपलब्ध होता है। राजनैतिक दृष्टि से 'पारसनाथ सकुन सत्ताबीसी' का नाम लिया जा सकता है जिसमे मुस्लिम आक्रमण के समय होने वाली भगदड, अशान्ति का वर्णन है। साथ ही ऐसे समय मे भी जिनेन्द्र भक्ति से ही अशान्ति निवारण की कल्पना ही नही अपितु उसी का सहारा लिया जाता था इसका भी उल्लेख मिलता है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन मे श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी का विशेषत उसके संरक्षक, अध्यक्ष, उपाध्यक्षो तथा सभी माननीय सदस्यो का मैं पूर्ण आभारी हूँ जिनके सहयोग के कारण ही हम प्रकाशन योजना मे आगे बढ़ सके हैं। हिन्दी जैन कवियो के मूल्यांकन एव उनकी मूल रचनाओ के प्रकाशन का यह प्रथम योजनाबद्ध प्रयास है। आशा है समाज के सभी महानुभावो की शुभकामनाओं एव आशीर्वाद से इसमे हम सफल होगे।

मैं सम्पादक मण्डल के सभी तीनों विद्वान सम्पादको—आदरणीय डा० ज्योतिप्रसाद जी जैन लखनऊ, डा० दरबारीलाल जी सा० कोठिया वाराणसी एव प० मिलापचन्द जी सा० शास्त्री जयपुर का, उनके पूर्ण सहयोग के लिए आभारी हूँ। डा० कोठिया सा० तो अकादमी की सचालन समिति के भी माननीय सदस्य हैं।

तीनों ही सम्पादकों का अकादमी की योजना को आशीर्वाद प्राप्त है तथा समय-समय पर उनसे सम्पादन के अतिरिक्त सदस्यता अभियान मे सहयोग मिलता रहा है ।

सम्पादन के लिए पाण्डुलिपियां उपलब्ध कराने में श्रीमान् केशरीलाल जी गगवाल बूंदी का मैं पूर्ण आभारी हूँ । जिन्होंने नागदी मन्दिर बूंदी का गुटका उपलब्ध कराकर ब्रह्म बूचराज की अधिकांश रचनाओ के सम्पादन से पूर्ण सहयोग दिया । इसी तरह श्री लूणकरण जी पाण्ड्या के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री मिलापचन्द जी बागायत वाले, शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर तेरहपन्थी के व्यवस्थापक श्री प्रेमचन्द जी सोगानी, शास्त्र भण्डार मन्दिर गोधान के व्यवस्थापक श्री राजमल जी सघी तथा शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर पाटोदियान के व्यवस्थापक श्री भवरलाल जी बज तथा शास्त्र भण्डार पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर के व्यवस्थापक श्री अनूपचन्द जी दीवान का मैं पूर्ण आभारी हूँ जिन्होने पाण्डुलिपियां उपलब्ध करवाकर उसके सम्पादन एव प्रकाशन मे योग दिया है । अजमेर के भट्टारकीय मन्दिर के श्री माणकचन्द जी सोगानी एडवोकेट का भी मै पूर्ण रूप से आभारी हूँ जिन्होने अजमेर के भट्टारकीय भण्डार से ग्रन्थ उपलब्ध कराये ।

मैं श्रीमती कोकिला सेठी एम० ए० रिसर्च स्कालर का, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक की 'शब्दानुक्रमणिका तैयार की, आभारी हूँ । अन्त मे मनोज प्रिटर्स के व्यवस्थापक श्री रमेशचन्द जी जैन का आभारी हूँ जिन्होने पुस्तक की अत्यन्त सुन्दर ढग से छपाई की है ।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

१

कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि

इतिहास

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सवत् १५६० से सवत् १६०० तक के काल को किसी विशिष्ट नाम से सम्बोधित नही करके उसे भक्ति काल मे ही समाहित किया गया है । इस भक्तिकाल मे निर्गुण भक्ति एव सगुण भक्ति इन दोनो की ही प्रधानता रही और दोनो ही धाराओ के कवि होते रहे । इस समय देश में एक ओर अष्ट छाप के कवियों की सगुण भक्ति धारा की गगा बह रही थी तो दूसरी ओर महाकवि कबीर की निर्गुण भक्ति का प्रभाव भी जन सामान्य पर छाया हुआ था । सवत् १५६० से १६०० तक के ४० वर्ष के काल मे १५ से भी अधिक वैष्णव कवि हुए जिन्होंने अष्ट छाप की कविता के ढग पर कृष्ण भक्ति से ओतप्रोत कृतियो को निबद्ध किया । भक्ति धारा को प्रवाहित करने वाले ऐसे कवियों मे नरवाहन (स० १५६५), हितकृष्ण गोस्वामी (स० १५६७), गोपीनाथ (स० १५६८), विट्ठलदास (स १५६८), गजबेग भट्ट (स० १५६६), महाराजा केशव (स० १५६६), मलिक मुहम्मद जायसी (स० १५६३), मझन (स० १५६७), लालदास (स० १५८५–८८), स्वामी निपट निरजन (स० १५६५), गोस्वामी विट्ठलनाथ (स० १५६५), कृपाराम (स० १५६८) के नाम उल्लेखनीय हैं ।[1]

लेकिन इन ४० वर्षों में जैन हिन्दी कवियों की सख्या जैनेतर कवियो से भी अधिक रही । मिश्र बन्धु विनोद ने ऐसे कवियों मे ईश्वरसूरि, छीहल, धारबदास जैन, अकुरसी एव बालचन्द ये पाच नाम गिनाये हैं ।

"हिन्दी रासो काव्य परम्परा" मे जिन जैन कवियों की रासा कृतियों का उल्लेख किया गया है उनमे उदयभानु, विमल मूर्त्ति, मेलिग, मुनि चन्द्रलाभ, सिवसुख सहजसुन्दर एव पार्श्वचन्द्र सूरि के नाम उल्लेखनीय हैं । लेकिन उक्त जैन कवियों के अतिरिक्त भ० ज्ञानभूषण, ब्रह्म बूचराज, ब्रह्म यशोधर, भ० शुभचन्द्र, चतुरुमल,

---

१ विस्तृत परिचय के लिए देखिये मिश्रबन्धु विनोद पृष्ठ १३० से १५० ।

धर्मदास, पूनो जैसे और भी प्रसिद्ध जैन कवि हुए, जिन्होंने हिन्दी भाषा में कितनी ही रचनाएँ निबद्ध की और उसके प्रचार प्रसार में अपना पूर्ण योग दिया। जैन कवि किसी काल विशेष की धारा में नही बहे। वे जनरुचि के अनुसार हिन्दी मे काव्य रचना करते रहे। प्रारम्भ में उन्होंने रास काव्य लिखे। रास काव्य लिखने की यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से १७ वी शताब्दी तक चलती रही। १६ वीं शताब्दी के प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध तक महाकवि ब्रह्म जिनदास अकेले ने पचास से भी अधिक रासकाव्यो की रचना करके एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। जैन कवि रास काव्यों के अतिरिक्त फागु, वेलि एव चरित काव्य भी लिखते रहे। सवत् १३५४ मे लिखित जिणदत्त चरित तथा सवत् १४११ मे निबद्ध प्रद्युम्न चरित जैसे काव्य इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है।

सवत् १५६० से १६०० तक का ४० वर्षों का काल लघु काव्यो की रचनाओ का काल रहा। इन वर्षों मे होने वाले बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु एव गारवदास सभी ने छोटे-छोटे काव्य लिखकर जन सामान्य मे हिन्दी भाषा के प्रति रुचि जागृत की। इन वर्षों के जैन कवि दोनो ही वर्ग के रहे। यदि भट्टारक ज्ञानभूषण शुभचन्द्र, बूचराज यशोधर एव सहजसुन्दर सन्त थे तो छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु जैसे कवि श्रावक थे। सभी कवि एक ही धारा मे बहे। उन्होने या तो उपदेशात्मक काव्य लिखे, नेमिराजुल मे सम्बन्धित विरहात्मक बारहमासा लिखे या फिर रूपक काव्य एव सवादात्मक काव्य लिखे। उन्होने मानव की बुराइयो की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया। बावनियो के माध्यम से विविध विषयो की उनमे चर्चा की। यद्यपि इन ४० वर्षों मे सगुण भक्ति धारा का अधिक जोर था और उत्तर भारत मे उसने घर-घर मे अपने पाव जमा लिए थे। लेकिन अभी जैन कवि उससे अछूते ही थे। उन्होने पद लिखना तो प्रारम्भ कर दिया था, लेकिन तीर्थंकर भक्ति मे वे इतने अधिक प्रवेश नही कर पाये थे। इसलिए इन वर्षों मे भक्ति साहित्य अधिक नही लिखा जा सका।

फिर भी चालीस वर्षों मे बूचराज, ठक्कुरसी, छीहल जैसे श्रेष्ठ कवि हुए। जिन्होंने अपनी रचनाओ के माध्यम से हिन्दी साहित्य मे अपना स्थान बनाये रखा तथा आगे आने वाले कवियो के लिए मार्ग दर्शन का कार्य किया। प्रस्तुत भाग मे ब्रह्म बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, चतुरु एव गारवदास का जीवन परिचय, मूल्याकन एव उनके काव्य पाठ दिये जा रहे हैं। इसलिए उक्त कवियों के अतिरिक्त अवशिष्ट जैन कवियों का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है।

१. विमल मूर्त्ति

विमल मूर्त्ति कृत पुण्यसार रास संवत् १५७१ की रचना है ।[1] इसे कवि ने घू घक नगर में समाप्त किया था । विमलमूर्त्ति आगमगच्छ के हेमरत्न सूरि के शिष्य थे ।[2] रास का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि—

केवल ज्ञान अलकारी सेवइ अमर नरेस
सयल जनु हितकारी जिणवाणी पमणेस
हेमसूरि गुरु बुझिविउ कुमारपाल भूपाल
जेह समु जगि को नहीं जीव दया प्रतिपाल

अन्त—

तसु सानिध्यइ ए अवकास
साभलता हुइ पुण्य प्रकास ।।८३।।

२ मेलिग

मेलिग कवि १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे । वे तपागच्छ के मुनि सुन्दरसूरि के शिष्य थे । उन्ही की आज्ञा से उन्होने प्रस्तुत रास की रचना की थी ।[3] सवत् १५७१ मे इन्होने 'सुदर्शन रास' की रचना अपने गुरु की आज्ञा से समाप्त की थी । सुदर्शन रास की एक प्रति पाटण के जैन भण्डार मे तथा एक राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान मे सुरक्षित है ।[3]

---

१ सवत् पनर एकोतरइ पोस वदि इग्यारसि अतरइ ।
घू घकइ पुरि पास समध्य, सोमवार रचिउ अवध्य ।।८०।।
हिन्दी रासो काव्य परम्परा, पृष्ठ स० १६१ ।

२ आगम गछ प्रकास दिणद
श्री हेमरत्न गुरु सूरि गुणचन्द ।।८१।।
हिन्दी रासो काव्य परम्परा पृष्ठ स० १६१

३ सवत पनर एकोतरइ एम्हा, जेठह वदि विशुद्ध-सुदि ।
पुष्य नक्षत्र गुरु वारिसें ए म्हा चरित्र ए पुहवि प्रसिद्ध सुदि ।।२२२।।

३ आदि भाग—पहिलउ प्रणमिसु अनुकमिहए जिणवर चुवीस ।
पछइ शासीन देवताए तहि नामु सीस ।

क्रमश

३. प० धर्मदास

प० धर्मदास उन कवियों में से हैं जिनके साहित्य और जीवन से हिन्दी जगत अपरिचित सा है। हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास में भी इनका केवल नामोल्लेख ही हुआ है। धर्मदास का जन्म कब और कहां हुआ था इसका उल्लेख न तो स्वय कवि ने ही अपनी रचना में किया है और न अन्यत्र ही मिलता है। लेकिन सवत् १५७८ वैशाख सुदि ३ बुधवार के दिन इन्होंने 'धर्मोपदेशश्रावकाचार' को समाप्त किया था।[1] इस आधार पर इनके जन्म काल का अनुमान किया जा सकता है। कवि की अभी तक एक ही रचना मिल सकी है। अत यह सम्भव है कि उन्होने यही एक रचना लिखी हो।

धर्मदास ने सम्पन्न घराने मे जन्म लिया था। इनके वशज दानी परोपकारी तथा दयावान थे। य 'साहु' कहलाते थे। साहु शब्द प्राचीन काल मे प्रतिष्ठित और धनाढ्य पुरुषों के लिए प्रयोग हुआ है तथा जो साहूकारी का कार्य करते थे वे भी साहू कहलाते थे। कवि के पिता का नाम रामदास और माता का नाम शिवी था। इनके पितामह का नाम 'पदम' था। ये विद्वान् तथा चतुर पुरुष समझे जाते थे। सज्जनता इनमे कूट-कूट कर भरी हुई थी। स्वय विधाता ने ही मानो इनको परोपकारी बनाया था। देश-देश के बहुत से मित्र इनसे सभी प्रकारके कार्यों के लिए सलाह लिया करते थे। ये कवियो और विद्वानों को खूब सम्मान देते थे। कवि की वशावली इस प्रकार है[2]—

समरीअ सामिणि सारदा सामिणि सभाव।
मागइ पालउ प्रतिपय कवितए काउ॥

अन्त भाग—शील प्रबन्ध जे सांभलिए ए म्हा' ते नर नारि धनधन्न सु।
सुदर्शन रिषि कवलीए म्हा चउविह सघ सुप्रसन्न॥२५॥

१ पन्द्रहसै अट्ठहत्तरि वरिसु सवच्छर कुसलह कन सरसु।
निर्मल वैशाखी अखतीज बुधवार गुणियहु जानीज॥

२ जिन पय भसउ होरिल साहू, सो जु दान पुज कौ चाहू।
तासु तू मनु सत्य बस गेहू, धर्मसील बल जानेहू।
तासु पुत्र जेठौ करमसी, जिनमति सुमति जासु मन बसी।
दया आदि दे धर्म हि लीन परम विवेकी पाप विहीन।

क्रमश

हीरिल साहू
↓
करमसी
↓
पदम
↓
रामदास
↓
धर्मदास

धर्मदास को जैन धर्म पर दृढ़ श्रद्धान था। वह शुद्ध श्रावक था तथा श्रावक धर्म को जीवन मे उतार लिया था। यद्यपि कवि गृहस्थ था। व्यापार करके आजीविकोपार्जन करता था फिर भी उसका अधिक समय शास्त्रो के पठन-पाठन मे व्यतीत होता था।

जैनधर्म सेवै नित्त, अरु दहु लक्षण भाव पवित्त।
नित निर्ग्रन्थ गुरनि मांनउ, जिन आगम कहू पठतु सुंनहू।

धर्मोपदेशश्रावकाचार मे दैनिक जीवन में जन साधारण के मन में उतारने योग्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण के अतिरिक्त आठ मद, दस धर्म, बारह भावना और सप्त व्यसन पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

कवि ने रचना मे अपना कोई पांडित्य का प्रदर्शन नहीं करके साधारण भाषा मे विषय का वर्णन किया है। शब्दो को तोड़ मरोड़ कर प्रयोग करने की आदत कवि में नहीं पायी जाती और न आलकारिक भाषा मे पाठको के चित्त को उलझन मे डालने की चेष्टा की गयी है।

पदम नाम ताकै भो पूत, कवियनु सेवकु कला सजूत।
अवर बहुत गुन गहिर समान, महा सुमति अति चतुर सुजानु।
अरु सो सज्जनता गुण लीन, पर उपगारी जिनमा कीन।
बहू मित्री तस मनकि कोइ, सलहू हो देस देस को लोइ।
राम सिवी तसू तनिय कलत्त, परम सील बे पस्य पवित्र।
तासु उवर सुत उपनी वेवि, जिनु तिजि प्रवचन चालहि ते वि।
जै को धर्म जिनुह सिरमनी, जिहि वर राम अवांमनी।
चयालीन जिनवर पय धुनी, पर पायो अनु धूलि सम गिनै।

ससारी जीव का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है जो युवावस्था मे विलासिता में फसा रहता है, इन्द्रियो ने जिस पर विजय प्राप्त करली है जिसका जीवन इन्द्रियों की लालसा तथा वासना को पूर्ण करने मे ही व्यतीत होता है। ऐसा मनुष्य ससारी कहलाने योग्य है उस मनुष्य को लौकिक जीवन के सुधारने मे कभी सफलता नही मिलती ।

राग लीन जीवन महि रहे इन्द्री जिते परीसा सहै।
ता कहू सिद्धि कदाचित होइ ससारी तिन जानहु सोइ ॥

पण्डित अथवा विवेकी मनुष्य वही है जो पुत्र, मित्र, स्त्री, धन आदि पर अनुचित मोह नही करता है तथा उनके उपयोग के अनुसार ही उन पर मोह करता है—

पुत्र, मित्र नारी धन धानु, बधु सरीर जु कुल असमान।
अवरु प्रीय वस्तु अनुसरै ता पर राग न पण्डित करै।

वेश्यागमन मनुष्य के लिए अति भयकर है। वह उसे कर्त्तव्य मार्ग से विमुख कर देता है। इस जीवन को तो दुखमय बना ही देता है किन्तु पारलौकिक जीवन को भी दुख मे डाल देता है। सच्चरित्र पुरुष वेश्या के पास जाते हुए डरते हैं। क्योकि व्यसनो मे फसाना ही उसका काम होता है—

वेश्या सग धर्म को हरै, वेश्या सग नर्क को करै।
जाते होइ सुगति को भगु, नहि ते तज नौ वेश्या सगु ॥

मनुष्य जीवन बार-बार नही मिलता। जो इस जीवन का सदुपयोग नही करता उसको अन्त मे पश्चाताप के सिवा कुछ नहीं मिलता। जैसे समुद्र मे फेंके गये माणक को फिर से प्राप्त करना मुश्किल है उसी प्रकार मनुष्य जीवन दुर्लभ है। लेकिन प्राप्त हुए मानव जीवन को व्यर्थ खोना सबसे बड़ी मूर्खता है। वह मनुष्य उस मूर्ख के समान है जो हाथ मे आये हुए माणक को कौए को उडाने मे फेंक देता है—

समुद माइ माणिक गिरि जाइ, बूडत उछरत हाथ चडाइ।
पुनु सो काग उडावन काज, राख्यौ रतन मूढ वे काज।
तैम जीव भव सागर माहि, पायो मानुस जन्म अनाहि।

श्रेष्ठ मनुष्यो की सगति ही जीवन को उन्नत करती है। कुसगति से मनुष्य व्यसनी बन जाता है। कुसगति से गुणी-निर्गुणी, साधु असाधु तथा धर्मात्मा पापी बन जाता है। यह उस दावानल के समान है जो हरे-भरे वन को जला कर राख कर देती है।

ज्वरी मांसाहारी जीव अवगनु, जिन्हि चोरी की भीव।
पर तिय लीन करहि मद पान, तिन सौं सत्रुन दूजो आन।
करै कुमित्र सगु जो कोइ, गुनवन्तौ जो निर्गुण होइ।
सूलै दाद सग ज्यौ हर्‌यो दावानल महि पुनु सो मर्‌यो।

इस प्रकार कवि समाज के शिक्षक के रूप मे हमारे समक्ष आता है। उसने यह दर्शाया है कि गृहस्थी रहकर भी मानव अपने जीवन को उन्नत बना सकता है। उसे साधु सन्यासी बनने की आवश्यकता नही है।

कवि की रचना मे ब्रजभाषा तथा अवधी भाषा के शब्दो का प्रयोग अधिक हुआ है। इससे तत्कालीन हिन्दी साहित्य पर उक्त दोनो भाषाओ का प्रभाव झलकता है। अलकारिक भाषा न होते हुए भी उदाहरणों के प्रयोग से रचना सुन्दर बन गयी है।

४. भट्टारक शुभचन्द्र

शुभचन्द्र भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। वे अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक, साहित्य प्रेमी, धर्म प्रचारक एव शास्त्रों के प्रबल विद्वान थे। इनका जन्म सवत् १५३०–४० के मध्य हुआ था। जब वे बालक थे तभी इनका भट्टारको से सम्पर्क हो गया। पहले इन्होने सस्कृत एव प्राकृत के ग्रन्थो का गहन अध्ययन किया। तत्पश्चात् व्याकरण एव छन्द शास्त्र मे निपुणता प्राप्त की।

सवत् १५७३ मे ये भट्टारक के सम्माननीय पद पर आसीन हो गये। इनकी कीर्ति धीरे-धीरे देश मे फैल गयी। ये राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, पजाब एव उत्तर प्रदेश सभी प्रदेशो मे लोकप्रिय बन गये। ये वक्तृत्व कला मे पटु तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले सन्त थे। इन्होने जो साहित्य-सेवा की थी वह अभूतपूर्व एव अद्वितीय है। भट्टारक के उत्तरदायित्व एव सम्माननीय पद पर होते हुए भी इनका विशाल साहित्य सर्जन अनुकरणीय है।

शुभचन्द्र ४० वर्षों तक भट्टारक पद पर रहे। चालीस वर्षों मे इन्होने सस्कृत की ४० रचनाए एव हिन्दी की ७ रचनाओ का सर्जन किया। हिन्दी रचनाओ मे "तत्वसार दूहा", "दान छन्द", "गुरु छन्द", "महावीर छन्द', नेमिनाथ छन्द, विजयकीर्ति छन्द एव अष्टाह्निका गीत के नाम उल्लेखनीय हैं। तत्वसार दूहा के अतिरिक्त सभी लघु कृतिया हैं। तत्वसार दूहा सैद्धान्तिक रचना है, जो जैन सिद्धान्त पर आधारित है। इसमे ९१ दूहे हैं। इसे श्रावक दुलहा के अनुरोध से लिखा था। महावीर छन्द मे २७ पद्य हैं, इसी तरह विजयकीर्ति छन्द मे २६ पद्य हैं। गुरु छन्द

में ११ तथा नेमिनाथ छन्द में २५ पद्य हैं।[1]

५ ब्रह्म यशोधर

ब्रह्म यशोधर का जन्म कब और कहाँ हुआ इस विषय में कोई निश्चित जानकारी उपलब्ध नही होती। लेकिन एक तो ये भट्टारक सोमकीर्ति (सवत् १५२६ से १५४०) के शिष्य थे तथा दूसरी इनकी रचनाओं मे सवत् १५८१ एव १५८५ ये दो रचना-काल दिये हुए हैं इसलिए इनका समय भी सवत् १५४० से १६०० तक के मध्य तक निश्चित किया जा सकता है। इनकी रचनाओं वाला एक गुटका नैणवा (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार मे उपलब्ध हुआ है। उसमे इनकी बहुत सी रचनाए दी हुई हैं तथा वह इनके स्वय के हाथ का लिखा हुआ है।

अब तक कवि के नेमिनाथ गीत (तीन) मल्लिनाथ गीत, बलिभद्र चौपई के अतिरिक्त अन्य कितने ही गीत उपलब्ध हुए हैं, जो विभिन्न शास्त्र भण्डारों मे सग्रहीत हैं। बलिभद्र चौपई इनकी सबसे बडी कृति है जो १८६ पद्यो मे समाप्त होती है। कवि ने इसे सवत् १५८५ में स्कन्ध नगर के अजितनाथ के मन्दिर मे पूर्ण की थी। कवि की सभी रचनाए भाव भाषा एव शैली की दृष्टि से उच्चस्तरीय रचनाए हैं।[2]

६ ईश्वर सूरि

ये शान्ति सूरि के शिष्य थे। इनकी एकमात्र कृति 'ललिताङ्ग चरित्र' का उल्लेख मिश्रबन्धु ने किया है।[3] ललिताङ्ग चरित्र का रचना काल सवत् १५६१ है।

सालकार समत्थ सच्छन्द सरस सुगुण सजुत।
ललियग कम चरिय ललणा ललियव निसुणेह।
महि महति मालव देस घण कणय लच्छि निवेस।
तिह नयर माडव दुग्ग अहि नवउ जाणकि सग्ग।
नव रस विलास उल्लोल नवगाह गेह कलोल।
निज बुद्धि बहुअ बिनाणि, गुरु धम्म कफ बहु आणि।

---

१ कवि का विस्तृत परिचय के लिए देखिये लेखक की कृति "वीर शासन के प्रभावक आचार्य"—पृष्ठ सख्या १७८ से १८८ तक।

२ विशेष परिचय के लिए लेखक की कृति—'राजस्थान के जैन सन्त–व्यक्तित्व एव कृतित्व' पृष्ठ सख्या ८३ से ९२।

३ मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ सख्या १३४।

इय पुण्य चरिय सबन्ध ललिअग नृप सबंध ।
पढ़ पास चरियह चित्त उद्धरिय एह चरित्त ॥

७. बालचन्द्र

इन्होंने सवत् १५८० में राम-सीता चरित्र की रचना की थी ।[1]

८ राजशील उपाध्याय

खतरगच्छ के साधु हर्ष के शिष्य थे । इन्होंने सवत् १५६३ मे चित्तौड़ नगर मे 'विक्रम चरित्र चौपई' की रचना की थी । रचना काल एव रचना स्थान का वर्णन निम्न प्रकार दिया हुआ है ।[2]

पनरसह त्रिसठी सुविचारी जेठ मासि उज्जल पाखि सारी ।
चित्रकूट गढ तास मझाई भणता भवियण जय जयकारी ।

९ वाचक धर्मसमुद्र

धर्मसमुद्र वाचक विवेकसिंह के शिष्य थे । अब तक इनकी निम्न रचनाएं प्राप्त हो चुकी हैं[3]—

सुमित्रकुमार रास — सवत् १५६७
गुणाकर चौपई — सवत् १५७३
कुलध्वज कुमार — सवत् १५८४
सुदर्शन रास —
सज्झाय —

१०. सहजसुन्दर

ये उपाध्याय रत्नसमुद्र के शिष्य थे । सवत् १५७० से १५९६ तक लिखी हुई इनकी २० रचनायें प्राप्त होती हैं । इनमे इलातीपुत्र सज्झाय, गुणरत्नाकर छन्द (स० १५७२), ऋषिदत्ता रास, आत्मराग रास के नाम उल्लेखनीय है ।

११. पार्श्वचन्द्र सूरि

पार्श्वचन्द्र सूरि का राजस्थानी जैन कवियों में उल्लेखनीय स्थान है । इन्हीं के नाम से पार्श्वचन्द्र गच्छ प्रसिद्ध हुआ था । ९ वर्ष की आयु मे ये मुनि बन गए ।

---

१ मिश्रबन्धु विनोद, पृष्ठ सख्या १४४ ।
२ राजस्थान का जैन साहित्य, पृष्ठ सख्या १३२ ।
३ राजस्थान का जैन साहित्य, पृष्ठ सख्या १७३ ।

गहन अध्ययन के पश्चात् १७ वर्ष की आयु में ये उपाध्याय बन गये। अब २८ वर्ष के थे तो ये आचार्य पद से सम्मानित किये गये। साहित्य निर्माण मे इन्होने गहन रुचि ली और पर्याप्त सख्या मे ग्रन्थ निर्माण करके एक कीर्तिमान स्थापित किया। इनकी भाषा टीकायें प्रसिद्ध हैं जिनमे राजस्थानी गद्य के दर्शन होते हैं।[1] सवत् १५६७ मे इन्होने वस्तुपाल तेजपाल रास की रचना समाप्त की थी।[2]

१२ भक्तिलाभ एव चारुचन्द्र

भक्तिलाभ एव चारुचन्द्र दोनो गुरु शिष्य थे। राजस्थानी भाषा मे इन्होने कितने ही स्तवन लिखे थे। ये सस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। चारुचन्द्र ने सवत् १५७२ मे बीकानेर मे उत्तमकुमार चरित्र की रचना की थी।[3]

१३ वाचक विनयसमुद्र

ये उपकेशीय गच्छ वाचक हर्षसमुद्र के शिष्य थे। अब तक इनकी ३० रचनाए उपलब्ध हो चुकी है जिनका रचना काल सवत् १५८३ से १६१४ तक का है। इनकी विक्रम पचदड चौपई (स० १५८३) आराम शोभा चौपई (स० १५८३) अम्बड चौपई (स० १५९९) मृगावती चौपई (स० १६०२) पद्मावती रास (स० १६०४) पद्म चरित्र (स० १६०४) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[4]

उक्त कवियो के अतिरिक्त इन ४० वर्षों मे और भी जैन कवि हुये हैं जिन्होने हिन्दी मे विपुल साहित्य का निर्माण किया था। देश के विभिन्न शास्त्र भण्डारो मे ऐसे कवियो की खोज जारी है।

ब्रह्म बूचराज

कविवर ब्रह्म बूचराज विक्रम की १६ वी शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे। वे भट्टारकीय परम्परा के साधु थे तथा ब्रह्मचारी पद को सुशोभित करते थे। कवि ने अपना सबसे अधिक जीवन राजस्थान मे ही व्यतीत किया था और एक स्थान से दूसरे स्थान पर बराबर विहार करके यहाँ की साहित्यिक जाग्रति मे अपना योग दिया था। रूपक काव्यो के निर्माण मे उन्होने सबसे अधिक रुचि ली साथ ही जन सामान्य मे अपने काव्यो के माध्यम से आध्यात्मिकता का प्रचार प्रसार किया।

---

१ राजस्थान का जैन साहित्य पृष्ठ १७३।

२ हिन्दी रासो काव्य परम्परा-पृष्ठ १९६-९७।

३ राजस्थान का जैन साहित्य पृष्ठ १७३।

४ विस्तृत परिचय के लिए—राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल—पृष्ठ ६६-७६

ब्रह्म बूचराज भट्टारक भुवनकीर्ति के शिष्य थे ।[1] जो अपने समय के सम्माननीय भट्टारक थे । वे सकलकीर्ति जैसे भट्टारक के पश्चात् भट्टारक पद पर विराजमान हुए थे । बूचराज ने भुवनकीर्ति गीत में भट्टारक रत्नकीर्ति का भी उल्लेख किया है जिससे ज्ञान पड़ता है कि कवि को अपने अन्तिम समय में कभी-कभी भट्टारक रत्नकीर्ति के पास रहने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था । इसीलिए उन्होंने भुवनकीर्ति गीत मे 'बूचराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटिह सगु कलिया सुरतरो" रत्नकीर्ति के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है ।

कवि राजस्थानी विद्वान थे । लेकिन इनका पर्याप्त समय पजाब के नगरो मे व्यतीत हुआ था । इन्होने स्वय अपने जन्म-स्थान, माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा, आयु आदि के बारे मे कुछ भी परिचय नही दिया । इनकी अधिकांश रचनाएँ राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे ही उपलब्ध हुई है । इसलिए इन्हे राजस्थानी विद्वान् कहा जा सकता है । इन्होने अपनी दो रचनाओ मे रचना सवत् का उल्लेख किया है । जो सवत् १५८९ एव सवत् १५९१ है । सवत् १५८९ मे रचित मयणजुज्झ मे इन्होंने न किसी स्थान विशेष का उल्लेख किया है और न किसी व्यक्ति विशेष का परिचय दिया । इसी तरह सवत् १५९१ मे रचित 'सतोष जय तिलकु' मे केवल हिसार नगर मे काव्य रचना समाप्त करने का उल्लेख किया है । अत. वश एव माता-पिता का परिचय प्रस्तुत करना कठिन है ।

बूचराज का प्रथम नामोल्लेख सवत् १५८२ की एक प्रशस्ति में मिलता है । यह प्रशस्ति 'सम्यकत्व कौमुदी' के लिपि कर्त्ता द्वारा लिखी हुई है । उसमे भट्टारक प्रभाचन्द्र देव के आम्नाय का, चम्पावती (चाकसू, जयपुर) नगर का, वहाँ के शासक महाराजा रामचन्द्र का उल्लेख किया गया है । चम्पावती के श्रावक खण्डेलवाल वशीय साह गोत्र वाले साह काथिल एव उनके परिवार के सदस्यो ने सम्यक्त्व कौमुदी की प्रति लिखवाकर ब्रह्म बूचराज को प्रदान की थी । इससे ज्ञात होता है कि सवत् १५८२ मे कवि चम्पावती मे थे । वहा मूल सघ के भट्टारको का जोर था और ये भी उन्ही के सघ मे रहते थे ।[2] चम्पावती उस समय भट्टारक प्रभाचन्द्र

---

१ श्री भुवनकीर्ति चरण प्रणमोहु सखी आज बधावहो । भुवनकीर्ति गीत

२ सवत् १५८२ वर्षे फाल्गुन सुदी १४ शुभदिने श्री मूलसघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नद्याम्नाये श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि-देवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्र देवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे

क्रमश

एव ब्रह्मचारी शिष्यों का केन्द्र थी। इसी संवत् में राजवार्तिक जैसे ग्रन्थ की प्रति करवाकर ब्रह्म लाल को दी गयी थी।[1] संवत् १५७५ से १५८५ तक जितनी प्रशस्तियाँ हमारे सग्रह मे उपलब्ध होती है उन सभी के ग्रन्थ किसी न किसी भट्टारक अथवा उनके शिष्य, ब्रह्मचारी या साधु को भेंट किये गये थे। उस समय बूचराज की भट्टारक प्रभाचन्द्र के प्रिय शिष्यों में गिनती थी। इनकी सम्भवत वह साधु बनने की प्रारम्भिक अवस्था थी। भट्टारक सघ मे संस्कृत एव प्राकृत के ग्रन्थों का अध्ययन चलता था। इसीलिए भट्टारक प्रभाचन्द्र अपने शिष्यों के पठनार्थ ग्रन्थो की प्रतियाँ भेंट स्वरूप प्राप्त करते रहते थे।

चाटसू (चम्पावती) से इनका विहार किधर हुआ इसका स्पष्ट निर्देश तो नहीं किया जा सकता लेकिन सवत् १५८९ मे ये राजस्थान के किसी नगर में थे। वहीं रहते हुए इन्होंने अपनी प्रथम कृति 'मयणजुज्झ' को समाप्त की थी। यह अपभ्रंश प्रभावित कृति है।

सवत् १५९१ मे वे हिसार पहुँच गये और वहाँ हिन्दी मे इन्होने 'सतोषजय-तिलकु' की रचना समाप्त की। उस दिन भादवा सुदी पचमी थी। पर्यूषण पर्व का प्रथम दिन था। बूचराज ने अपनी कृति दशलक्षण पर्व मे स्वाध्याय के लिए समाज को समर्पित की। सवतोल्लेख वाली कवि की यह दूसरी व अन्तिम कृति है। इस कृति के पश्चात् कवि की जितनी भी शेष कृतियाँ प्राप्त हुई है उनमे किसी मे सवत् दिया हुआ नहीं है।

हस्तिनापुर गमन

कवि ने अपने एक गीत मे हस्तिनापुर के मन्दिर एव शान्तिनाथ स्वामी के मन्दिर का वर्णन किया है तथा वहाँ पर होने वाले कथा पाठ का उल्लेख किया है। इससे मालूम पडता है कि कवि हस्तिनापुर दर्शनार्थ गये थे।

भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेवास्तदाम्नाये चपावती नामनगरे महाराव श्री रामचन्द्रराज्ये खंडेलवालान्वये साह गोत्रे सघभार धुरधर सा० काथिल भार्या कावलदे तस्य पुत्र जिनपूजापुरन्दर सा० गूजर भार्या प्रथम लाछी तृतीया सरो········ ···एतान् इद शास्त्र कौमुदी लिखाप्य कर्मक्षय निमित्त ब्रह्म बूचाय दत्तं।

(प्रशस्ति संग्रह—सम्पादक डा० कासलीवाल पृष्ठ, ६३)

1 देखिये प्रशस्ति सग्रह—सम्पादक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, पृ० ५४।

कृतियाँ

उक्त दोनो कृतियों सहित बूचराज की अब तक निम्न रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं—

१ मयणजुज्झ
२ सन्तोष जयतिलकु
३ बारहमासा नेमीस्वर का
४ चेतनपुद्गल धमाल
५ नेमिनाथ बसतु
६ टंडाणा गीत
७ भुवनकीर्ति गीत
८ नेमि गीत
६. विभिन्न रागो में निबद्ध ११ गीत एवं पद

इस प्रकार कवि की अब तक १६ कृतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं जो भाषा, शैली एव भावो की दृष्टि से हिन्दी की अच्छी रचनाए हैं। कवि के पदो पर पजाबी भाषा का स्पष्ट प्रभाव है जिससे मालूम पड़ता है कि कवि पजाबी भाषा भाषी भी थे।

विभिन्न नाम

कविवर बूचराज के और भी नाम मिलते हैं। बूचराज के अतिरिक्त ये नाम है बूचा, बल्ह, बील्ह, बल्हव। कही-कही एक ही कृति मे दोनो प्रकार के नामो का प्रयोग हुआ है। इससे लगता है कि बूचराज अपने समय के लोकप्रिय कवि थे और विभिन्न नामों से जन सामान्य को अपनी कविताओं का रसास्वादन कराया करते थे। वैसे उनका बूचा अथवा बूचराज सबसे अधिक लोकप्रिय नाम रहा था।

समय

कवि के समय के बारे मे निश्चित तो कुछ भी नही कहा जा सकता। लेकिन यदि उनकी आयु ७० वर्ष की भी मान ली जावे तो हम उनका समय सवत् १५३०–१६०० तक का निश्चित कर सकते हैं। आखिर सवत् १५६१ के बाद उन्होंने जितनी कृतियों को छन्दोबद्ध किया था उसमें कुछ वर्ष तो लगे ही होगे। इसके अतिरिक्त ऐसा लगता है उन्होंने साहित्य लेखन का कार्य जीवन के अन्तिम १५–२० वर्षों में ब्रह्मचारी की दीक्षा लेने और संस्कृत, प्राकृत एव अपभ्रंश का गहरा अध्ययन करने के पश्चात् ही किया था।

कवि ने अपनी किसी भी कृति मे तत्कालीन शासक का उल्लेख नही किया और न उनके अच्छे बुरे शासन के बारे मे लिखा। जान पडता है कि उस समय देश मे कोई भी शासक कवि को प्रभावित नहीं कर सका था इसलिए कवि ने उनका नामोल्लेख करने की आवश्यकता ही नही समझी।

मयणजुज्झ (मदन युद्ध)

मयणजुज्झ कवि की सवतोल्लेख वाली प्रथम रचना है। यह अपभ्रंश भाषा प्रभावित हिन्दी कृति है। हिन्दी अपभ्रंश का किस प्रकार स्थान ले रही थी यह कृति इसका स्पष्ट उदाहरण है। मदनयुद्ध एक रूपक काव्य है जिसमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एव कामदेव के मध्य युद्ध होने पर भगवान ऋषभदेव की उस पर विजय बतलाई गयी है।

मदनयुद्ध कवि की प्रथम रचना है यह तो स्पष्ट नही कहा जा सकता क्योकि उनकी अधिकाश रचनाओ मे रचना काल दिया हुआ नही हैं। फिर भी ऐसा लगता है कि यह उनकी प्रारम्भिक रचना है जिसमे उन्होने अपभ्रंश भाषा का प्रयोग किया है और इसके पश्चात् जब केवल हिन्दी की ही रचनाओ की माग हुई तो कवि ने अन्य रचनाओ मे केवल हिन्दी का ही प्रयोग किया। इस काव्य का रचना काल सवत् १५८९ आश्विन शुक्ला प्रतिपदा शनिवार है।[1] कृति मे रचना स्थान का कोई उल्लेख नही मिलता।

इस रूपक काव्य मे १५९ पद्य हैं। जो विभिन्न छन्दो मे निबद्ध है। इन छन्दो मे गाथा, रड मडिल्ल, दोहा, रगिका, षट्पद कवित्त आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भाषा की दृष्टि से हम इसे डिंगल की रचना कह सकते हैं। शब्दो पर जोर देने की दृष्टि से उन्हें युगलात्मक बनाया गया है। जैसे निर्वाण के लिए णिव्वाणि, पैदा होने के लिए उपज्जइ, एक के लिए इक्कु (१७) अधर्म के लिए अधम्म आदि इसके उदाहरण हैं। काव्य की कथा बडी रोचक एव शिक्षाप्रद है। कथा भाग का सारांश निम्न प्रकार है।

कथा

प्रारम्भिक मगलाचरण के पश्चात् कवि ने कहा हैं कि काया रूपी दुर्ग मे चेतन राजा निवास करते हैं। मन उनका मत्री है। प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो उसकी स्त्रियाँ हैं। दोनो के ही एक-एक पुत्र उत्पन्न होता है जिनके नाम मोह एव

---

१ राइ विक्कम तणउ सवतु नवासिय पनरहसै सरद रुति आसवज बखाणिउ।
लिथि पडवा सुकलु पखु, सनि सुवार करू नखित्त जाणिउ ॥
मयण जुज्झ

विवेक हैं। चेतन राजा से दोनों को ही बराबर स्नेह मिलता है। मोह के घर में माया रानी होती है जो जगत को सहज ही में फुसला लेती है। निवृत्ति विवेक को साथ लेकर नगर छोड़ देती है। वे दोनो आगे चलकर पुण्य नगर पहुँचते हैं जहाँ चेतन राजा राज्य करते थे। वहाँ उन दोनो को बहुत आदर दिया गया। सुमति का विवाह विवेक के साथ हो जाता है। विवेक का वहाँ राज्य हो जाता है।

इससे मोह को बहुत निराशा होती है। उसने पुण्य नगर मे अपने चार दूत भेजे। उनमे से तीन तो वापिस चले आये केवल वहाँ कपट बचा जो सरोवर पर पानी भरने वाली महिलाओं के पास जाकर बैठ गया। नगर मे ज्ञान जल सरोवर भरा हुआ था। वहाँ जो वृक्ष थे वे मानो व्रत रूप ही थे। उस पर जो पक्षी बैठते थे वे मानो रिद्धि रूप मे ही थे। कपट ने साधु का वेष धारण करके नगर मे प्रवेश किया। वहाँ उसने न्याय नीति का मार्ग देखा तथा इन्द्र लोक के समान सुख देखे। वहाँ से वह अधर्मपुरी पहुँचा तथा मोह से सब वृतान्त कह सुनाया।

अपने दूत द्वारा सब वृतान्त सुनकर उसे बडा विषाद हुआ और उसने शीघ्र ही रोष, झूठ, शोक संताप, संकल्प विकल्प, चिंता, दुराव, क्लेश आदि सभी को अपने दरबार मे बुलाया और निम्न वाक्य कहे—

> करिवि सभा तब मोह मदु, इव चितइ मन माहि।
> जब लग जीवइ विवेक इहु, तब लगु सुख हम नाहि ॥३३॥

मोह की बात सुनकर उसका पुत्र कामदेव उठा और उसने निवृत्ति के पुत्र विवेक को बांध कर लाने का वचन दिया। इससे सभी ओर प्रसन्नता छा गयी। साथ मे उसने कुमति, कुसील एवं कुबुद्धि को साथ लिया।

कामदेव को अपनी विजय पर पूर्ण भरोसा था। सर्वप्रथम उसने बसन्त को भेजा। बसन्त के आगमन से चारो ओर वृक्ष एवं लताएं नवपल्लव एवं पुष्पो से लद गयी। कोयल कुहू कुहू की मधुर तान छेडने लगी तथा भ्रमर गुंजार करने लगे। सुरभित मलयानिल, सुन्दर मधुर गीत एवं वीणा आदि वाद्यो के मधुर गीत सुनायी देने लगे। चारो ओर अजीब मादकता दिखाई देने लगी। मदनराज आ गये हैं यह चर्चा होने लगी। कामदेव ने बहुत से ऋषि मुनियो को तप से गिरा दिया। बडे-बडे योद्धा जिन्हे अब तक मदोन्मत्त हाथी एवं सिंह भी डरा नहीं सके थे वे सब कामदेव के वशीभूत होकर चारो खाने चित्त पड गये। इस प्रकार कामदेव सब पर विजय प्राप्त करता हुआ उस वन मे पहुँचा जहाँ भगवान ऋषभदेव ध्यानस्थ थे।

वह धर्मपुरी थी। विवेक ने संयमश्री का विवाह आदिनाथ से कर दिया था। लेकिन जब उसने कामदेव का आगमन सुना तो शत्रु को पीठ दिखा कर भागने

की अपेक्षा लडना उचित समझा। मदन सब देशों पर विजय प्राप्त करके स्वच्छन्द विचरने लगा। नट व भाट उसकी जय जयकार कर रहे थे। पिशाच एवं गधर्व गीत गा रहे थे। कामदेव जब विजय प्राप्त करके लौटा तो उसका अच्छा स्वागत हुआ। रति ने भी कामदेव का खूब स्वागत किया और उसको विजय पर बधाई दी। लेकिन साथ मे यह भी प्रश्न किया कि उसने कौन-कौन से देश पर विजय प्राप्त की है। इस पर कामदेव ने निम्न प्रकार उत्तर दिया—

> जिणि सकरु इदु हरि बमु, वासिग्ग पयालि जिसु।
> इदु चदु गहगण तारायण विद्याधर यक्ष सु गधव्व सहि देव गण इण।
> जोगी जंगम कापडी सन्यासी रस छडि
> ले ले तपु वण महि दुडिय ते मइ घाले बदि ॥६२॥

रति ने अपने पति कामदेव की प्रशसा करते हुए कहा कि धर्मपुरी को अभी और जीतना है जहाँ भगवान का ऋषभदेव का साम्राज्य है। रति की बात सुनकर कामदेव को बहुत क्रोध आया और वह तत्काल धमपुरी को विजय करने के लिए चल पडा। उसने आदीश्वर को शीघ्र ही वश मे करने की घोषणा की। कामदेव ने अपने साथी क्रोध, मोह, मान एवं माया सभी को साथ लिया और धर्मपुरी पर आक्रमण कर दिया। अपने विपुल हावभाव एव विलास रूपी शस्त्रो से उन्हे जीतने का उपक्रम किया।

दोनो ओर युद्ध के लिए खूब तैयारी की गयी तथा एक ओर सभी विकारों ने ऋषभदेव के गुणो पर आक्रमण कर दिया। अज्ञान ने ज्ञान को पछाडने का उपक्रम किया। मिथ्यात्व जैसे सुभट ने पूरे वेग से आक्रमण किया। लेकिन सम्यक्त्व रूपी योद्धा ने अपनी पूरी ताकत से मिथ्यात्व का सामना किया। जैसे सूर्य को देखकर अन्धकार छिप जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व भी सम्यकत्व के सामने नही टिक सका। राग ने गरज कर अपना अस्त्र चलाया लेकिन वैराग्य ने इसके वार को बेकार कर दिया। मद ने अपने आठ साथियो के साथ ऋषभदेव पर एकसाथ आक्रमण किया लेकिन ऋषभदेव ने उन्हे मादव धर्म से सहज ही मे जीत लिया। इसके पश्चात् माया ने अपना जाल फेंका और बाईस परिषहो ने एक साथ आक्रमण किया। लेकिन ऋषभदेव ने माया को आर्जव से तथा बाईस परिषहो को अपने 'धीरज' सुभट से सहज ही में जीत लिया। इसके पश्चात् 'कलह' ने पूरे वेग से अपना अधिकार जमाना चाहा लेकिन क्षमा के सामने वह भी भाग गया। जब मोह का कोई वश नही चला और वह मुख फेर कर चल दिया तो लोभ ने अपनी पूरी सामर्थ्य से विजय प्राप्त करना चाहा। उसका प्रभाव सारे विश्व मे व्याप्त है, कभी वह आगे बढता और कभी पीछे हट जाता। लेकिन जब सन्तोष ने पूरे वेग से प्रत्याक्रमण किया तो वह ठहर नहीं सका। कुशील पर ब्रह्मचर्य ने विजय प्राप्त की।

ऋषभदेव ने कुमति को तो पहिले ही छोड़ दिया था इसलिए सुमति ही विवेक के साथ हो गयी। लेकिन मोह ने अपने सभी साथियों की हार सुनी तो उसकी आँखें लाल हो गयी तथा वह दांत पीसने लगा तथा अपने रौद्र रूप से उसने आक्रमण कर दिया। ऋषभदेव ने विवेक रूपी सुभट को बुलाया और स्वय अपूर्व-करण गुणस्थान मे विचरने लगे। मोह की एक भी चाल नही चली और अन्त में वह भी मुख मोड़ कर चल दिया।

जब कामदेव ने मोह को भी भागते देखा तो वह अपनी पूरी सेना के साथ मैदान मे उतर गया। लेकिन ऋषभदेव सयम रूपी रूप मे सवार हो गये थे। तीन गुप्तियाँ उनके रथ के घोड़े थे। पच महाव्रत एव क्षमा उनके योद्धा थे। ज्ञान रूपी तलवार को हाथ मे लेकर सम्यक्त्व का छत्र तान कर वे मैदान मे उतरे। रणभूमि से कामदेव के सहायक एक एक करके भागना चाहा। लेकिन ऋषभदेव ने युद्ध भूमि का घेरा इतना तीव्र किया कि कोई भी वहाँ से भाग नही सका और सबको एक-एक करके जीत लिया गया। चारो कषायो को जीत लिया, मिथ्यात्व का पता भी नही चला। ऋषभदेव को कैवल्य होते ही देवो ने दुदु भि बजानी प्रारम्भ कर दी तथा चारो दिशाओ मे ऋषभदेव के गुणगान होने लगे।

इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत काव्य मे काम विकार एव उसके साथियो पर जिस प्रकार गुणो की विजय बतलायी है वह अपने आप मे अपूर्व है। इस प्रकार के रूपक काव्यो का निर्माण करके जैन कवि अपने पाठको को तत्कालीन युद्ध के वातावरण से परिचित भी रखते थे तथा उन्हे आध्यात्मिकता से दूर भी नही होने देते थे।

भाषा एव शैली

मयणजुज्झ यद्यपि अपभ्र श प्रभावित कृति है लेकिन इसमे हिन्दी के शब्दो का एव उसके दोहा एव रड, षट्पद, वस्तुबध एव कवित्त जैसे छन्दो का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि देशवासियो का मानस हिन्दी की ओर हो रहा था तथा वे हिन्दी की कृतियो के पढने के लिए लालायित थे। हिन्दी का प्रारम्भिक विकास जानने के लिए मयण जुज्झ अच्छी कृति है।

कवि ने कुछ तत्कालीन प्रचलित शब्दो का भी प्रयोग किया है। उसने सेना के स्थान पर फौज शब्द का[1] तथा तुरही के स्थान पर नफीरी का प्रयोग किया है।

---

१ ले फौज सबलु संकहि करि, इव विवेक भडु आइयउ।

इससे पता चलता है कि कवि प्रचलित शब्दों के प्रयोग का मोह नहीं त्याग सका और उसने अपने काव्य को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रचलित शब्दों का प्रयोग करके उनको भी अपनाने का प्रयास किया।

मयणजुज्झ की राजस्थान के शास्त्र भण्डारो में कितनी ही प्रतियाँ संग्रहीत है। इनमें निम्न उल्लेखनीय हैं।

१ भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर	गुटका स० २३२	पद्य स० १५८		लिपि सवत् १६१६
२ दि० जैन मन्दिर दीवानजी कामां[1]	,,	६	—	—
३ दि० जैन मन्दिर लश्कर, जयपुर	,,	१६	—	—
४. दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपथी जयपुर[2]	,,	२४२	—	लिपि स० १७०५
५. दि० जैन मन्दिर बडा तेरहपथी, जयपुर	,,	२७६	—	,, १७०७
६ महावीर भवन, जयपुर[3]	,,	४६	,, १५६	—
७ दि० जैन मन्दिर नागदी, बूदी		१०४	१४२	—

२ सतोष जयतिलकु

बूचराज की यह दूसरी रचना है जिसमे उसने रचना समाप्ति का उल्लेख किया है। सतोष जयतिलकु का रचना काल सवत् १५६१ भाद्रपद शुक्ला ५ है अर्थात् मयण जुज्झ के ठीक २ वर्ष पश्चात् कवि ने प्रस्तुत कृति को समाप्त किया था।[4] दो वर्ष के मध्य मे कवि केवल एकमात्र रचना लिख सके अथवा अन्य लघु रचनाओं को भी स्थान दिया इसके सम्बन्ध मे निश्चित जानकारी नहीं मिलती है। लेकिन कवि राजस्थान से पजाब चले गये थे यह अवश्य सत्य है। प्रस्तुत कृति को उन्होंने हिसार मे छन्दोबद्ध की थी। जैसा कि स्वय कवि ने उल्लेख किया है

सतोषहु जय तिलउ जपिउ हिसार नयर मझ मे।
जे सुणहि भविय इकक मनि ते पावहि वछिय सुक्ख।।

सतोष जय तिलकु भी एक रूपक काव्य है जिसमे लोभ पर सतोष की विजय बतलायी

---

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डार की ग्रन्थ सूची पचम भाग पृष्ठ ६८४, १०८८, ११०६।

२ वही, द्वितीय भाग।

३ वही, प्रथम भाग।

४ सवति पनरह इक्याणु भद्दवि सिय पक्खि पचमी दिवसे।
सुक्कवारि स्वाति वृषे जेठ तह जाणि वभणामेण।।१२२।।

गयी है। मयरण जुज्झ में जिस प्रकार ऋषभदेव नायक एवं कामदेव प्रतिनायक है उसी प्रकार प्रस्तुत काव्य में संतोष नायक एवं लोभ प्रतिनायक है। ऐसा लगता है कि कवि आत्मिक विकारों की वास्तविकता को पाठकों के सामने प्रस्तुत करके उन्हे आत्मिक गुणों की ओर लगाना चाहता था तथा आत्मिक गुणों की महत्ता को रूपक काव्यों के माध्यम से प्रकट करना उसको अधिक रुचिकर प्रतीत होता था।

प्रस्तुत रूपक काव्य मे १२३ पद्य हैं जो साटिक, रड, गाथा षट्पद, दोहा, पद्धडी छद, मडिल्ल, चंदाइरण छन्द, गीतिका छन्द, तोटक छन्द, रगिका छन्द, जैसे छन्दों में विभक्त है। छोटे से काव्य मे विभिन्न ११ छन्दो का प्रयोग कवि के छन्द ज्ञान की ओर तो प्रकाश डालता ही है साथ ही मे तत्कालीन पाठको की रुचि का भी हमे बोध कराता है कि पाठक ऐसे काव्यों का सगीत के माध्यम से सुनना अधिक पसन्द करते थे। इसके अतिरिक्त उस समय सगुरण भक्ति के गुणानुवाद से भी पाठक गण ऊब चुके थे इसलिए भी वे अध्यात्म की ओर झुक रहे थे।

प्रस्तुत काव्य की सक्षिप्त कथा निम्न प्रकार है।

मगलाचरण के पश्चात् कवि लिखता है कि भगवान महावीर का समवसरण पावापुरी मे आता है। भगवान की जब दिव्य ध्वनि नही खिरती तब इन्द्र गौतम ऋषि के पास जाता है और कहता है कि महावीर ने तो मौन धारण कर रखा है इसलिए "त्रैकाल्य द्रव्य षटक नव पद सहितं' आदि पद्य का अर्थ कौन समझा सकता है? तब गौतम तत्काल इन्द्र के साथ आने को तैयार हो जाते हैं। जब वे दोनो महावीर के समवसरण मे स्थित मानस्तम्भ के पास पहुँचते हैं तो मानस्तम्भ को देखते ही गौतम का मान द्रवित हो जाता है।

देखत मानथभो गलियउ तिसु मानु मनह मझमे।
हूवउ सरल पणामो पुछ गोइमु चित्ति सदेहो ॥१०॥

गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा कि स्वामी, यह जीव ससार मे लोभ के वशीभूत रहता है तो उसके बचने के क्या उपाय हैं? क्योंकि लोभ के कारण ही मानव प्राणिवध करता है, लोभ के कारण ही वह झूठ बोलता है। लोभ से ही वह दूसरो के द्रव्य ग्रहण करता है। सब परिग्रहों के सग्रह मे भी लोभ ही कारण है। जिस प्रकार तेल की बूद पानी मे फैल जाती है उसी प्रकार यह लोभ भी फैलता रहता है। एक इन्द्रिय के वश मे आने से यह प्राणी इतने दुःख पाता है तो पांच इन्द्रियों के वशीभूत होने पर उसकी क्या दशा होगी, यह वह स्वय जान सकता है। लोभी मनुष्य उस कीडे के समान है जो मधु का संचय ही करता है उसका उपयोग नहीं करता है। क्रोध, मान, माया तथा लोभ इन चारो मे लोभ ही प्रमुख है।

इसके साथ ही तीन अन्य कषायो का प्रादुर्भाव होता है। जैसे सर्प के गले मे गरल विष सयुक्त होता है उसी प्रकार राग एव द्वेष दोनों ही लोभ के पुत्र हैं। जहाँ राग सरल स्वभावी एव द्वेष वक्र स्वभावी होता है। लोभ के इन दोनों पुत्रो ने सभी प्राणियो को अपने वशीभूत कर रखा है फिर चाहे वह योगी हो अथवा यति एव मुनि हो। भगवान महावीर गौतम ऋषि से कहते हैं कि प्राणी को चारो गति मे डुलाने वाला यह लोभ ही है, इसलिए लोभ से बुरा कोई विकार नही है।

गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से फिर प्रश्न किया कि लोभ पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जा सकती है तथा किस महापुरुष ने लोभ पर विजय पायी है। इस प्रकार भगवान महावीर ने निम्न प्रकार कहा—

सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु,
यहु सासणु विम्मलइ, सुणत धम्मु भव बध तुट्टहि,
अति सूषिम भेद सुणि, मनि सदेह खिण माहि मिट्टहि।
काल अनतिहि ज्ञान यहि कहियउ आदि अनादि।
लोभु दुसहु इव जिजत्तियइ सतोषहु परसादि ॥४८॥

लेकिन गौतम ने भगवान से फिर निवेदन किया कि सतोष कैसे पैदा हो, उसके रहने का स्थान कौन सा है। किसके साथ होने से उसमे शक्ति आती है। उसकी कौन-कौन सी सेना दल है तथा सतोष सुभट कैसा है। जब तक ये सब मालूम नही होगा लोभ पर विजय प्राप्त करना सम्भव नही है।

महावीर स्वामी ने कहा कि आत्मा मे सतोष स्वाभाविक रूप से पैदा होता है तथा वह आत्मपुरी मे ही रहता है। धर्म की सेना ही उसका बल है। ज्ञान रूपी बुद्धि से उस पर विजय प्राप्त की जा सकती है। जिस प्राणि ने सतोष को अपने मे उतार लिया बस समझलो कि उसने जगत को ही जीत लिया। जिसके जितना अधिक सतोष होगा उसको उतना ही सुख प्राप्त हो सकेगा। सतोषी प्राणी मे राग द्वेष की प्रवृत्ति नही होती तथा वह शत्रु मित्र मे समान भाव रखने वाला होता है। जिनके हृदय मे सतोष है उनकी बुद्धि चन्द्रकला के समान होती है तथा उनका हृदय कमल खिल जाता है। सतोष एक चिंतामणि रत्न है जिससे चित्त प्रसन्न रहता है। वह कामधेनु के समान सबको वाछित फल देता रहता है। जहाँ सतोष है वहाँ सब सुख विद्यमान हैं। सतोष से उत्तम ध्यान होता है, परिणामो मे सरलता आती है। वाछित सुखो की प्राप्ति होती है। सतोष से सवर तत्त्व की प्राप्ति होती है जिसके सहारे ससार को पार किया जा सकता है और अन्त मे निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है।

इधर जब लोभ को संतोष की बात मालूम हुई तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने सतोष को सदा के लिए समाप्त करने की घोषणा कर दी। उसने उस समय झूठ को अपना प्रधान बनाया। क्रोध एव द्रोह, कलह एवं क्लेश, पाप एव सताप सभी को उसने एकत्रित किया। मिथ्यात्व, कुव्यसन, कुशील, कुमति, राग एव द्वेष सभी वहाँ आ गये और इन सब को अपने साथ देखकर लोभ प्रसन्न हो गया। उसने कपट रूपी नगाड़ो को बजाया तथा विषय रूपी घोड़ों पर बैठकर सतोष पर आक्रमण कर दिया।

सतोष ने जब लोभ रूपी शत्रु का आक्रमण सुना तो उसे प्रसन्नता हुई। उसका सेनापति आत्मा वही आ गया और उसने अपनी सेना को भी वही बुला लिया। वहाँ १८००० अगरक्षकों के साथ शील सुभट आया। साथ मे ही सम्यक् दर्शन, ज्ञान एव चारित्र, वैराग्य, तप, करुणा, पच महाव्रत, क्षमा एव सयम आदि सभी योद्धा वहाँ आ गये। वह अपने सैनिको को लेकर लोभ से जा टकराया। जिन शासन की जय जयकार होने लगी तो मिथ्यात्व भागने लगा। जय जयकार की महाधुनि को सुनकर ही कितने ही शत्रु पक्ष के योद्धा लड़खड़ा गये। शील का चोला पहनकर रत्नत्रय के हाथी पर सवार होकर विवेक की तलवार लेकर सम्यक्त्व रूपी छत्र पहनकर पद्म एव शुक्ल लेश्या के जिस पर चवर ढुल रहे थे, ऐसा सतोष राजा रण मे लोभ से जा भिडा। उसने अपने दल के अन्दर अध्यात्म का सचार किया। जो शूरवीरो के हृदयो मे जाकर बैठ गया। एक ओर लोभ छलकपट से अपनी शक्ति को तोलने लगा तथा दूसरी ओर सतोष ने अपने सुभटों मे सरलता एव निर्मलता के भाव भरे। इस पर दोनो ओर से चतुरगिनी सेना एकत्रित हो गयी। भेरी बजने लगी। तब लोभ ने अपने सैनिको को सतोष के सैनिको पर आक्रमण करने के लिए ललकारा। सतोष ने लोभ से कहा कि ऐसा लगता है कि उसके सिर पर काल चढ गया है। उसके सब साथियो को मूढता सता रही है। जहाँ लोभ है वहाँ रात दिन यह प्राणी दुःख सहता रहता है। लेकिन जहाँ सतोष है वहाँ उसकी इन्द्र एव नरेन्द्र सेवा करते हैं। लोभ ने जगत मे अभी तक सभी को सताया है तथा जगत मे सभी को जीत रखा है, लेकिन आज सतोष का पौरुष भी देखे। यह सुनकर लोभ ने झूठ को आगे भेजा। लेकिन सतोष ने सत्य को भेजा और उसने उसका सिर काट लिया। इसके पश्चात् मान को बीडा दिया गया और वह जब रणभूमि मे उतरा तो मार्दव ने उसका सामना किया और उसको बलहीन कर दिया। लेकिन फिर भी वह हटा नहीं तो महाव्रतों ने एक साथ उस पर आक्रमण कर दिया और क्षण भर मे ही उसे परास्त कर दिया। अब मोह अपने प्रचण्ड हाथी पर बैठ कर आगे बढ़ा। मोह को देखकर विवेक उठा और उसे रणभूमि मे से भागने

पर मजबूर कर दिया। माया ने विविध रूप धारण कर लिया और यह समझा कि उससे लड़ने की किसी में शक्ति नहीं है। लेकिन आर्जव ने उसे सहज में ही जीत लिया। क्रोध को क्षमा से तथा मिथ्यात्व को सम्यकत्व से जीत लिया गया। आठ कर्मों के प्रखर प्रहार को तप से जीतने में सफलता प्राप्त की। अन्य जितने भी छोटे-छोटे योद्धा थे उनकी एक भी नहीं चली और उन्हें युद्ध भूमि में ही सुला दिया। लोभ अपने सभी साथियों को युद्ध भूमि में खेत हुआ देखकर माथा धुनने लगा।

लोभ गरज कर अपने हाथी पर सवार हुआ। कपट का उसने छत्र लगाया तथा विषयों की तलवार को हाथ में ली। लेकिन सामने दसवें गुणस्थान में चढ़े हुए तपस्वी विराजमान थे। लोभ पूरे विकट स्वभाव में था। कभी वह बैठता, कभी वह उठता, कभी आकाश में और कभी पृथ्वी पर अपना जाल फैलाने लगता। वह अपने विभिन्न रूप धारण करता। लोभ का रूप ऐसी अग्नि की कणी के समान लगने लगा जो, क्षण भर में ही सारे जंगल को जला डालती है।

लोभ का सामना करने के लिए संतोष आगे बढ़ा। दसवें गुणस्थान से आगे बढ़कर शुक्ल ध्यान में विचरने लगा। अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया और केवल ज्ञान प्रकट हुआ। जिन वचनों को चित्त में धारण कर संतोष ने लोभ पर विजय प्राप्त की। तेरह प्रकार के व्रतों को, बारह प्रकार के तप को अपने में समाहित कर लिया।

संतोष की विजय के उपरान्त देवगण दुंदुभि बजाने लगे। ग्यारह अंग और चौदह पूर्व का ज्ञान प्रकट हो जाने से मिथ्यात्वियों का गर्व गल गया और चारों ओर आत्मा की जय जयकार होने लगी।

भाषा

प्रस्तुत कृति की भाषा यद्यपि मयणजुज्झ से अधिक परिस्कृत है लेकिन फिर भी वह अपभ्रंश के प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो सकी है। बीच-बीच में गाथाओं का प्रयोग हुआ है। शब्दों को उकारान्त बनाकर प्रयोग करने में कवि को अधिक रुचि दिखलायी देती है।

कवि नाम

कवि ने प्रस्तुत कृति में अपना नाम 'वल्हि' लिखकर रचना समाप्त की है।[1]

---

१ पहु संतोषहु जय तिलउ जपइ वल्हि समाइ।

३. बारहमासा नेमीस्वरका

नेमि राजुल को लेकर प्राय: प्रत्येक जैन कवि किसी न किसी कृति की रचना करता रहा है। हमारे कवि बूचराज ने भी नेमीस्वर का बारहमासा लिख-कर इस परम्परा को जीवित रखा। यह बारह मासा श्रावण मास से प्रारम्भ होकर आषाढ़ मास तक चलता है। इसमे रागु वडहंसु के १२ पद्य हैं जिनमें एक-एक महिने का वर्णन किया गया है। राजुल की विरह वेदना तथा नेमिनाथ के तपस्वी जीवन के प्रति जो उसकी अप्रसन्नता थी वह सब इन पद्यों मे व्यक्त की गयी है।

इसमे न तो रचना काल दिया हुआ है और न रचना स्थान। इससे कृति का निश्चित समय नहीं दिया जा सकता है। फिर भी भाषा एवं शैली की दृष्टि से रचना संवत् १५६१ के पश्चात् किसी समय लिखी गयी थी। इसमे कवि ने अपना नाम 'बूचा' कह कर उल्लेख किया है।[1]

बारह मासा सावण मास से प्रारम्भ होता है। सावण मे राजुल नेमिनाथ से अन्यत्र गमन न करने का आग्रह करती है तथा कहती है कि उनके अभाव मे उसका शरीर क्षण क्षण छीज रहा है। जब आकाश में बिजली चमकती है तो उसका विरह असह्य हो जाता है। जब मोर कुह कुह की आवाज करते हैं उस समय नेमि की याद आती है। इसलिए वह सावण मास मे अन्यत्र गमन न करने की प्रार्थना करती है।[2]

कार्तिक का महिना जब आता है तो राजुल हाथों मे दीपक लेकर अपने महल पर चढकर नेमिनाथ का मार्ग खोजती है। उसकी आँखें आसुओं से भर जाती हैं। वे दशों दिशाओ की ओर दौडती हैं। सरोवर पर सारस पक्षी के जोडे को देखकर वह कहती है कि नवयौवना एवं तरुणी बाला ऐसे समय मे अपने पति के विरह मे कैसे जीवित रह सकती है। इसलिए वह नेमिनाथ से कार्तिक के महिने मे वापिस आने की प्रार्थना करती है।

---

१ आषाढ़ चडिया भरणइ बूचा नेमि अजउ न आईया।

२ ए दलि सावरणे सावरिण नेमि जिरण गवरणो न कीजै वे।
सुरिण सारगा भाव दुसह तनु खिणु खिणु छीजै वे।
छीजति बाढ़ी विरह व्यापित घुरइ घरण अइ गलिया।
सालूर सरि रव रडहि निसि भरि रयरिण बिजु खिजतिया।
सुरगोपि वह सुर मधुर माळल मोर कुह कुहि बखि बखि।
बिनवंति राजुल सुरगहु नेमिजिन गवउ ना कर सावणे ॥१॥

इसी प्रकार जब वैशाख का महिना आता है तो नयनों को केवल नेमि की बाट जोहने का काम ही रहता है जब नेमि नही आते हैं तो वे वर्षा ऋतु के समान वे बरसने लगते हैं ।[1]

उनके वियोग मे उसका वज्र का हृदय नही फटता है इसलिए ए सखि उनके बिना वैसाख महिना अत्यधिक दारुण दुख को देने वाला बन जाता है ।[2]

नेमि राजुल को लेकर कितने ही जैन कवियो ने बाराह मासा निबद्ध किये हैं । विरह का एव षट् ऋतुओ का वर्णन करने के लिए नेमि राजुल का जीवन जैन साहित्य मे सबसे अधिक आकर्षण की सामग्री है ।

कविवर बूचराज के प्रस्तुत बारहमासा का हिन्दी बारहमासा साहित्य मे उल्लेखनीय स्थान है । कवि ने इसमे राजुल के मनोगत भावो को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वे पाठको को प्रभावित किये बिना नही रहते । कवि के प्रत्येक शब्द मे विरह व्यथा छिपी हुई है और वह परिणय की आशा लगाये विरही नव यौवना के विरह का सजीव चित्र उपस्थित करता है । राजुल को प्रत्येक महिने मे विरह वेदना सताती है तथा उस वेदना को वह नेमि के बिना सहन करने मे अपने आपको असमर्थ पाती है । कवि को राजुल की विरह वेदना को सशक्त शब्दो मे प्रस्तुत करने मे पूर्ण सफलता मिली है ।

४. चेतन पुद्गल धमाल

कविवर बूचराज की यह महत्त्वपूर्ण कृति है । पूरी कृति मे १३६ पद्य है ।

---

१ इनु कातेगे कातिगि आगमु की ताडा पालेवा ।
चढि मडपे मडपि राजुल मग्गो नेहो लेवे ।
मग्गो निहाले देवि राजुल नयण वह दिसि धावए ।
सर रसहि सारस रयणिभिनो दुसहु विरहु जगवए ।
कि बरहउ तुव विणु पेम लुद्धिय तरुणि जोवणि बालाए ।
बाहुडहु नेमि जिण चडिउ कातिगु कियउ आगमु पालए ।।४।।

२ ए यहु आइयडा अब दुसहु सखी वइसाखो वे ।
जइवइसेवा इसि आइ सनेहडा आखोवे ।
आखो सनेहा आइ वाइस अन्नु नीरु न भावए ।
दुइ नयण पावस करहि निसि दिनु चितु भरि भरि आवए ।
फुट्टउ न ज वल्लभ वियोनिहि हिया दुखि वज्जिहि घड्या ।
वइसाखु तुव विणु सुणहु सखिए दुसहु अति दारणु चड्या ।।१०।।

इनमें १३१ पद्य राग दीपगु तथा शेष ५ षष्टपद छप्पय छन्द में निबद्ध है। कवि ने धमाल का रचना काल एवं रचना स्थान दोनों ही नहीं दिये हैं। लेकिन भाषा की दृष्टि से यह रचना उसकी अन्तिम रचनाओं में से मिलती है। कवि ने इस कृति मे अपने आप का बल्हपति[1], बल्ह[2], बूचा[3] इन तीन नामो से उल्लेख किया है।

चेतन पुद्गल धमाल एक सवादात्मक कृति है। जिसमे सवाद के माध्यम से चेतन एवं पुद्गल दोनो अपना-अपना पक्ष रखते हैं, एक दूसरे पर दोषारोपण करते करते हैं। ससार मे फिराने एवं निर्वाण मार्ग मे रुकावट पैदा करने मे कौन कितना सहायक है, इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। इस प्रकार के वर्णन प्रथम बार देखने मे आये हैं और वे वर्णन भी एकदम विस्तृत। चेतन पुद्गल के सवाद इतने रोचक एवं आकर्षक हैं कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नही रहेगा। प० परमानन्दजी शास्त्री ने अपने एक लेख मे इस कृति का नाम अध्यात्म धमाल भी दिया है।[4] लेकिन स्वय कवि ने इसे सवादात्मक कृति के रूप मे प्रस्तुत करने को कहा है।[5]

कवि ने प्रारम्भ मे सम्यग्ज्ञान रूपी दीपक की प्रशसा की है। जिसके द्वारा मिथ्यात्व का पलायन हो जाता है। इसके पश्चात् चौबीस तीर्थंकरों का २५ पद्यो मे स्तवन किया गया है। फिर चेतन को इस प्रकार सम्बोधित करके रचना प्रारम्भ की गयी है।

> यह जड खिणिहि विषसिणी, ता सिउ सगु निवारू।
> चेतन सेती पिरती करु, जिउ पावहि भव पारो।
>
> चेतन गुरण ॥३३॥

चेतन और जड़ के विवाद को प्रारम्भ करते हुए कहा गया है कि जिसने जड को अपना मान लिया तथा उससे प्रीति कर ली वह ससार सागर मे निश्चय ही डूबता है। क्योंकि विषधर के मुख मे दूध पडने पर उसका विष रूप ही परिणमन होता है। उससे अच्छे फल की आशा करना व्यर्थ है। लेकिन इस मनतव्य का जड ने

---

१ कवि बल्हपति सुस्वामि के रणवउ चलत सिरु धारि ॥१॥

२ जिस सासरण महि दीवडा बल्ह पया मणकाद ॥३॥

३, इव भणइ बूचा सदा निम्मलु मुकति सरूपी कीया ॥१३६॥

४ अनेकान्त वर्ष १६-१७ पृष्ठ २२६।

५ पच प्रमिष्ठि बल्ह कवि ए पणमो धरिभाउ।
चेतन पुद्गल बहुक साधु विवादु सुणायो ॥ चेयण गुणु ॥३२॥

बहुत सुन्दर खण्डन किया है जो निम्न प्रकार है—

चेतनु चेति न चालई, कहुउत मानै रोसु ।
आये बोलत सो फिरै, जडहि लगावहि दोसु ।। चेयन सुणु ।।३८।।

चेतन षट्‌रस एव अन्य विविध पकवानो से शरीर को प्रतिदिन सींचता रहता है तो फिर इन्द्रियो के वशीभूत चेतन से धर्म पर चलने की आशा कैसे की जा सकती है। खेत में जब समय पर बीज ही नहीं डाला जावेगा तो उसके उगने की आशा भी कैसे की जा सकती है। वास्तव मे देखा जावे तो यह चेतन जब २४ प्रकार के परिग्रह तज कर १५ प्रकार के योग धारण करता है लेकिन वह सब तो जड़ के सहारे से ही है। फिर उसकी निन्दा क्यो की जावे। पुद्‌गल का विश्वास कर जो प्राणी मन मे नि शक हो जाता है वह तो निश्चित ही कलकित होने के समान है। यह मूर्ख मानव अपने आपको जाग्रत नही करता है और विषयो मे लुभाए रखता है। वह तो अधे पुरुष द्वारा बटने वाली उस जेवडी के समान है जिसको पीछे से बछड़े खाते रहते हैं।

मूरख मूलनु चेतई, लाहै रह्या लुभाइ ।
अधा बाटै जेवडी, पाछइ बाछा खाइ ।।४५।।

जड फिर चेतन को कहता है कि जिसने पाँचो इन्द्रियो को वश मे करके आत्मा के दर्शन किये हैं उसी ने निर्वाण पद प्राप्त किया है तथा उसका फिर चतुर्गति मे जन्म नही होता,

पंचै इदी दडि करि, आपी आप्पणु जोइ ।
जिउ पावहि निरवाण पदु, चौगइ जनमु न होइ
चेयन सुणु ।।४८।।

जैसे काष्ठ मे अग्नि, तिलो मे तेल रहता है उसी प्रकार अनादि काल से चेतन और पुद्‌गल की एकात्मकता रहती है। पुद्‌गल के उक्त कथन का चेतन निम्न प्रकार उत्तर देता है,

लेहि वैसदरु कठु तजि लेहि तेलु खलि राडि ।
चेतहि चेतनु मेलियै, पुद्‌गल परिहरि बालि ।।
चेतन गुण ।।५५।।

मन का हठ सभी कोई पूरा करते हैं लेकिन चित्त को कोई भी वश मे नहीं करता है क्योंकि सिखर के चढने के पश्चात् घबराहट होने पर उसको दूर कैसे की जा सकती है—

मन का हठु सवु कोइ करइ, चित्तु वसि करइ न कोइ ।
चडि सिखरहु जब खडहडै, तवरु विगुचणि होइ ।। चेयन सुणु ।।

इसका उत्तर चेतन ने निम्न प्रकार दिया,

सिखरहु मूलिन सबहुदे जिण सासण आधारु ।
मूलि ऊपरि सीझियाँ चोरि अप्या नवकारु ।। चेयन गुण ।।६६।।

जड़ और पुद्गल ने बहुत सुन्दर एव तर्कपूर्ण विवाद होता है लेकिन दोनो ही एक दूसरे के गुणो की महत्ता से अपरचित लगते हैं । इसलिए एक दूसरे के अवगुणो को बखारने मे लगे रहते है ।

पुद्गल कहता है—कि पहले अपने आपको देखकर सयम लेना चाहिए । जितना ओढ़णा हो उतना ही पाव पसारना चाहिए । इसका पुद्गल उत्तर देता हुआ कहता है कि भला-भला सभी कहते हैं लेकिन उसके मर्म को कोई नहीं जानता । शरीर खोने पर किससे भला हो सकता है—

भला करितहि मीत सुणि, जे हुइ बुरहा आणि ।
तो भी भला न छोडिये उत्तिम यहु परवाणु ।। चेयन सुणु ।।७०।।
भला भला सहु को कहैं, मरमु न जाणै कोइ ।
काया खोई मीत रे भला न किस ही होए ।। चेयन गुण ।। १।।

यह शरीर हाड मास का पिजरा है । जिस पर चमड़ी छायी हुई है । यह अन्दर नरको से भरा हुआ है लेकिन यह मूर्ख मानव उस पर लुभाता रहता है । इसका पुद्गल बहुत सुन्दर उत्तर देता है कि जैसे वृक्ष स्वय धूप सहन कर औरो को छाया देता है उसी तरह इस शरीर के सग से यह जीव मोक्ष प्राप्त करता हैं ।

हाडह केरा पजरी चरिया चम्मिहि छाइ ।
वहु नरकिहि सो पूरिया, मुरिखु रहिउ लुभाए ।। चेयन सुणु ।।७२।।
जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरह छाह कराइ ।
तिउ इसु काया सगते, जीयड़ा मोखिहि जाए ।। चेयन गुण ।।

जिस तरह चन्द्रमा रात्रि का मण्डल और सूर्य दिन का उसी तरह इस चेतन का मण्डल शरीर है ।

जिउ ससि मडणु रयणिका, दिन का मडणु भाणु ।
तिम चेतन का मंडणा यहु पुद्गलु तू जाणु ।। चेयन सुणु ।।७८।।

काया की निन्दा करना तथा प्रत्येक क्षेत्र मे उसे दोषी ठहराना पुद्गल को अच्छा नहीं लगा इसलिए वह कहता है कि चेतन शरीर की तो निन्दा करता है किन्तु अपनी ओर तनिक भी झांक कर नही देखता । किसी ने ठीक ही कहा है कि जैसे-जैसे कावली भीगती है वैसे-वैसे ही वह भारी होती जाती है ।

काया की निन्दा करहि, आपुन देखहि जोइ ।
जिउ जिउ भीजइ कावली, तिउ तिउ भारी होइ ।। चेयन सुणु ।।१०।।

चेतन कहता है कि उस जड को कौन पानी देगा जिसके न तो फूल है न फल और न पत्ते हैं । उस स्वर्ण का क्या करना है जिसके पहिनने से कान ही कट जावें ।

सा जड मूढ न सीचियै, जिसु फलु फूलु न पातु ।
सो सोना क्या फूकिये, जोरु कटावे कान ।। चेयन गुण ।।१०६।।

पुद्गल इसका बहुत सुन्दर उत्तर देता है कि यौवन, लक्ष्मी, शरीर सुख एव कुलवती स्त्री ये चारो पुण्य जिसे प्राप्त हैं वे तो देवताओ के इन्द्र ही हैं ।

सवादात्मक रूप मे कवि कहता है कि जिन्होंने उद्यम, साहस, धीरता, बल, बुद्धि और पराक्रम इन छ बातो की ओर मन को सुदृढ कर लिया उन्होने निर्वाण प्राप्त किया है ।

उद्दिमु साहसु धीरु बलु, बुद्धि पराकमु जाणि ।
ए छह जिनि मनि विढु किया, ते पहुचा निरवाणि ।।
चेयन सुणु ।।१३०।।

प्रस्तुत कृति मे १३२ से १३६ तक के ५ पद्य अष्ट पद्य छप्पय छन्द के हैं । इनमे दो पद्यो मे जड का प्रस्ताव है तथा तीन मे चेतन का उत्तर है । अन्तिम पद्य चेतन द्वारा कहलवाया गया है जिसमे जड से प्रतीति नही कहने का उपदेश दिया गया है—

जिय मुकति सरूपी तू निकलमलु राया ।
इसु जड के सग ते भमिया करमि भमाया ।
चडि कबल जिवा गुणि तजि कद्दम ससारो ।
भजि जिण गुण हीयडे तेरा यहु विवहारो ।
विवहारु यहु तुझु जाणि जीयडे करहु इदिय सवरो ।
निरजरहु बधण करम्म केरे आनत निठुकाजरो ।
जे वचन श्री जिण वीरि भासे ताह नित धारहु हीयरा ।
इव भणइ बूचा सदा निम्मलु मुकति सरूपी जीया ।।१३६ ।।

इस प्रकार चेतन पुद्गल धमाल हिन्दी जगत का प्रथम सवादात्मक रोचक काव्य है जिसमें चेतन एव जड मे परस्पर गहरा किन्तु मैत्री पूर्ण वाद विवाद होता है । इसमे चेतन वादी है और पुद्गल प्रतिवादी है । 'चेयन सुणु' यह पुद्गल कहता है तथा 'चेयन गुण' यह चेतन द्वारा कहा जाता है । पूरा काव्य सुभाषितो

एव सूक्तियों से भरा पड़ा है। कवि ने जिन सीधे सादे शब्दों में प्रस्तुत किया है वह उसके गहन तत्व ज्ञान एवं व्यावहारिक ज्ञान का परिचायक है। कवि ने लोक प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग करके सवाद को सजीव बनाने का प्रयास किया है।

भाषा, शैली एव विषय वर्णन आदि सभी दृष्टियों से यह एक उत्तम काव्य है।

५ नेमिनाथ बसन्तु

यह एक लघु रचना है जिसमे बसन्त ऋतु के आगमन का आध्यात्मिक शैली में रोचक वर्णन किया गया है। एक ओर नेमिनाथ तपस्या मे लीन है दूसरी ओर मादकता उत्पन्न करने वाली बसन्त ऋतु भी आ जाती है। राजुल ने पहिले ही सयम धारण कर लिया है इसलिये उसका मन रूपी मधुवन सयम रूपी पुष्प से भरा हुआ है। बसन्त ऋतु के कारण बोलसिरी महक रही है। समूचे सौराष्ट्र मे कोयल कुहक रही है। भ्रमरो की गु जार हो रही है। गिरनार पर्वत पर गन्धर्व जाति के देव गीत गा रहे है। काम विजय के नगारे क्या बज रहे हैं मानों नेमिनाथ के यश के ढोल बज रहे हैं। और उनकी कीर्ति स्वय ही नाच रही हो। सयम श्री वहाँ निर्भय होकर घूमती है क्योंकि सयम शिरोमणि नेमिनाथ के शील की १८ हजार सहेलियाँ रक्षा मे तत्पर है। उनके शरीर मे ज्ञान रूपी पुष्प महक रहे हैं तथा वे चारित्र चन्दन से मडित है। मोक्ष लक्ष्मी उनसे फाग खेलती है। नेमिनाथ तो नवरत्नो से युक्त लगते हैं लेकिन बसन्त स्वय नवरसो से रहित मालूम पडता है। नेमि ने छलिया बनकर मानो तीनो लोको को ही अपने अपने वश मे कर लिया है।

सयम श्री राजुल ऐसी सुहावनी ऋतु मे अपने नेमि को देखती है जो जब ससार जगता है तब वे सोते हैं और जब वे सोते हैं तो ससार जगता है। जिसने मोह के किवाड़ों को अपने अनिमिष नेत्रों से जला डाला है। स्वय राजुल अपनी सखियो के साथ विभिन्न पुष्पों से नेमिनाथ की वन्दना के लिए सबको कहती रहती है।

रचना काल

कवि ने इस कृति में किसी भी रचना काल का उल्लेख नही किया है। किन्तु मूल सघ के मडण भट्टारक पद्मनन्दि के प्रसाद से इस कृति का निर्माण हुआ, ऐसा कवि ने उल्लेख किया है।

मूलसघ मुखमडण पद्मनन्दि सुपसाइ।
वील्ह बसतु जि गावइ से सुखि रलीय कराइ॥

६. टंडाणा गीत

कविवर बूचराज ने एक और रूपक काव्य लिखे हैं, सबादात्मक काव्य लिखे हैं, तो दूसरी ओर छोटे-छोटे गीत भी निबद्ध किये हैं। उन्होंने सदैव जनरुचि का ध्यान रखा और अपने पाठकों को अधिक से अधिक आध्यात्मिक खुराक देने का प्रयास किया है। टडाणा गीत उसी धारा का एक गीत है जिसमें कवि ने ससार के स्वरूप का चित्रण किया है। गीत का टडाणा शब्द टांडे का वाचक है। बनजारे बैलो के समूह पर वस्तुओ को लाद कर ले जाते हैं उसे टाडा कहा जाता है। साथ ही मे ससार के दु खों से कैसे मुक्ति मिले यह भी बताने का प्रयास किया है।

कवि ने गीत प्रारम्भ करते हुए लिखा है कि यह ससार ही टडाणा है जो दु खों का भण्डार है लेकिन पता नही यह जीव उसके किस गुण पर लुब्ध हो रहा है। यह जगत् उसे अनादि काल से ठग रहा है। फिर भी वह उस पर विश्वास करता है। इसलिए वह कुमार्ग में पडकर मिथ्यात्व का सेवन करता रहता है और जिनराज की आज्ञा के अनुसार नही चलता है। दूसरे जीवो को सता कर पाप कमाता है और उसका फल तो नरक गति का बन्ध ही तो है।

गीत में कवि ने इस मानव को यह भी चेतावनी दी है कि उसने न व्रतो का पालन किया है और न कोई सयम धारण किया है। यही नही वह न काम पर भी विजय प्राप्त करने मे सफल हो सका है। मानव का कुटुम्ब तो उस वृक्ष के समान है जिस पर रात्रि को पक्षी आकर बैठ जाते हैं और प्रात काल होते ही उड कर चले जाते हैं। यह मानव नर के समान अपने कितने ही नाम रख लेता है।

कवि आगे कहता है कि यह मानव क्रोध, मान, माया और लोभ के वशीभूत होकर जगत मे यो ही भ्रमण करता रहता है। जब वृद्धावस्था आती है तो सब साथी यहाँ तक कि जवानी भी साथ छोड कर चली जाती है। कवि ने अन्त में यही कामना की है कि तू जब अन्तरदृष्टि होकर आत्मध्यान करेगा तब सहज सुख की प्राप्ति होगी।

> सुद्ध सरूप सहज लिव नितिदिन झावहु अन्तर झाणावें।
> जपति बूचा जिम तुम पावहु वछित सुख निरवाणावै।

इस गीत में कवि ने अपने नामोल्लेख के अतिरिक्त रचना काल एव रचना स्थान नही दिया है।

७ भुवन कीर्ति गीत

बूचराज की भुवनकीर्ति गीत एक ऐतिहासिक कृति है। इसमें भट्टारक

भुवनकीर्ति की यशोगाथा गायी गयी है। भुवनकीर्ति सकलकीर्ति के शिष्य थे जिनका भट्टारक काल सवत् १४९९ से सवत् १५३० तक का माना जाता है। भुवनकीर्ति अपने समय के बड़े भारी यशस्वी भट्टारक थे। भ० सकल कीर्ति के पश्चात् इन्होने देश मे भट्टारक परम्परा की गहरी व मजबूत नींव जमा दी थी। बूचराज जैसे आध्यात्मिक कवि ने भुवनकीर्ति की जिन शब्दों मे प्रशसा की है उससे मालूम होता है कि उनकी कीर्ति चारो ओर फैल चुकी थी। कवि ने भुवनकीर्ति के दर्शन मात्र से ही सांसारिक दु खो से मुक्ति एव नव निधि को प्राप्त करने का निमित्त माना है। उनके चरणों मे चन्दन व केशर लगाने के लिए कहा है। भुवनकीर्ति की विशेषताओ को लिखते हुए कवि ने उन्हें तेरह प्रकार के चारित्र से विभूषित सूर्य के समान तपस्वी तथा सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रतिपादित धर्म का बखान करने वालों मे होना लिखा है। वे षट् द्रव्य पचास्ति काय तत्वो पर प्रकाश डालते हैं तथा २२ परिषहो को सहन करते हैं। भ० भुवनकीर्ति २८ मूलगुणो का पालन करते हैं। उन्होने जीवन में दश धर्मों को धारण कर रखा है। जिनके लिए शत्रु मित्र समान है। तथा मिथ्यात्व का खण्डन करने जैन धर्म का प्रतिपादन करते हैं। भुवनकीर्ति के नगर प्रवेश पर अनेक उत्सव आयोजित होते थे, कामनियां गीत गाती तथा मन्दिर मे पूजा पाठ करती थी।

बूचराज ने भट्टारक के स्थान पर भुवन कीर्ति को आचार्य लिखा है इससे पता चलता है कि वे भट्टारक होते हुए भी नग्न रहते थे और आचार्यों के समान चारित्र पालन करते थे। लेकिन बूचराज की इनकी भेंट कब हुई हुई इसका उन्होने कोई उल्लेख नही किया। इसके अतिरिक्त इसी गीत मे उन्होने भट्टारक रत्नकीर्ति के नाम का उल्लेख किया है और अपने आपको रत्नकीर्ति के पट्ट से सम्बन्धित माना है। रत्नकीर्ति भ० प्रभाचन्द्र के शिष्य थे जिनका भट्टारक काल सवत् १५७१ से १५८१ तक का रहा है।

८. नेमि गीत

बूचराज ने अपने लघु नाम वल्हण से एक नेमीश्वर गीत की रचना की थी। यह भी अपभ्र श प्रभावित रचना है जिसमे १५ पद्य हैं। सवत् १६५० मे लिपिबद्ध पाण्डुलिपि दि० जैन अ० क्षेत्र श्री महावीर जी के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत थी।

लघु गीतों का निर्माण

कविवर बूचराज ने एक ओर मयणजुज्झ एव चेतन पुद्गल धमाल जैसी रचनाओ द्वारा अपने पाठको को आध्यात्मिक सन्देश दिया तो वहाँ नेमीश्वर

बारहमासा, नेमिनाथ बसत जैसी रचनाओं द्वारा विरह रस का वर्णन किया और अपने पाठकों को वैराग्य रस की ओर प्रेरित किया। किन्तु इसके अतिरिक्त छोटे-गीतों द्वारा मानव के हृदय में जिनेन्द्र भक्ति के भाव भरे, जगत की नि सारता बतलायी और अपने कर्तव्यों की ओर सकेत किया। लेकिन ये अधिकाश गीत पजाबी शैली से प्रभावित हैं। जिससे स्पष्ट है कि कवि ने ये सब गीत हिसार की ओर विहार करने के पश्चात् लिखे थे। ऐसा अनुमान किया जा सकता है। सभी गीत यद्यपि भिन्न-भिन्न रागो मे लिखे हुए हैं लेकिन मूलत सबका उपदेशात्मक विषय है। मानव को जगत की बुराइयों से दूर हटा कर सन्मार्ग की ओर ले जाना तथा ससार का स्वरूप उपस्थित करना ही इन गीतों का मुख्य उद्देश्य है। कभी-कभी स्वय को भी अपने मन की चपलता के बारे मे ज्ञान प्राप्त हो जाता है और इसके लिए वह चिन्ता करने लगता है। सयम रूपी रथ मे नहीं चढ़ने की उसको सबसे अधिक निराशा होती है। लेकिन उसका क्या किया जावे। अब तो सयम पालन एव सम्यकत्व साधना उसके लिए एकमात्र मार्ग बचता है और उसी पर जाने से वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

अब तक कवि के ११ गीत एव पद मिल चुके हैं। इन गीतो के अतिरिक्त और भी गीत मिल सकते हैं इससे इन्कार नही किया जा सकता। सभी गीत गुटकों मे उपलब्ध हुए हैं। इसलिए गुटको के पाठो की विशेष छानबीन की विशेष आवश्यककता है। यहाँ सभी गीतो का साराश दिया जा रहा है।

१ गीत (ए सखी मेरा मनु चपलु दहं दिसे ध्यावै वेहा)

प्रस्तुत गीत मे उस महिला की आत्म कथा है जिसे अपने चचल मन से बडी भारी शिकायत है। वह चचल मन लोभ रस मे डूबा हुआ है और उसे शुभ ध्यान का तनिक भी ख्याल नही है। यह पाचो इन्द्रियों के सग फसा रहता है। इस जीव ने नरको के भारी दु ख सहे हैं। मिथ्यात्व के चक्कर मे फस कर उसने अपना सम्पूर्ण जन्म ही गवा दिया है। उसका मन भवसागर रूपी भूल भुलैया मे पडकर सब कुछ भुला बैठा है, यही नहीं उसे दु ख होने लगता है कि वह अपनी आत्मा को छोड़कर दूसरी आत्मा के वश मे हो गया। इसलिए अब उसने वीतराग प्रभु की शरण ली है जो जन्म मरण के चक्कर से मुक्त है तथा रत्नत्रय से युक्त है।

गीत में ४ पद हैं और प्रत्येक पद ६–६ पक्तियों का है गीत की भाषा राजस्थानी है। जिस पर पजाबी बोली का प्रभाव है। गीत राग वडहस मे निबद्ध है। इसकी प्रति दि० जैन मन्दिर नेमिनाथ (नागदी) बू दी के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे उपलब्ध है।

१० गीत (सुणिय पचानु मेरे जीय वे की सुभ ध्यानि आवहि)

यह गीत राग धनाक्षरी मे लिखा हुआ है । गीत मे ४ पद हैं तथा प्रत्येक पद मे ६ पक्तियाँ हैं ।

प्रस्तुत गीत में इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि यह मनुष्य सच्चे धर्म का पालन नहीं करता है इसलिए उसे व्यर्थ मे ही गतियों में फिरना पडता है । मोहिनी कर्म के उदय से वह सत्तर कोडाकोडी सागर तक भ्रमता रहता है फिर भी बन्धन से नही छूटता । संपत्ति, स्वजन, सुत एव मनुष्य देह सब कर्म सयोग से मिल जाते हैं । मनुष्य जीवन रूपी रत्न मिलने पर भी वह उसे यो ही खो देता है तथा मधु बिन्दु प्राप्ति की आशा में ही पडा रहता है । निर्ग्रन्थ अर्हन्त देव ने जो कहा है वही सच है । उसी से जन्म मरण के बन्धन से छूट सकता है ।

११. गीत (पट मेरी का चोलणा लालो, लौग मोती का हार वे लालो)

राग धनाश्री मे लिखा हुआ यह दूसरा गीत है जिसमे ४ पद हैं तथा पहिले वाले गीत के समान ही प्रत्येक पद में ६ पक्तियाँ हैं ।

प्रस्तुत गीत मे हस्तिनापुर क्षेत्र के शान्तिनाथ स्वामी के पूजा के महात्म्य का वर्णन किया गया है । अभिषेक व पूजा की पूरी विधि दी हुई है । शान्तिनाथ की पूजा पीत वस्त्र पहनकर तथा अपने आप का शृगार करके करना चाहिए । कवि ने उन सभी पुष्पों के नाम गिनाये हैं जिन्हें भगवान के चरणों में समर्पित करना चाहिए । ऐसे पुष्पो मे रायचपा, केवडा, मरुवा, जुही, कुद, मचकुद आदि के नाम गिनाये है । कवि ने लिखा है कि जब मालिन इन पुष्पो की माला गूथ कर लाती है तो मन से बडी प्रसन्नता होती है । उस माला को भगवान के चरणो मे समर्पित कर फिर पाच कलशो से भगवान शान्तिनाथ का अभिषेक किया जाना चाहिए । अन्त मे कवि ने भगवान शान्तिनाथ की स्तुति भी की है—

मुकति दाता नयणि दीठा, रोगु सोगु निकदणो ।
अवतारु अचला देवि कुखिहि, राइ विससेण नदणो ।
जयदीस तू सुणु भणइ बूचा जनम दुखु दालिद हरो ।
सिरि सति जिणवर देउ तूठा थानु थपि हथिनापुरी ।

१२, गीत—रग हो रग हो रगु करि जिणवरु ध्याइयै ।

प्रस्तुत गीत राग गोडी मे निबद्ध है जिसके ४ अन्तरे हैं । कवि ने इस गीत मे मानव से जिनदेव के रग मे रगे जाने का उपदेश दिया है । क्योकि उन्होने आठ कर्मों पर तथा पचेन्द्रियो के विषयों पर विजय प्राप्त कर ली है इसलिए झूठ एव लालच

में नही फसकर जिनेन्द्र देव का ध्यान करना चाहिए। इसमें कवि ने अपना नाम बूचराज के स्थान पर 'वल्ह' दिया है।

१३ **गीत**—(न जाणी तिसु वेल की वे चेतनु रह्या लभाई वे लाल)

इस गीत की राग दीपु है। यह प्राणी किस कारण ससार में फंसा हुआ है। इसका स्वय चेतन को भी आश्चर्य होता है। इस जीव को कितनी ही बार शिक्षा दी जाय पर यह कभी मानता ही नहीं। अब तक वह न जाने कितनी बार शिक्षाएँ ले चुका है लेकिन उन्हे वह तत्काल भूल जाता है। यौवनावस्था मे स्त्री सुखो में फस जाता है तथा साथ ही मरना साथ ही जीना इस चाह मे फसा रहता है। अन्त में कवि कहता है कि इस मानव को इस माया जाल के सागर मे से कैसे निकाला जावे यह सोचना चाहिए।

१४. **गीत**—(वाले वलि वेहु मावे मनु माया भुलि रातावे।)
वाले वलि वेहु मावे रहइ आठ मादि मात्तावे।।

प्रस्तुत गीत सूहब राग मे निबद्ध है। इसमे ४ अन्तरे हैं। यह भी उपदेशात्मक गीत है जिसमे ससार का स्वरूप बताया गया हैं। पाचो इन्द्रियो द्वारा ठगा जाने पर और चारो गतियो मे फिरने पर भी यह मानव जरा भी नही सम्भलता और अन्त मे यो ही चला जाता है।

१५. **गीत**—(ए मेरे अपणे बाच वावा सोचवे को वल कलि यावा।)

जिनेन्द्र की अष्टविध पूजा से भव के दुख दूर हो जाते हैं। इसी भक्ति भावना के साथ इस गीत की रचना की गयी है। यह राग विहागडा मे निबद्ध है। जिसमें ४ अन्तरे हैं। प्रत्येक अन्तरा मे ६ पक्तियां हैं।

१६ **गीत**—(सजमि प्रोहणि ना चडे भए अनत सैसारि।)

यह गीत आसावरी राग मे है। प्रथम दोहा है। इस गीत में लिखा है कि सयम रूपी रथ नही चढने के कारण अनन्त ससार मे घूमना पड रहा है। यह प्राणी इस ससार मे घूमते-घूमते थक गया है। किन्तु न धर्म सेवन किया और न सम्यकत्व की आराधना की। नरकों की घोर यातना सही, वहा शीत एव उष्ण की बाधा सही, कुगुरु एव कुदेव की सेवा की लेकिन सम्यकत्व भाव पैदा नहीं हुआ। इसलिए कवि जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है कि उनके दर्शन से ही उसे सम्यक् मार्ग मिल जावे यही उसकी हार्दिक इच्छा है।

१७ **गीत**—(नित्त नित्त नवली देहडी नित नित अवइ कम्मु।)

प्रस्तुत गीत में भी ४ अन्तरे हैं। गीत मे कवि ने कहा है कि जीव को न तो बार-बार मनुष्य जीवन मिलता है और न अपनी इच्छानुसार भोग मिलते हैं इसलिए जब तक यौवनावस्था है, वृद्धावस्था नहीं आती है, देह को रोग नहीं सताते हैं तब तक उसे सम्भल जाना चाहिए।

राजद्वार पर लगी हुई झालरी रात्रि दिन यही शब्द सुनाती रहती है कि शुभ एव अशुभ जैसे भी दिन इस मानव के निकल जाते हैं वे फिर कभी नही आते। इसलिए अब किञ्चित भी विलम्ब नहीं करके जीवन को सयमित बना लेना चाहिए। जिस प्रकार सर्वज्ञ देव ने कहा है उसी प्रकार हमें जीवन मे उत्तम धर्म का पालन करना चाहिए।

प्रस्तुत गीत शास्त्र भण्डार मन्दिर बधीचन्द जी, जयपुर के गुटका सख्या ६७१ मे सग्रहीत है।

१८. पद—ए मनुषि लियडा कवल विगस्सेवा।
ए जिणु देखीयडा पाप पणस्सेवा।।

प्रस्तुत पद मे भगवान महावीर के आगमन पर अपार हर्ष व्यक्त किया गया है। महावीर के पधारने से चारो ओर प्रसन्नता का वातावरण छा जाता है। उनके दर्शन मात्र से जीवन सफल हो जाता है तथा धर्म की ओर मन लगने लगता है। मालाकार भगवान के चरणो मे विभिन्न पुष्पो से गु थी हुई माला अर्पण करता है। उनके चरणो मे ध्यान ही मानव को जन्म मरण के बन्धनो से छुडाने वाला है।

प्रस्तुत पद बू दी के नागदी मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत गुटके के ५७–५८ पृष्ठ पर लिपिबद्ध है।

१६ धम्मो दुग्गय हरणो करणो सह धम्मु मगल मूल।
जो भास्यो जिण वीरो, सो धम्मो नरह पालेह ।।१।।

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित धर्म दुर्गति को हरण करने वाला तथा मगलीक फल का देने वाला है इसलिए मानव को उसी धर्म का पालन करना चाहिए ये ही भाव उक्त कुछ छन्दो में निबद्ध है। सभी छन्द अशुद्ध लिखे हुए है तथा लिपिकार स्वय अनपढ़ सा मालूम देता है। फिर ये सभी छन्द तथा १८ वां सख्या वाला पद अभी तक अज्ञात था इसलिए इसका पाठ भी यहां दिया जा रहा है।

प्रस्तुत पद बू दी के नागदी मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत गुटके मे लिपिबद्ध है।

विषय प्रतिपादन

बूचराज जैन सन्त थे इसलिए उनके जीवन के दो ही उद्देश्य थे। प्रथम अपना आत्म विकास द्वितीय अपने भक्तों को सही मार्ग का निर्देशन। वे स्वयं जिन-धर्म के अनुयायी थे इसलिए उन्होने पहिले अपने जीवन को सुधारा फिर जनता को काव्यों के माध्यम से तथा उपदेशो से बुराइयो से बचने का उपदेश दिया। उनके समय में देश की राजनीति अस्थिर थी। हिन्दुओ एव जैनो पर भीषण अत्याचार होते थे। यहां के निवासियो को ठेस पहुँचाना मुस्लिम शासको का प्रमुख काम था। तत्कालीन मुस्लिम शासक विषयान्ध थे। उन्ही के समान यहा के राजपूत शासक भी हो गये थे। महाराजा पृथ्वीराज की वासना पूर्ति के लिए इस देश को गुलाम बनना पड़ा। मुहम्मद खिलजी ने अपनी वासना पूर्ति के लिए लाखो निरपराधियो का सहार किया।

कविवर बूचराज ने ब्रह्मचारी का पद ग्रहण करके सबसे पहले काम वासना पर विजय प्राप्त की तथा साधु वेष धारण कर ब्रह्मचारी का जीवन बिताने लगे। काम से अपने आप का पिण्ड छुड़ाया। इसलिए सर्वप्रथम कवि ने 'मयणजुज्झ' नामक एक रूपक काव्य लिख कर तत्कालीन वासनामय वातावरण के विरुद्ध अपनी लेखनी उठायी। यद्यपि उनके काव्य मे कही किसी शासक अथवा उनकी वासना विषयक कमजोरियो का नामोल्लेख नही है। लेकिन कृति तत्कालीन सामाजिक दुर्बलताओ के लिए एक खुली पुस्तक है। १६ वी शताब्दी अथवा इसके पूर्व नारियो को लेकर जो युद्ध होते थे वे सब देश एव समाज के लिए कलक थे। इनसे नारी समाज का मनोबल तो गिर ही चुका था उनमे अशिक्षा एव पर्दा प्रथा ने भी घर कर लिया था। काम वासना से अन्धा पुरुष समाज अपना विवेक खो बैठा था। और पशु के समान आचरण करने लगा था। कवि ने 'मदन युद्ध' रूपक काव्य मे काम वासना पूर्ति के लिए जिन-जिन बुराइयो को अपनाना पड़ता है उनका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है।

कवि ने अपनी दूसरी कृति सन्तोषजयतिलकु में 'लोभ' रूपी बुराई पर करारी चोट की है। इस पूरे रूपक काव्य मे लोभ के साथ-साथ अन्य कौन-कौन सी बुराई घर कर जाती है उनका विस्तृत वर्णन किया है। लोभ पर विजय पाना सरल काम नही है। बड़े-बड़े राजा महाराजा साधु महात्मा भी लोभ के चगुल मे फसे रहते हैं इसलिए कवि ने कहा है—

> दुसट लोभु काया गढ अतरि, रयणि दिवस संतवइ निरतरि।
> करइ ढीठु अप्पणु बलु मडइ, लज्या न्यातु सीलु कुल खडइ॥

लोभ पर विजय प्राप्त किये बिना चतुर्गति में लगातार भ्रमण करना पड़ता है। लोभ अकेला नहीं है उसका पूरा परिवार है। राग एव द्वेष इसके दो पुत्र हैं। झूंठ उसका प्रधान अमात्य है क्रोध और लोभ उसके सेनापति हैं। माया, कुव्यसन एव कुशील उसके अंग रक्षक हैं। कपट उसके ध्वज का निशान है तथा इन्द्रियो के विषय उसके घोडे हैं। दूसरी ओर सन्तोष राजा के समाधि नारी है तथा संवर पुत्र है। अठारह हजार शील के भेद उसके सिपाही हैं। सुधर्म, सम्यकत्व, ज्ञान एव चारित्र, वैराग्य, तप एव करुणा, क्षमा, संयम, महाव्रत ये सभी सन्तोष के अग रक्षक हैं। सन्तोष राजा है। वह रत्नमय हाथी पर सवार है। हाथ मे विवेक की तलवार है तथा सम्यक्त्व का छत्र सिर पर रखा हुआ है। दोनों ओर पद्म एवं शुक्ल लेश्या ही मानो चवर ढोल रही हैं।

कवि ने इस प्रकार दोनो ओर की सेना में घमासान युद्ध कराया है। एक ओर नीति है नैतिकता है तथा सम्यक् आचरण है दूसरी ओर लोभ है, झूठ है, माया एव कपट सभी अनैतिक। सन्तोष और लोभ के मध्य कवि ने अच्छा युद्ध करा दिया है। रण भूमि मे उतरते ही दोनो नायक प्रतिनायक मे वाद-विवाद तथा एक दूसरे को चैलेंज देते है जिससे पता चलता है कि स्वयं कवि को युद्ध भूमि का अच्छा ज्ञान था चाहे स्वय ने कभी युद्ध नही लड़ा हो। लेकिन जब वाद-विवाद मे लोभ सन्तोष पर विजय प्राप्त नहीं पा सका तो उसने तत्काल ही अपने अमात्य एव सेनापति को युद्ध प्रारम्भ करने के आदेश दिये। इसके बाद दोनो ओर से घमासान युद्ध होता है। जो अत्यधिक रोमांचक एव वीर रसात्मक है। युद्ध भूमि मे एक दूसरे पर घात प्रतिघात तथा जय पराजय का जो वर्णन किया गया है उसमे कवि की काव्य प्रतिभा का पता चलता है। लोभ ने जब झूठ का शस्त्र फेंका तो सन्तोष ने उस पर सत्य के शस्त्र से वार किया। और उसे परास्त करने मे सफलता प्राप्त की। लोभ ने तत्काल मान को रण मे लड़ने के लिए भेज दिया। सन्तोष ने उसका जवाब मार्दव से दिया। साथ ही महाव्रतों को भी रणभूमि में भेज दिया। दानो मे भयानक युद्ध होता है।

इस प्रकार कवि सत्य-असत्य के मध्य, मान और मार्दव तथा सम्यक् आचरण और मिथ्या-आचरण के मध्य युद्ध करा कर जगत को यह दिखाने मे सफल हो सका है कि चाहे प्रारम्भ में असत्य एव मिथ्याचरण की कितनी ही विजय दिखलाई देती हो लेकिन अन्त मे विजय होती है सन्तोष, सम्यक् आचरण एव मार्दव की। और वही स्थायी विजय होती हैं।

कवि की इस कृति मे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मनुष्यत्व प्राप्त

करने के लिए विवेक से काम लिया जाना चाहिए। एक ओर मोह है जिसने अपने माया जाल से सारे जगत को फसा रखा है और जो कोई इससे टक्कर लेना चाहता है उसे किसी न किसी की सहायता से वह गिरा देता है। वह नहीं चाहता कि मानव गुणों से पूर्ण रहे। सम्यक्त्वी हो और व्रतो के धारक हो। विवेक का वह महान शत्रु है।

सत् असत् की यह लडाई यद्यपि आज की नही किन्तु युगो से चली आ रही है। कवि ने इस लोभ रूपी बुराई से बचने के लिए जो उपाय बतलाये हैं वे ठोस प्रमाण पर आधारित हैं।

कवि की 'चेतन पुद्गल धमाल' तीसरी बडी रचना है। चेतन (जीव) और पुद्गल (जड़) का सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। जब तक यह चेतन बन्धन मुक्त नही हो जाता, अष्ट कर्मों से नही छूट जाता तथा मुक्ति पुरी का स्वामी नहीं बन जाता तब तक दोनो इसी प्रकार एक दूसरे से बधे रहेगे। कवि ने इसमे स्वतन्त्रता पूर्वक अपने विचारो को प्रस्तुत किया है। दोनो मे (चेतन, पुद्गल) वाद-विवाद होता है एक दूसरे की ओर से वादी प्रतिवादी बन कर कमियो एव दोषो को प्रस्तुत किया जाता है। सासारिक बन्धन के लिए जब चेतन पुद्गल को उत्तरदायी ठहराता है। तो जड़ बन्धनो का उत्तरदायित्व चेतन पर डालकर दूर हो जाता है। पूरा वर्णन सजीव है। सूझबूझ से युक्त है तथा आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। कवि ने पूरे प्रसग को सरल भाषा मे प्रस्तुत किया है जिससे प्रत्येक पाठक उसके भावो को समझ सके। आत्मा को सचेत रहने तथा पुद्गल द्रव्यो के सेवन से दूर रहने पर कवि ने सुन्दर प्रकाश डाला है।

कबीर ने माया को जिस रूप मे प्रस्तुत किया है बूचराज ने वैसा ही वर्णन पुद्गल का किया है। कबीर ने "माया, मोहनी जैसी मीठी खांड" कह कर माया की भर्त्सना की है। तो बूचराज ने पुद्गल पर विश्वास करने से जो कलक लगता है उसकी पक्तियाँ निम्न प्रकार है—

> इस जड तणा विसासु करि, जो मन भया निसकु।
> काले पासि वइट्ठि यह, निश्चै चडइ कलकु ॥४३॥

लेकिन जड तो शरीर भी है जिसमे यह चेतन निवास करता है। यदि शरीर नही हो तो चेतन कहाँ रहेगा। दोनो का आधार आधेय का सम्बन्ध हैं। उत्तर प्रत्युत्तर देने, एक दूसरे पर दोषारोपण करने तथा कहावतो के माध्यम से अपने मन्तव्य को प्रभावक रीति से प्रस्तुत करने मे कवि ने बडी शालीनता से काव्य रचना की है। वाद-विवाद मे कवि ने जड की भी रक्षा की है। चेतन पर दोषारोपण

करने मे उसने जरा भी सकोच नहीं किया है।[1] कवि ने चार सुख गिनाये हैं और वे हैं यौवन, लक्ष्मी, स्वस्थ्य शरीर एव शीलवती नारी। जहाँ ये चारों हैं वहीं स्वर्ग है। लेकिन सांसारिक सुख तो नश्वर है जो दिन दिन घटते रहते हैं अत संयम ग्रहण ही मोक्ष का एक मात्र उपाय है।

बूचराज ने केवल आध्यात्मिक तथा उपदेशात्मक काव्य ही नही लिखे किन्तु 'बारहमासा' 'नेमिनाथ बसन्त' जैसी रचनाएँ लिखकर अपनी श्रृ गार प्रियता का भी परिचय दिया है। यद्यपि इन काव्यो के लिखने का उद्देश्य भी वैराग्यात्मक है किन्तु इनके माध्यम से षड् ऋतुओ की प्राकृतिक छटा का तथा राजुल की विरहात्मक दशा का वर्णन स्वत ही हो गया है और इससे काव्यों के विषयों मे कुछ परिवर्तन आ गया है। राजुल नेमिनाथ के आने की प्रतीक्षा करती है। सावन मास से लेकर आषाढ मास तक १२ महिने एक एक करके निकल जाते हैं। राजुल का विरह बढ़ता रहता है तथा उसे किसी भी महिने मे नेमिनाथ के अभाव मे शान्ति नहीं मिलती है। वह अपनी विरह वेदना सहती-सहती थक जाती है। नेमिनाथ अपने वैराग्य मे डूबे रहते हैं उन्हे राजुल की चिन्ता कहाँ। यदि चिन्ता होती तो तोरण द्वार से ही क्यों लौटते। घरबार छोड़कर दीक्षा नही लेते। लेकिन राजुल को ऐसी बात कैसे समझ मे आती। उसने यौवन मे प्रवेश लिया था विवाह के पूर्व कितने ही स्वर्णिम स्वप्न लिये थे। इसलिए उनको वह टूटता हुआ कैसे देख सकती थी। बारहमासा मे इसी सब का तो वर्णन किया हुआ है। सावन मे बिजली चमकती है, मोर मेघ से पानी बरसाने को रट लगाते हैं, भाद्रपद मे चारो ओर जल भर जाता है और आने जाने का मार्ग भी नष्ट हो जाता है, इसी तरह आसोज मे निर्मल जल मे कमल खिल उठते हैं ऐसे समय मे राजुल को अकेलापन खाने को दौड़ता है, उसकी आखों से आसुओ की धारा रुकती नहीं। इसी प्रकार राजुल नेमि के विरह मे बारह महिने के एक एक दिन गिनकर निकालती है उनकी प्रतीक्षा करती रहती है। लेकिन उसका रोना, प्रतीक्षा करना, आहे भरना, सभी व्यर्थ जाते हैं। क्योंकि नेमिनाथ फिर भी नहीं लौटते और न कुछ सदेशा ही भेजते हैं। कवि ने इस प्रकार इन रचनाओ मे पात्रो के आत्म भावो को उडेल कर ही रख दिया है।

कवि ने उक्त रचनाओ के अतिरिक्त पदों के रूप मे छोटे-छोटे गीत भी लिखे हैं जो विभिन्न रागों में निबद्ध हैं। सभी पदों में अर्हत भगवान की भक्ति के लिए पाठकों को प्रेरणा दी गई है साथ ही मे वस्तु तत्व का भी वर्णन किया गया है।

---

१ काया की निंदा करई आपु न देखई जोइ।
जिउ जिउ भीजइ कांबली तिउ तिउ भारी होई ॥४१॥

इस जीव को फिर चतुर्गति में भ्रमण नहीं करना पडे इसलिए अरिहन्त भगवान की भक्ति मे मन लगाना चाहिए। ऐसे उपदेशात्मक पदों मे मनुष्य का अथवा इस जीव का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। कवि को बडी चिन्ता है कि यह जीवात्मा पता नहीं किस वेला से जगत पर लुभा रहा है। जिसको भी आत्मा मे लगन लग जाती है तो उसे कष्टो का भान नहीं होता।

सयम जीवन के लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति सयम रूपी नाव पर नही चढता है वह अनन्त ससार मे डुलता रहता है। इसलिए एक पद मे "सजमि प्रोहणि ना चढै भए अनन्त संसारि" के रूप मे प्रस्तुत किया है। सभी गीतो मे इस जीव को विषय रूपी कलापो से सावधान किया है तथा उसे मोक्ष मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। क्योकि स्वय कवि भी उसी मार्ग का पथिक बन गये थे तथा रात्रि दिन आत्म साधना में ही लगे रहते थे।

इस प्रकार कवि ने अपनी कृतियों मे पूर्णत आध्यात्मिक विषय का प्रतिपादन किया है जिसको पढकर प्रत्येक पाठक बुराई से बचने का प्रयत्न कर सकता है तथा अपने आत्मा विकास की ओर आगे बढ़ सकता है।

भाषा

कविवर बूचराज की कृतियों की भाषा के सम्बन्ध में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि बूचराज जन कवि थे। इसलिए जनता की भाषा मे ही उन्हे काव्य लिखना अच्छा लगता था। उनके काव्यो की भाषा एक सी नही रही। प्रारम्भ मे उन्होंने मयणजुज्झ लिखा जो अपभ्र श से प्रभावित कृति है। इसकी भाषा को हम डिंगल राजस्थानी के निकट पाते हैं। जिसमे प्रत्येक शब्द का बडे जोश के साथ प्रयोग किया गया है जिसका उद्देश्य अपने वर्णन मे जीवन डालना मात्र माना जा सकता है। मैं मयणजुज्झ की भाषा को राजस्थानी डिंगल का ही एक रूप कहना चाहूँगा। जिसमे जननी को जणणी (२), मध्य को मज्झि (७), पुत्र को पुत्त (१०) के रूप मे शब्दो का प्रयोग हुआ है। यही नही राजस्थानी शब्दो का जैसे पूछण लागा (२२), भाय्या (५६), वीडउ (३५) का भी प्रयोग कवि को रुचिकर लगा है। कवि उस समय सम्भवत ढू ढाड प्रदेश के किसी नगर मे थे इसलिए उसमे उर्दू शब्द जो उस समय बोलचाल की भाषा के शब्द बन गये थे, आ गये हैं। ऐसे शब्दो मे चूतडि (३०), खबरि (३१), फौज (६५) जैसे शब्द उल्लेखनीय हैं।

इस समय अपभ्रंश का जन सामान्य पर सामान्य प्रभाव था। तथा अपभ्र श की कृतियो का पठन पाठन खूब चलता था। इसलिए बूचराज ने भी अपनी

कृति में अपभ्रंश शब्दों का खुलकर प्रयोग किया । ऐसे शब्दों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

काव्य की भाषा	हिन्दी शब्द
रणाण	ज्ञान
रिसहो	ऋषभ
तित्थयरु	तीर्थंकर
जम्मरणु मरणु	जन्म मरण
धम्मु	धर्म
दुट्ठ	दुष्ट
तिजंच	तिर्यन्च
गब्बु	गर्व
गोइमु	गौतम

कवि ने कुछ शब्दो के आगे 'ति' लगाकर उनका क्रिया पद शब्दो मे प्रयोग किया है। इस दृष्टि मे हाकन्ति, हसति, कुकति, कुरलति, गायति, बजति (३४) जैसे शब्दों का प्रयोग उल्लेखनीय है।

यहाँ पर यह कहना पर्याप्त होगा कि कवि ने प्रारम्भ मे अपनी कृतियो की भाषा को अपने पूर्ववर्ती अपभ्रंश कवियों की भाषा के अनुकूल बनाने का प्रयास किया लेकिन इसमे उसने धीरे-धीरे परिवर्तन भी किया जिसे 'सन्तोष जयतिलकु' एवं 'चेतन पुद्गल धमाल' मे देखा जा सकता है। 'चेतन पुद्गल धमाल' कवि की सबसे अधिक परिष्कृत भाषा मे निबद्ध कृति है। जिसे कोई भी पाठक सरलता से समझ सकता है। सवादात्मक कृति के रूप मे कवि ने बहुत ही सहज एव बोलचाल के शब्दो में गूढ़ से गूढ़ बातों को रखने का प्रयास किया है। इसलिए उसमे कोमल, सरल एव सुबोध रूप मे विषय का प्रतिपादन हो सका है।

कवि की तीन प्रमुख कृतियो के अतिरिक्त 'नेमिनाथ बसन्तु', 'टंडाणा गीत' जैसे अन्य गीतो की भाषा भी राजस्थानी का ही एक रूप है। इन गीतो की भाषा पूर्वापेक्षा अधिक सरल है तथा शब्दो का सहज रूप मे प्रयोग किया गया है। इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

> राज दुवारह झल्लरी, अहि निसि सबद सुणावें।
> सुभ असुभ दिनु जो घटइ, बहुडि न सो फिर आवइ।
> आवइ न सो फिरि आइ जो दिनु, आउ हणि परि छीज्जइ।
> मोखहु सम्भाइकु व्रत संजम, विलमु विलम न कीजिए।

पच परमेष्ठी सदा समणउ हिसइ सिव्व समिकितु धरइ ।
खिणाखिरा चितावइ चेत चेतन राज द्वारह मल्लरी ।

लेकिन जब कवि ने पजाब की ओर प्रस्थान किया तथा वहा कुछ समय रहने का अवसर मिला तो अपनी कृतियो को पजाबी शैली मे लिखने मे वे पीछे नही रहे । इनके कुछ गीतो मे पजाबी पन देखा जा सकता है । शब्दों के आगे वे, वा, वो लगा कर उन्होंने अपने लघु गीतो मे इनका प्रयोग किया है । ए सखी मेरा मरण चपलु दसै दिसे ध्यावै वेहा' इस पक्ति मे कवि ने 'वेहा शब्द जोडकर पजाबीपने का उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

इस प्रकार बूचराज यद्यपि शुद्धत राजस्थानी कवि है । उसके काव्यो की भाषा राजस्थानी है लेकिन फिर भी किसी कृति पर अपभ्र श का प्रभाव है तो कोई पजाबी शैली से प्रभावित है । किसी-किसी पद एव गीत की भाषा भी दुरुह हो गयी है और उसमे सहजपना नही रहा है तथा वह सामान्य पाठक की समझ के बाहर हो गयी है ।

छन्द

कविवर बूचराज ने अपनी कृतियो मे अनेक छन्दो का प्रयोग करके अपने छन्द-शास्त्र के गम्भीर ज्ञान को प्रस्तुत किया है । मयरणजुज्झ मे १५ प्रकार के छन्दों का तथा सन्तोष जयतिलकु मे ११ प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है । केवल एकमात्र चेतन पुद्गल धमाल ही ऐसी कृति है जो केवल दीपक छन्द एव छप्पय छन्द मे ही निबद्ध की गयी है । इसके अतिरिक्त बारहमासा राग वडहसु मे तथा अन्य गीत राग धन्याश्री, गौडी, सूहड, बिहागडा एव असावरी मे निबद्ध किये गये हैं । बूचराज को दोहा, मडिल्ल, रड एव षट्पदु छन्द अत्यधिक प्रिय हैं । वह दोहा को कभी दोहडा नाम देता है । कवि ने रासा छन्द के नाम से छन्द लिखा है जिसमे चार चरण हैं । तथा प्रत्येक चरण मे १५ व १६ अक्षर है । मयणजुज्झ मे ऐसे ८९ से ९२ तक के ४ पद्य है ।[1] अपभ्र श के पद्धडिया छन्द का भी कवि ने प्रयोग किया है । लेकिन इसमे केवल ४ चरण हैं तथा प्रत्येक चरण मे ११ अक्षर हैं ।[2]

---

१ करिवि पलारणउ मोहु भडु चल्लियउ ।
समहु झलज बाल बधूलउ भुल्लियउ ।
फुट्टिउ जलहरु कु भ वाहु तरणि बिय ।
ले आइ तह अग्गि धूर्वतिय रंडतिय ।।८९।।

२ तमकायउ तिनि भडु मोहु, आइ, पुगु माया तह बुलाइ ।।
जब बैठे इनउ एक सत्थि, कलिकालु कहइ अब जोडि हत्थु ।।

रड छन्द में भी कवि ने कितने ही पद्य लिखे हैं। यह वस्तुबंध छन्द के समान है और किसी-किसी पाण्डुलिपि में तो रड के स्थान का वस्तुबंध नाम भी दिया है। इसी तरह अडिल्ल छन्द का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है। यह चौपई छन्द से मिलता जुलता छन्द है। रगिका छन्द मे आठ चरण होते हैं और यह सबसे बडा छन्द है। कविवर बूचराज ने इस छन्द का 'मयणजुज्झ' एव 'सन्तोष जयतिलकु' इन दोनो मे ही प्रयोग किया है।

कवि ने मयणजुज्झ एव अन्य कृतियो मे गाथा छन्द का भी खूब प्रयोग किया है। एक गाथा निम्न प्रकार है—

ए जित्ति चित्त खिल्लउ, आयउ आनदि घरहु वद्वारे।
उट्ठ उट्ठ चचल बयरिण, आरतउ वेगि उत्तारउ ।।५६।।

पाण्डुलिपि परिचय

मयणजुज्झ की राजस्थान के विभिन्न शास्त्र भण्डारो मे निम्न पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होती हैं

		पत्र सख्या	लेखन काल	पद्य सख्या
१	आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर (महावीर भवन के सग्रह मे) गुटका स० ४६ वेष्टन स० २८७	२४	—	१५६
२	भट्टारकीय शास्त्र भण्डार, अजमेर	२०	सवत् १६१६	१५८
३	शास्त्र भण्डार दि० जैन ठोलियान, जयपुर	—	सवत् १७१२	१५८
४	शास्त्र भण्डार दि० जैन बडा मन्दिर, जयपुर (गुटका स० ५ वेष्टन स० २६६४)	४१	—	१५८
५	शास्त्र भण्डार नागदी मन्दिर, बूदी	२२	—	१४२
६.	शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर, दीवान जी कामा (भरतपुर)	—	—	—

लेकिन प्रस्तुत पुस्तक में दिया जाने वाला पाठ प्रथम, चतुर्थ एवं पचम पाण्डुलिपियों के आधार पर तैयार किया गया है। आमेर शास्त्र भण्डार वाली प्रति जीर्ण अवस्था मे है। लेकिन उसके पाठ सबसे अधिक शुद्ध है। बूंदी वाली पाण्डुलिपि मे ५२।। पद्य एक लिपिकर्त्ता द्वारा तथा शेष पद्य दूसरे लिपिकार द्वारा लिखे हुए हैं। इसको पारा बाई द्वारा लिखवाया गया था। लिखने वाले देवपाल माली मलविरे का था। यहा क प्रति आमेर शास्त्र भण्डार वाली पाण्डुलिपि है। ख प्रति बूंदी के शास्त्र भण्डार की है। तथा ग प्रति से तात्पर्य शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथी मन्दिर जयपुर से है।

मयणजुज्झ

मगलाचरण—साटिकु

जो सव्वट्ठविमाणठुलि चविउ तइ णाण चितलरे ।
उवन्नो मरुदेवि कूलि रयणो, स्याग कुले मरुणो ।
मुक्त भोव सिरज्ज देस विमल, पाली पवज्जा पुणो ।
सपत्तो णिव्वाणि देउ रिसहो, काऊण तुव मगल ॥१॥

जिण वरहु वागवाणि, पसावउ सुहुमति देहि जय जणणी ।
वण्णेसु मयण जुज्झ, किव जित्तिउ भीय रिसहेस ॥२॥

रिसह जिणवरु पढम तित्थयरु,
जिणधम्मह उद्धरणु, जुयलु[1] धम्मु सव्वे निवारणु ।
नाभिराइ कुलि कवलु, सरवनु ससारह तारणु ।
जो सुर इदहि वदियउ, सदा चलण सिरधारि ।
किउ किउ रतिपति जित्तिउ, ते गुण कहउ विचारि ॥३॥

सुणहु भवियण एहु परमत्थु,
तजि चिता परकथा, इकु ध्यानु हुइ कन्नु दिज्जइ ।
मनुषिल्लइ कव लाज्यउ, हुइ समाधियउ धमी उपज्जइ ।
परचै जिन्ह चित्त एहु रसु, चालइ कसमल खोइ ।
पुनरपि तिन्ह ससार महि जम्मणु मरणु न होइ ॥४॥

सुणहि नही चूवइ जे रस,
जे इत्तिय कामरस, बहु उपाय चवइ जि रसीय ।
पर निदा पर कत्थ जिके, तियवरि उनमावि मत्तिय ।
पडिय जि घोर समुद्द महि, नहु आवहि सुभ ध्यान ।
नोमा रसु बहु अमीय रस, इलहि न सुणही कान ॥५॥

---

१. जुवल (क प्रति)

दोहा

चेतन एवं उसका परिवार—

पुव्व करम गहि बंधिउ, सहइ सु-दुख सताउ ।
इसु काया गढ भितरइ, वसै सचेतन राउ ।।६।।

रड

राउ चेतन काउ गढ मज्झि,
तहु जाणइ सार किमु, मनु मंत्री सपर बल वखाणउ ।
परवत्ति निवत्ति दुइ तासु तीय, ए प्रगट जाणउ ।
जाणउ निवत्ति विवेक सुत, परवत्तिहि भयो मोहु ।
सो मल्लि बैठा रजु ले, करइ[1] कपटु सनेह नित द्रोहु ।।७।।

मडिल्ल

मोहु घरहि माया पटरानी, करइ न संक अधिक सवलाणिय ।
करि परपंचु जगतु फुसलावइ, तहि निवत्ति किव आदर पावइ ।।८।।

दोहा

चलिय निवत्ति विवेकु ले, दीठु इसिय[2] आचार ।
मोहु राउ तब गरजियउ, दल बल सयन विचार ।।९।।

गाथा

गइ[3] कनकपुरीय[4] नामो, राजा तह सत्त करहु थिर रज्जो ।
तहं[5] ले पुत्त पहुत्तिया, बहु आदर पाइयो[6] तेण ।।१०।।
दीनी कन्या सत्त तिसु, सुमति सरस सुबिसाल ।
थप्पि रज्जि विवेकु थिरु घालि गलइ गुणमाल ।।११।।

---

१ कर कपटु नित द्रोहु (क प्रति)
२ इसे (क प्रति)
३. चेतन की स्त्री निवृत्ति अपने विवेक सुत को लेकर कनकपुरी मे पहुँच जाती है ।
४ पुण्यपुरी (ग प्रति)
५ तहां लोकत पहुतइ (ख प्रति)
६ पाइउ (ख प्रति)

मोह द्वारा चार दूतों को बुलाना—

आतु विवेकह मोह मनि, सोवइ पाव पसारि ।
येक दिवस इव सोचि करि, दूत बुलावइ चारि ।।१२।।

अडिल्ल

मोह[1] चारि तव दूत बुलाइय, सार लेण कु वेगि पठाइय ।
कण्दु कुसल पापु वखाणउ, अह[2] तहां दोह ववयउ आणउ ।।१३।।

खोजत खोजत देस सवाइय, पुन रंगइपट्टण[3] तब आइय ।
करि[4] भरडइ को बेस पठाइय धीरज कोतवाल तब दिट्ठिय ।।१४।।

दोहा

रंगपट्टण का वर्णन—

धीरज देखि कु दरसणीय, बहु ताडण तिन्ह दीय ।
पैसण मिले न नगर महिं, ले करि भागे जीय ।।१५।।

तीनि गए सिहु बाहुडइ, कपटु कीयउ मनि चिट्ठ ।
तित[5] सरवर तिय भरंहि जल, जितुसर आइ वइट्ठ ।।१६।।

रड

ज्ञान सरोवर ध्यानु तसु पालि, जलुवाणी विमलमइ ।
सवण वरपत व्रत वारह, थिरु पखी जोग तिहा ।
नलनि मगर प्रतिमा इग्यारह, अठतीसउ रिधि तिहां ।
आणद कु भ भरेहि, इक्क जीहते सुन्दरी वहु थुति जैन करेह ।।१७।।

दोहा

बहुती जैन पससना, करत सुणी इक नारि ।
कपट छल्यउ तब नगर कहु, रूप अतीकउ चारि ।।१८।।

---

१ ख प्रति में १३ से १६ तक के पद्य नहीं हैं ।

२ अवह ब प्रति

३ रंगपट्टन

४ करि भरडे कउ वेसु पइठे ग प्रति

५ तिस ब प्रति

मडिल्ल

नगरी माहि कपटु, सचरयउ ठाम ठाम सो देखत फिरयउ ।
देखि विवेक सभा सुविचक्षण, देखि प्रजा सब सुभ लक्षण ।।१६।।
देख्या न्याउ नीति मारग बहु, देख्या तह दुइ लोगु सुख सहु ।
भेद छेदु सबहि तिहां पायो, तब सु कपटु उठि पथिहि पायो ।।२०।।

कपट का वापिस अधर्मपुरी में आना—

आइ अधम्मपुरी सुपहुत्तउ, जाइ जुहार मोहसिहु कित्तउ ।
मोह बुलाइ बात तसु पुच्छइ, कहहु विवेकु कवणठुइ अच्छइ ।।२१।।

दोहा

पासि बुलायो कपटु तब, पूछण लागा बात ।
कहां विवेक निवसि कहु, कहु तिन्ह की कुसलात ।।२२।।

कपट का उत्तर—

मोह सुणहु तुम्हि कानु धरि[1], कपटु पयासइ एउ ।
जैसी देखी नयण मइ, तैसी बात कहेउ ।।२३।।

वस्तु बन्ध

धर्मपुरी का वर्णन—

बसइ पट्टणु पुन्नपुरु नयरु ।
तहां राजा सत चिरु, तिनि विवेकु गवि सुथिरु थप्पिउ ।
परणाई चीय तिनि, राजु देसु सबइ समप्पिउ ।
दया धम्मु तहां पालीयइ, कीजइ पर उपगारु ।
तह ठइ सुपनन दीसई, चोर धम्याई जारु ।।२४।।

दोहा

पवण छतीस्यु सुखस्यउ बसहि, करइ न को परतीति ।
काचे कचन गलिय महि, पडे रहहि दिनु राति ।।२५।।
तेरे गढ महि फोडि घर, चोर चरड ले जाहि ।
पर तिण कोइण छीपई, उसकी आज्ञा मांहि ।।२६।।
तहां परपचु न दीसई, जह छै विलियन कोइ ।
सभै सतोषी[2] मेदनी दीठी मइ अवलोइ ।।२७।।

---

१. दे क प्रति
२ ग प्रति मे २८–२६ पद्य को केवल २८ वां पद्य ही माना है ।

मडिल्ल

दीठा नयरु फिरि विचारयउ पखि ।
सुभ वाणी सुणीय सव्वह मुखि ।
राउ नयरु विषमउं वलु वलु अति ।
इव नरिंद करहि जिसु की थुति ॥२८॥
सुणु सुणहो तू मोह भुवपति, मई दीठा नयर तणी यह गति ।
स्वामि विवेकु चडिउ अति चाडइ, तुम्ह ऊपरि गव्वइ विउ हाडइ ॥२९॥

दोहा

जब पच्चारिउ कपटि तिनि, तब मनि मच्छरु बाधु ।
डालि बइथा जणु वांनरा, चूसडि बीछू खाधु ॥३०॥
तब[1] अहंकार कीयउ तह, लीयउ वेगि बुलाइ ।
खबरि करहु सब सयण कहु, सभा जुडी जिउ आइ ॥३१॥

रड

मोह राजा की सभा—

रोसु आयउ साथि तिसु झूठ,
अरु सोक सतापु तह, सकलपु विकलपु आयउ ।
आर्वत्ति चिंता सहितु, दुखु कलेसु को ध्यायउ ।
कलहु अदेसा छदमु तह, समसरु[2] बलगरु जाइ ।
अैसी राजा मोह की सभा जुडी सभ आइ ॥३२॥

दोहा

करिवि सभा तब मोह भडु, इव चिंतइ मन माहि ।
जब लगु जीवइ विवेकु इहु[3], तब लगु सुख हम नाहि ॥३३॥

रड

तात मोहहि बयण सुणीयइ,
सुत मनमथु उठियउ, सिर निवाइ करि जोडि जपइ ।
दावानलु जिउ जलिउ, थरहराइ करि कोउ कपिउ ।
रहहिकि कुंजर बापुडे, जितु वनि केहरि गंधि ।
आजु निर्वात्ति विवेक सुतु गहि ले आउ बंधि ॥३४॥

---

१ तब अहंकारन कीयु तिनि क प्रति
२ अवर समसव सब्बलु गरजाये ग प्रति
३. वहु ग प्रति

दोहा

मदन का बीडा लेकर प्रस्थान—

मोहु राउ तब हाथि करि, बीडउ अप्पिइ अप्पु ।
कुमति कुबुद्धि कुसील देइ, चलायिउ कदप्पु ॥३५॥

गाथा

गुडिय मयण मय मत्त गज्जिउ, सज्जिउ दलु विषमु बहु पयरेण ।
हरि बमु ईसु भज्जिउ, जब बज्जिउ गहिर नीसाणु ॥३६॥

गीतिका छंद

बसन्त का आगमन—

बज्जिउ निसानु बसन्तु आयउ, छल्ल कुंदसु खिल्लिय ।
सुगन्ध मलयापवण झुल्लिय, अब कोइल बुल्लियं ।
रुण झुणिय केवइ कलिय महुवर, सुतर पत्तिहि छाइय ।
गावन्ति गीय बजंति वीणा, तरुणि पाइक आइय ॥३७॥

जिन्ह कुंडिल केस कलाव कुंतिल, मंग मोंत्तिय वारिय ।
जिन्ह विणा मुवंग रुलति वदनिं गुंथि कुसम सवारियं ।
जिन्ह भवहं धुणहर धरिय समुह नयण बाण चडाइय ।
गावन्ति गीय वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइय ॥३८॥

जिन्ह तिलक त्रिगमय तिक्ख भल्लिय वीर धज फरकंतिय ।
जिन्ह कनक कुंडल कंध मनमथ मूढ पडिव भंतिय ।
जिन्ह दन्त विज्जु चमकत लग्गहि कुको कोनद वाइया ।
गायन्ति गीत वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइया ॥३९॥

जिन्ह सिहरिणि गिरिवर रोम वण घण, नर्कसि असिवर करठुए ।
इतु मग्गि चलतह समरि तेसकर कहुउ नर कित्तिय हुए ।
वज्जति बणरउ खिद् नूपुर काछ कुसम बणाइयं ।
गावन्ति गीय वजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइय ॥४०॥

जिन्ह रागि कटि बंधिय पटबर जिरहु उर कचूक से ।
हाकति हसति कुकति कुरलति मूढ पट लहरी बसे ।
जे कुटिल बुधिहि हरहि परचितु धरत चेउन जाणीय ।
गायन्ति गीय बजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइय ॥४१॥

देखतु दरसणु जिन्ह केरा रूप पहिला नासए ।
तिन्ह साथि फरसु करत खिणमहि सेउ तनहु पणासए ।
मोहणु करंतह भाउ छीजइ कहहु किमि सुखु पाइय ।
गायन्ति गीय बजन्ति वीणा, तरुणि पाइक आइय ॥४२॥

जे दव्वु देखत चित्त रजहि सील सत्त गवावहि ।
जे चहुव गति महि भमत भम लगु बहुतु दुख सहावहि ।
चिति अवरु चिताहि अवरु जपहि अवरु जुमपति आइय ।
गायन्ति गीय बजन्ति वीणा तरुणि पाइक आइय ॥४३॥[1]

रड[2]

तरुण पय कडत मतीस
मिथ्यातीय गय गुडिय विसन सत्त हय तेउ सज्जिय ।
सुनाहु कुसील तिणि पापु कुत निसान वज्जिय ।
छत्त धरियउ परमादु सिरि चमर कषाय ढलति ।
इव रतिपति सवूह करि चडिउ गहीर गाजति ॥४४॥

रंगिका

कामदेव का आक्रमण—

चडिउ गहीर गाजत घोरि मानइ न सक उरि ।
सुभटु आपणु जोरि अतुल बले तिणि कुसम कोवडलीय ।
भमर पण चकीय देखत तरुणि तिय कि कि न छले ।
सज्जि आणिय कुत कृपाण साथिये पाचउ बाण ।
फेरिये जगत आण अडिवि रणे, आइया आइया रे मदन राइ ॥
दुसहु लगउ धाइ चलिय सूर पलाइ गहवि तणो ॥४५॥

जिणि मिलिउ[3] सकरु माणु, छोडियउ अतर ध्यानु ।
गौरी सग हित प्राणु इव नडियौ, जिन तपहु बिच टालि ।
घालिउ माया जालि गहन रूपि निहालि फंद पडियां ।
हरि लियो मदन कसि सोलह सहस वसि रहिउ गूजरि रसि रयण दिणो ।
आइया आइया रे मदनु राइ दुसह लगो धाइ
चलिय सूर पलाइ गहिविलणो ॥४६॥

---

१. क प्रति मे यह पद्य तीन पक्तियों का है ।
२ ग प्रति मे इसका नाम वस्तु बध दिया है ।
३ मल्यउ—ग प्रति ।

जमदगनि वे स्वामी तू टालिउ तिन्हां विस, छोडि तपु गेहकितु ।
आपु छोडय, इदु विषय अधिकु व्यापउ अहिल्या टालीयउ आपु ।
गोतमी दिय सरापु, भगउ इयं जिन लकापति डियाइ ।
आणिय सीय चुराइ, घाल्या रावणु धाइ कइ जिणो ।
अइया अइया रे मदन राइ चलिय सूर पलाइ गहिवि जिणो ।।४७।।

जिणि सन्यासी जतीय सार, जगम सिर जटा धार ।
जोगीय मडित छार चलिय रसे, जिन मरउ भगववेस ।
विहडी लुंचित केस, काली पोस दरवेस कि कि नगसे ।
जख्य राकस गधव गुरु, सुभट सबल नर पसुव पखिय चर कित्तिय थुणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागा धाइ ।
चलिय सूर पलाइ गहियाचितणो ।।४८।।

कि के जैन के सेवणहार ते तो कीते भिष्टचार ।
भोगिय सुख अपार ससार तणो ।
उहि देखत भये अध पडिय करम फध ।
किये कुगत बंध जनम घणो ।
जैसे बभदत्त चक्कवति काम भोग करि थिति ।
गयउ नरक गति सतमि थुणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागो घ्याइ ।
चलिय सूर पलाइ गहियाचितणो ।।४९।।

जिनि कुंड रिषि ताडि, लीयउ सुभट पाडि ।
सिखर हु दिया राडि तपु तजिय ।
लीए सबल सुसर अगि रहिउ तिय रगि ।
विषय विषय सगि सुख भजिय ।
वीर चरण सेवक नितु हविव लोलप चित्त ।
सेणिकु नरय पत्त सुख निषणो ।
अइया अइया रे मदन राइ दुसहु लागो घ्याइ ।
चलिय सूर पलाइ गहचितणो ।।५०।।

इक अबुह सजम रूपि, छलिय मदन भूप ।
दीनीय ससार कूप दसण भट्टे ।
नित करहिसि परपचु अनेकह जीव वचु ।
तजि मान लेहि कचु अप्पणु हट्टे ।

ते तौ रहिय छुवि आरभ सकिन बरतु डंभि ।
उवर भरहि डंभि रजिवि जिणो ।
भइया भइया रे मदन राइ दुसहु लागी व्याइ ।
चलिय सूर फलाइ गहिजितणो ।।५१।।

षट्पद

जितउ सुभटु बलिवडु जिन्ह गज सिघ निवाइय ।
जीतउ दैत्य प्रचड लोह जिन्ह कुमगिहि लाइय ।
जितउ देउ बलि नवषि धारि बहु रूप दिखालहि ।
जितउ दुट्ठु तिजच करिवि लघु वणखड आलहि ।
असपति गजपति नरपतिय भूपतिय भूरहिय भरि ।
ते पचछ लच्छ ले टालिय पटल मयण नृपति परपचु करि ।।५२।।

रड

जीतिये सहि कीयउ मनि हरषु ।
पुप्पपुरि[1] दिसि चलिउ, तब विवेक आवत सुणियो ।
चित्त तरि चितविउ करिवि मतुये रिसउ मुणियउ ।
धम्मपुरिहि श्री आदि-जिणु सुणियउ परगट नाउ ।
तत्थ गए हउ उब्बरउ मदन पवावउ ढाउ ।।५३।।

गाथा

इव करत गुह्य मंतो, आयउ सुह ध्याण [illegible] रिसहेसु ।
विवेक वेपि चवहु बुल्लावइ देव सरवन्नि ।।५४।।

दोहा

चलिउ विवेकु आमदु करि, धम्मपुरी सुपहुत्त ।
परणाई सजमसिरि, सुखु भोगवइ बहुत्त ।।५५।।
जब विवेकु नाठउ सुण्या, चितवइ मनगु मयाणु ।
भाग्या पीठि न आवहि, पुरुषहि इहु परवाणु ।।५६।।[2]

---

[1] पुष्पपुरी ।
[2] 'ग' प्रति में ५६ वें पद्य की दूसरी पक्ति नहीं है ।

रड

कामदेव का स्वदेश आगमन—

फिरिउ मनमथु जिति सब देसु,
भट भट जै जै करिहू, विसाव गृयव्व गावहि ।
बहु खिल्लिय दुटु मणि, कुजसु पडहु गढ महि बजावहि ।
माया करइ बधावणउ, मोह रहसि चित्त ।
सव्वे इछ्या पुण्णिका, जिण घरि आयउ पुत्त ।।५७।।

दोहडा

माइ पिता पगि लागि करि, तब मनमथु घरि जाइ ।
रहसिउ अगिन मावई, जीते राखा राइ ।।५८।।

गाथा

ए जिति चित्ति मिल्लउ, आयउ आनद घरहू जब बारि ।
उट्ठु उट्ठु बद बयणि, आरतउ बेगि उतारउ ।।५६।।
मुहु रहिय मोड मानणि, पुच्छइ तब मयणु कवण कज्जेण ।
को सूरु वीरु अटलो कहि सुंदरि मुज्झ सरि भुवणे ।।६०।।

रड

रति एवं कामदेव के मध्य प्रश्नोत्तर—

कत जित्तउ कवणु तै देसु,
को पट्टणु वर णयर, कवणु सबलु भूपत्ति झिगायउ ।
किसु छत्तु विहडियउ, करिवि बंदि कहु कासु ल्यायो ।
किसु मलिया परतापु, तै कहु कहु फेरी आण ।
रति जपइ हो मदन भड कहु पौरिषु प्रमाणु ।।६१।।
जिणि सकरु इदु हरि बमु,
वासिग्गु पयालि जिसु, इदु चदु गहु गण तारायण ।
विद्याधर यक्खसु गधव्व सहि देव वण इण ।।
जोगी जगम कापडी सन्यासी रस छंडि ।
ले ले तपु वण महि दुडिय ते मइ घलि बदि ।।६२।।

दोहा

सुणि करि पौरिष मुज्झु तणा, थाल्यो मण भरमाई ।
समुहु अणिय न जुज्झयउ, गयउ विवेकु पलाइ ।।६३।।

रड

जाणियतु पिंव नयंड विवेकु,
धम्मपुरि भइ चढिउ संवेंवि सनमाणु दीयउ।
परतापै नरेंजियो, सूरजिम उद्योतु कियी।
जीवतउ वैरी गयउ, देखुवि करिही सौंतु।
ता तू मदनु न मोहु भडु दुहु गवावइ षोतु ॥६४॥

दोहा

ढढोलिय तीन्यो[1] भुवण कंतु लिखउ सुहडाइ।
सोमइ कहूँ न दिक्खियउ सो मुज्झु पकडइ बाहु ॥६५॥
वडहु वडेरी पिरथवी, घर महि सम्वहि कासु।
तब बल पौरिष कत तुव, जे जितहि मादोसु ॥६६॥
जब तिनि नारि विछोहियउ, तब तमकिउ तिसु जीउ।
जणु पजलती अगि महि, लेकरि घालिउ घीउ ॥६७॥

कवित्त

कामदेव का धर्मपुरी की ओर प्रस्थान—

रोम रोम उद्धसिया, भिकुटि चडिय निललाडिय।
गुरणाउ जिउ सिघु बालि चललिय अगडाइये॥
विसहर जिउ फुंकरइ, लहरि ले कोपइ चडियउ।
जिव पावस घण मत्त विवसु गज्जवि गइ घडियउ।
नहु सहिय तमतिसु तिय किय, मछ तुछ जलि जणु सलिउ।
श्री धम्मपुरी पट्टण दिसहि, तवसु दुट्ठ मनमथु चलिउ ॥६८॥

गाथा

चल्लियउ रवहुणाही, सुंदरि धरि पयण चित्त मज्झमि।
कलि कालि तासु सुणियउ, उट्ठयउ मोहु भडु जाइ ॥६९॥
उट्ठि उठ्यो मोहु राउ दिट्ठिउ नर सूरु वीरु परचडो।
तू कवण कत्थ वासहि, कहु आयो कवण कज्जेण ॥७०॥

---

[1] तिरिणउ क प्रति, तिरिण ख प्रति

रड[1]

सुणहु स्वामीहउ सुकलिकालु
हस खेनहि संचरिउ, मइ[2] प्रतापु आपणौ कियउ ।
विवेकु दुडाइयउ, मुकति पथु चलण न दीयो ।
कोडाकोडी अट्ठदस सायर महबलु कित्तु ।
आदीस्वर भय भग्गियउ, इव तुम्ह सरणि पहूत्तु ।।७१।।

दोहा

आइ पडिय तिहि[3] अवसरिहि, पुरषहि सीझहि काम ।
कलीकालि पचारिउ, मोहु तमक्किउ ताम ।।७२।।

पद्धडीय छन्दु

तमकायउ तिनि भडु मोहु जाइ, पुणु माया तह ठैले बुलाइ ।
जब वैठे धुनउ एक सत्थु, कलिकालु कहइ जब जोडि हत्थु ।।७३।।
तुम्ह पूत मदन अति चडिउ तेजि, मन माहि न देखिउ सो आगेजि ।
घर माहि वसत तिनि नारि दुट्ठि, आरत्तउ न कियउ वेगि उट्ठि ।।७४।।

कामदेव का प्रभाव—

तहु सहीय तमक मनमथ प्रचडु, उत्तरिउ जाइ तिसु घोर कुडु ।
सो घोर कुड दुद्धरु अगाहु, जलु रुहिरु पूई भरियो अथाहु ।।७५।।
मय भीम भयकर पालि जाहु, आसाता वेयणि नलनि ताहु ।
जहु विरख तिक्ख करवाल पत्त, झडि पडहि तुट्ठि छेदहि सिगात्त ।।७६।।
जहु ढल कल पखियन नेहु, जिन्ह चुच सडासिय भखहु देहु ।
जितु लहरि अगनि झाला तपाइ' खिणमहि सतनु घालहि जलाइ ।।७७।।
करि मगर मंछ ए दुट्ठ जीय, तिसु भीतरि ते पुण लेइ दीय ।
वे परमाधरमी वधिक आणि, ते घालि जालु काढति ताणि ।।७८।।
इक लो कुहाड कूकहि गहीर[4], ते खड खड करि घालहि सरीरु ।
जहु तपा तपहि नित लोह थभ, जिन्ह लावहि अगिजि घलिय वभ ।।७९।।

---

१ ग प्रति मे रड के स्थान पर वस्तु बन्ध छन्द का नाम दिया है ।
२ मैनु (ख प्रति)
३ तिस्सु (क, ख प्रति)
१ अहीर (क प्रति)

याइयइ सु ता बाताइ सुद्ध, मदि मासि जिहुं तिय जीव लुद्ध।
तहू घाट विषम कुभी बहीर, तिसु माहि पचावहि ले सरीरु ॥८०॥
सिरु तलै करहि उपरि सि पाउ, वै बालहि सबल निसक वाउ।
भाले करि पीडहि बाण माहि, रड बडहि रडहि बहु दुखु सहाइ ॥८१॥
वै छेयण भेयण ताडणह ताप, वैसहहि जीय जिमि कीय पाप।
जिनि अन्यायभावी मोह राइ, तिसु सुर मज्झहि तेहू जाइ ॥८२॥
तहू स्वामि उत्तारिउ मयण कीय, मइ भाइ सारथयह तुम्ह दीय,
धम्म[२]पुरु गढु अति विषम ठाणु, तिस उप्परि चलिउ करि बिताणु ॥८३॥
इव भाइ जुडियइहु विषम सधि, उहू सक न मानइ जीति कधि।
उहु अप्पु अप्पु अप्पउ भणाइ, उहु अवरि कोडि नबडि गिणाइ ॥८४॥
आदीसुरस्यउ मिल्लिउ बिबेकु, उहु वैसि कियउ दुहु मतु एकु।
अप्पणउ दाउ सहुको गण ति, को जाणइ पासा कि ढलति ॥८५॥

दोहा

इती बाय सुणेवि करि, चित्ति उप्पणउ कोहु।
सघनु सवै सवूहि करि, इव गडु चल्लिउ मोहु ॥८६॥

रड

मोह का साथ होना—

मोहु चल्लिउ साथि कलिकालु,
तहहू तउ मदन भडु, तह सु जाइ कुमतु कियउ।
गढु विषमउ धम्मुपुरु, तहसु सघनु सवूहि लियउ।
दोनउ चल्ले पैज करि, गब्वु धरिउ मन माहि।
पवण प्रबल जव उछलहि, घण घट केम रहाहि ॥८७॥

गाथा

रहहि सुकिउ घण घट्ट, जुडिया जह सबल गजि घट्ट।
सवखिडि चले सुभट, पयाणउ कियउ भड मोह ॥८८॥

रासाछदु

करिवि पयाणउ मोहु भड चल्लियउ।
समुह झषाज वालबधूलउ भुल्लियउ।
फुट्टिउ जलहरु कुभ ब्याहु तरुणि दिय।
ले आइ तह अगिय घूषतिय रडतिय ॥८९॥

---

२ धर्मपुरी

अपशकुन होना—

मुंडिय सिरु नर न कटउ हथि कपालु जिमु ।
समुहुई छींक पयाणउ करत तिसु ।
तिण तुस चम्म कपास कद्दम्म गुड लवणा ।
मोह चलत तिसु नगर हू दीठे ए सवणा ।।६०।।

प्रथम मजलि चलत सुफौही फोकरई ।
नाइक बाभहु मालउ बत्तीसी अणुसरइ ।
बांवइ काला बिसहरु भैसिहू फणु हुणई ।
सुक्क विरषतहि जुगिणि बोलइ दाहिणए ।।६१।।
सवणन सुपिनउ मानइ, चडिउ गविमते ।
कज्ज बिणासण अवसरि पुरुषह डिगय मते ।

धर्मपुरी के दर्शन होना—

मजलि मजलि करि चलिउ, धम्मपुरी दिसहि ।
आगम ध्यातम सार जणाइय वेचरहि ।।६२।।

दोहा

आगम ध्यातम बिभ्रिचर तिन्ह जणायउ ।
आइ तुम्ह उप्परि पल्याण्यो, स्वामी मनमथु राइ ।।६३।।

गाथा

सुणिय बात मणरसु उपायउ ।
मरुवसणु न क्कीवु बुलायउ ।
सार देह बिब्वेक बुलावहु ।
सभा जोडि सुहु मतु उप्पावहु ।।६४।।

कवित्तु

विवेक की सेना—

सम दम सबरु ढुकु ढुकु वैरागु सबलु दलु ।
बोहि तत्तु परमत्थु सहण सतोष गरुवभर ।
खिमा सु अज्जउ मिलिउ मिलिउ मद्दउ मुत्तिसउ ।
सजमु सुत्तु सउच्चु आयउ किंचणु बभवउ ।
बलु मडि मिलिय करुणा अटलु सासण बिण बधाइयउ ।
ले फौज सबलु सवूहि करि इव विवेक भडु आइयउ ।।६५।।

हक्कारिउ सुभट चारितु सज्जिउ तपु सैनु सबलु संबूहि ।
गहु गहुउ जैन चित्त, इव चल्लिउ रिसह जिणणाहि ।।९६।।

चल्लिउ रिसह जिणदु स्वामी, बिहिसिया मनु कवलु ।
तिसु पथि सनमुख आइया, नाथि यामे मतु धवलु ।
मृदग तूरा सब भेरी झल्लरी झकारु ।
दाहिणइ सु दरि सबद मगल, गीय करहि उचारु ।।९७।।

ले हत्थि पूरणु कलसु लक्खिमी, मीलिय सनमुष आइ ।
पावकु दीपग्गु जोति समसरि देषिया जिण राइ ।
सब रच्छ सुरही अति अनूपमु, काढ तासु गुवालु ।
पयसतु पवलिहि दिट्ठ नरवइ, करगहै करवालु ।।९८।।

निलटतु वावइ वोलिया चडि सुफल बिरखहि थाइ ।
इकु निवलु जुगलु पलोइया सावइ चडिया आइ ।
गरजत सुणिया केसरी सिरि धरया चवरु उठाई ।।९९।।

दुइ दिट्ठ गयवर अति सउज्जल करत गल गरजार ।
आवत फल नारिंग निहाले अवर कुसमहि हारु ।
सब सवण सुपन सजोग उतिमालवधि पोतइ जाम ।
जे नीति मारग पुरष चालहि तिनहि सीझइ काम ।।१००।।

रड

हुइय उत्तिम सवेण जाम
गढ पाषलि उत्तरिउ, सुमति पच सा बाण छाइय ।
मनुसूरहु गहु गहिउ, जाम नीसाण परगढ बजाइय ।
दोनउ ढुक्किय सबल दल, जुडिय सुभट मुख मोडि ।
रणु दिट्ठहि जे नर खिसहि, तिनकी जननी खोडि ।।१०१।।

पद्धडीय छन्दु

तिन्ह जननि खोडि जे भजि जाहि, पच्चारिय नर पौरिषु कराहि ।
रणु अमरणु देखहि सूरबीर, पे रुणिय जेव नच्चहि गहीरु ।।१०२।।

आइयउ पहिल अन्यान चोरि, उट्ठि न्यान पछाडिउ करिवि जोरु ।
मिथ्यातु उठिउ तव अति करालु, जिनि जीउ रुलाउ अनत कालु ।।१०३।।

घल्लिउ कुमग्गहि लोउ तासु, तिनि मुसिउ न कोको को विस्वासु ।
अनादि काल जो नरहु सल्लु, उट्ठ मिडइ सुभटुए कल्लु मल्लु ।।१०४।।

युद्ध का वर्णन—

लोगालोगोग्ररु दुहु पयार ।
जिसु सेवत भमियइ गति चयारि ।
समिकतु सुसूरु तब दिट्ठु होइ ।
बलु मडि रणहि जुट्टियो सोइ ॥१०५॥

फाटियो तिमरु जब देखि भानु ।
भगियो छोडि सो पढम ठाणु ।
उठि रागु चलिउ गरजत गहीर ।
वैरागि हणिउ तणि तासु तीरु ॥१०६॥

उठि धाइ दुसह तब विषइ लगु ।
पचखाणु देवलु परइ भगु ।
उठि कोहू चलिउ झाला करालु ।
तब उपसमु ले हणियो करवालु ॥१०७॥

मद् भट्ठु सहित गजिउ मानु ।
जिनि मद्दवि जित्ति कर बिताणु ।
तब माया अति उट्ठी करूर ।
मंलि अज्ज बिदिन्नी होट्ठु चूरि ॥१०८॥

बाईस परीसह उठेय गज्जि ।
दिखि देखि धीरजु सुभटु जि गईय भज्जि ।
आइयउ कलहु तह कलकलाइ ।
दुडि गयउ दुसहु तिसु खिमा धाइ ॥१०९॥

दुक्कियउ झूट्ठ मूग्गिलु अगेजु ।
सति राइ गवायो तासु तेजु ।
कुसीलु जु होत दुट्ठ चित्ति ।
बलु करि बिदारिउ बंभदत्त ॥११०॥

दलु चलियउ मोहह मुख फिराइ ।
तब लोभु सुभटु भो जुडिउ आइ ।
तिणि दारुणि बलु मडिउ बहुतु ।
उन बिकट बुधि सिहू दिनी सुधुत्त ॥१११॥

उह कुधी करइ नित पुरिष सत ।
उह व्यापि रह्या सह जीव जता ।

उट्ठु लडइ खिणहू खिणि मज्झि आइ ।
बलु करइ बहुडि सवरइ आइ ॥११२॥

दसमें गुणठाणो लघु चडेइ ।
बलु करइ प्रधिकु नहु आण देइ ।
तिसु देखि पराक्रमु खलिय राइ ।
सतोषु तबसु उट्ठियउ रिसाइ ॥११३॥

तिसु सीसु हण्या ले वज्ज दडु ।
खँड हुइउ लोभु पडियो प्रचडु ।
एहु देखि जूदधु सो कलियकालु ।
खिण माहि फिरिउ नारदु बितालु ॥११४॥

तिनि तजिय कुमति सुहमति उपाइ ।
विव्वेकु सहाई हुयउ आइ ।
जो चलन न दित्तउ मुत्ति मग्गु ।
कर जोडि सुस्वामी चलण लग्गु ॥११५॥

आसरउ उठिउ सब विधि समत्थु ।
रण मज्झि भउ करि उब्भ हथु ।
सवर बलु आणिउ ताम चित्ति ।
तिसु खोइय मूलि उप्पाडि घित्ति ॥११६॥

बहु भिडिय सुभट रण महि पचारि ।
के भग्गिय के घल्लियसि मारि ।
दल माहि जु क्रम हुतिय प्रचडु ।
सप सूर किये ते खड खड ॥११७॥

जब बात सुणीयहु मोहु राइ ।
तब जलिउ बलिउ उट्ठिउ रिसाइ ।
करि रत्त नयण बहु दत पीसि ।
मनिहाउ पडिउ जण तुट्टि सीसि ॥११८॥

बहु रूहि रूपि सो डह्यो आप्पु ।
सो बहुत करइ जीयह सतापु ।
रैं मडिउ सु रणमहि दुसहु धाइ ।
उस समुहु न ढुक्कइ कोइ आइ ॥११९॥

वस्तु बन्ध

को न ढुक्कइ समुहु तिसु ग्राइ ।
बलु पौरिषु सबु हरिउ मलइ—
ग्रमल सो ग्रचल चालइ ।
बैरागहु चरितहु तपहु ग्रवरु सजमहु टालइ ।
ग्रट्ठाइसै पगल जिसु लगाइ जिस कहु ग्राइ ।
सो नरु जम्मणु मरणु करि बहुतै जोणि भमाइ ।।१२०।।

तब बुलाय देवु ग्रासीसु,
बिव्वेकु सबलु मडु' अप्पुवकारणि थानिकि बइट्ठिउ ।
ग्रवगजन्तु मोहकौ, ग्यान बुद्धि ग्रवलोइ देषिउ ।
पेरिउ तब तिनि सीख कहि, दे ग्रसिवरु मुहु भाणु ।
वेगि बियारहु धुत्त दुइ, जिउ प्रगटै निव्वाणु ।।१२१।।

गाथा

प्रगटावण पहुमतो, चडियो वव्वेकु सज्जि भोवालो ।
लो सरयन्नि बलणि लम्भिवि, लेउ नमतु चलियउ एव ।।१२२।।

चौपाई

उन्मतु ले चल्लिउ मनमहि खिल्लिउ ।
उपजी बहुत समाधि रणि रगणि ग्रायो ।
साधहु भायो नाठी कुमति कुव्याधि ।
रंजिय सुहू सज्जणि जिव पावस घण ।
दुज्जण मयै तालो मोहहु मौषडनु ।
ग्यानहु मडनु चडिउ बिवेकु भुवालो ।।१२३।।[1]

उस बाभहू जे नर, दीसहि रत खर किसे किसहि न काजे ।
जिन्ह कहु प्रसन्ना पुछिल्ल पुन्ना, ते राणे ते राजे ।
ते ग्रविहउ मित्तहु निम्मल चित्तहु, बिगसत बचन रसालो ।
मोहहु मौषडणु ग्यानहु मडनु चडिउ बिवेकु भुवालो ।।१२४।।

---

१ क ग्रौर ग प्रति की छन्द सख्या मे अन्तर है

जो दलि मलि पूरा, सब विधिसूरा, पचहु महि परवीणो ।
परमत्थह बुज्झइ आगमु सुज्झइ अम्मि ध्यानि चित्त लीणो ।
जो फेडै दुर्गति आर्णी सुहमति बहु जीवह रखवालो ।
मोहह मौखडनु न्यानुह मंडणु चडिउ विवेकु भुवालो ॥१२५॥

जो दव्वह खित्तहि, जाणै कित्तिहि काल भावसु विचारइ ।
नयसुत्तिहि सत्थहि भेयहि भत्थहि सकट विकट निवारइ ।
जो आगम विमासइ निरतउ भासइ मदन खनन कुद्दालो ।
मोहह मौखडनु न्यानह मडनु चडिउ विवेकु भुवालो ॥१२६॥

छप्पदु

पाप पटलु निद्दलनु जोति परमप्पय कासणु ।
चिंता मणियहु रमणु भवियण जण मन उल्हासणु ।
सकल कल्याण कोसु, सवइ आरति भय खिल्लणु ।
जडिगत जीव भवठभि, भार धम्म धुर झुल्लणु ।
सतुट्ठ होइ जि सुर नर, मिलिउ तासु न पडइ कम्मपहु ।
चडिउ विवेकु इव सज्जि भडु, करण प्रगट निव्वाण पहु ॥१२७॥

पद्धडिय छंदु

मोह एव विवेक के मध्य युद्ध—

परगटणु मग्गु निव्वाणु कज्जि ।
विवेकु सुभटु तव चडिउ सज्जि ।
तब ढोयो कीयो तेनि जाइ ।
मुहु मोडि चलिउ तब मोहु राइ ॥१२८॥

देखिउ मदनु जब खिसत मोहु ।
तब चल्लिउ अप्पु मनि करि विछोहु ।
उह ढोलउ दुक्किय काल कधि ।
तब भिडिय रणांगणि फौज बंधि ॥१२९॥

बे अणिय जोडि जुज्झिय भुवाल ।
तब पडहि खगजणु पसरु झाल ।
ए तेजल्हेस्या गोले मिलति ।
सीतीय उल्हेस्या झाला झलति ॥१३०॥

बैर हीय सुभट्ट भब्बल्ल होइ ।
दुह माहि नपिक्षोब खिसई कोइ ।
जब देखिउ बलु दुधरु भगाहु ।
तब सजमि रथि चढि चलिउ नाहु ।।१३१।।

छन्दु रगिका

आदिनाथ की कामदेव पर विजय—

जिणु सजमु रथहि चढि तिन्नि गुत्ति गय गुडि ।
मिलिय सुभट जुडि पच बरत खिमा भाडणु समुहु धरि ।
ध्यानु करवालु करि समिकतु ताणि सिरि तवि उत्थित ।
छुटि प्रसम सकल सार कुमति कथानर कपति घणो ।
भाजु भाजु रे मदन भट, भादिनाहु सिरिसट ।
देइ कर दहु वट प्रथम जिणो ।।१३२।।[1]

खेतुरचा भावन भाइ, मत्त घु जलहुकाइ ।
मिलिय राणिय राइ, छत्तीस गुण भनुप्रेक्षा पाइ कवार ।
सील सहस भगठार, बस विधि धम्मचार ।
सबल घण वैठौ ओदसमे गुणगणु ।
देखिय भन्तर ध्यानि गति घि सब जाणि कहइ बुणो ।
भागु भाजु रे मदन भट भादिनाहु सिरि सरट'' जिणो।।१३३।।

तिनि रतन जो से निकसि बमु बरत धारि भसि ।
नफीरी बाजहि असि, गहिर सरोदयारहिय पौरिख पूरि ।
भागिय हिंसा दूरि बलु उपसनु सूरि कियो ।
नरो ए जु भतीसह -तीसचारि, परि जेति बब कारि ।
मतु सुध्यानु धरि राखिउ मणो, भाजु भाजु रे मदन भट ।
आदिनाहु सिरसट देह कर दहु बट प्रथम जिणो ।।१३४।।

घालिउ समर कटकु फदि, मोहु राउ कियो बदि ।
कसाइ चारि निन्द बहिहा भकमद मैंगल किय निपातु ।
चालिय भागि मिथ्यातु मुक्किय घडा धम्म सुरसि भाट पढति ।
दुदही देव बाजति सुरह तीय गावति सासण गुणो ।
भाजु भाजु रे मदन भट……——प्रथम जिणो ।।१३५।।

---

1 क प्रति में १३२ को सख्या नहीं दी गई है ।

कवित्त

चडिउ कोह कदप्पु, अप्पु बलु अवर न मानइ ।
कुवइ कुरलइ तसइ, हसइ सुभटह अवगण्णइ ।
ताणि कुसमु कोवंड भडरडह लडह दल ।
अभई सहरि दंत तिन्ह रखिय तिन्हक ।

कवि वल्हणु जयतु अंगमु अटलु ।
सरकिय अवरु तिसु सरइ कोइ ।
असि भाण हणिउं श्री आदिजिण ।
गयउ मयणु दह वट्ट कुहइ ॥१३६॥

वस्तु बन्ध

दुसहू बढउ मोहु प्रचडु, मडु मयणु निविियउ ।
कलिय कालि तब पाडि लियउ, आनदु निवत्ति मनि ।
विवेक जसु तिलकु दीयउ, जे वडवडे धम्म के ते सब ।
घाले बंदि चेयणुराउ छुडाइयउ, स्वामी आदि जिणदु ॥१३७॥
छुट्टि चेयणु हुयउ मणु महजि,
सह खुल्लिय धम्मवर, समाधि आगम जाणियउ ।
रवि कोट अनत गुण, प्रगट जोति केवलि दिपायउ ।
सुरपति नरपति, नागपति मिलिय सैन सब आइ ।
अन्या फेरन देसमहि दियउ विवेकु पठाइ ॥१३८॥
स्वामि पठायउ राउ विवेकु
सो देसहि सचरिउ, उसभ सेणिकहु वेगि बुलावहु ।
सो थप्पिउ गणहपत्ति, सुत्त अत्थु तिसु कहु सुणायउ ।
इकु धम्मु दुहु विधि कह्यो, सागारी अणगारु दे ।
सखेपिहि इव कहियउ, भवियहु सणहु विचारु ॥१३९॥

कर्म का विवेचन—

मिलि चउविहु सघहु आइ,
बहू देवी देवतह, तिय आंचमि हुइय इक्कट्ठिय ।
करि बारह परिखदा, ठामि ठामि मझिवि बइट्ठिय ।
बाणीय निम्मल अमियमै, सुणि उपजै सुह झाणु ।
भवियणु मनु गहि गहिउ स्वामी करइ बखाणु ॥१४०॥

थिति पयासिय लोउ अलोउ,
पुणु भासिय अथि जो, नत्थि हु ति ते नत्थि भासिय ।
पुण्णि कारणि बहु विधि कहिउ, जो जो जिसीय करेइ ।
सो सो तिवहि मेलि दल, सा सा गति भोगेइ ।।१४१।।

महारंभ पारंभ करि परिग्गहु मिलवहि ।
पच इंदिय वसि करहि मद मासि चितु लावहि ।
इसे सुख के फल पाप न पुन्न विचारहि ।
सो नरु नर गेहि जाइ मणुव जम्मतरु हारइ ।।१४२।।

बहु माया केवलहि कपटु करि पर मनु रजइ ।
अति कूडिहि अवगूढ करिवि छल परजीवह वचइ ।
मुहि मीठा मनि मलिन पच महि भला कहावइ ।
इन कम्महि नरु जाणि जूनि तियजचह पावइ ।।१४३।।

भद्द प्रवृत्ति जे होहि ध्यान आगति न चहुँटहि ।
अनुकपा चिति करहि विनउ रति मुला भावइ ।
पचदह दहइ सरल प्रणामि, मनि न आणहि मछर गति ।
कहहि खरवन्नि पावहि सुगति राग सजम बहु पालहि ।।१४४।।

सावय धम्म जे लीण दिस समूह निहालइ ।
विरण रुचि जे निजरहि वालयरण तवु साधहि ।
इनु भाइ जिणुराइ कहाउ देवह एति वाधहि ।।१४५।।

रड छंद

मणहु सवै चित्त धरि भाउ,
निज समकितु सद्दहहु, देउ इक अरहत सेवहु ।
आरभ पारभ बिनु, सुगुरु जाणि निग्रन्थ सेवहु ।
भासिउ धम्मु जु केवलिय, सो निश्चइ जाणेउ ।
तिन्ह बरत सजम नेमि तिन्ह, जिन्ह पहिला थिरु एहु ।।१४६।।

थूल पाण मम भखहु थूल कूडउ मम भासहु ।
थूलु अकस्‌ भलेहु देखि परतिय चितु तासहु ।
परिगहु दिढह पमाणु, भोगउपभोग सलेवहु ।
अनर्थदंडविमाछ, नमउहु सामाइकु सेवहु ।।१४७।।
क प्रति

थूल पाण मम बहुहु, थूल कूडको मम भासहु ।
थूल अदत्तमलेहु, देखि परतिय तन तासेहु ।
परिग्रह दिगह पमाण, भोग उपभोग सलखेहु ।
अनथदंड प्रमाण, नित्य सामाइकु सेवहु ।
पसरतु सुमनु दसमहि दमहु, पोसहु एकादसि धरहु ।
आहार सुद्ध चित्त निम्मलइ, असंविभाग साधहु करहु ।।१४७।।

अडिल्ल

पहिली प्रतिमा दसण धारहु, बीजी व्रत निम्मल उच्चारहु ।
तीजी तिहु कालहि सामाइक, चौथी पोसहु सिव सुख दायक ।।१४८।।
पंचमी सकल सचित्त विवज्जइ, राईभोयण छट्ठीयन किज्जइ ।
सप्तमी बंभ बरत दिढु पालहु, अट्ठमी आपणु आरंभु टालहु ।।१४९।।
नवमी परगहु परह मिलीजइ, सावध वचनु दसमी दीजइ ।
एकादसमी पडिमा कहि परि, रिषि जाउ ले भिक्षा पर घर फिरि ।।१५०।।

दोहा

इव जे पालहि भावस्यु इहु उत्तिम जिण धम्मु ।
जग महि हूवउ तिन्ह तणउ, नर सकयत्थउ जम्मु ।।१५१।।

रड

जपि सक्कइ करहु तउ तिसउ
धनु मंडिवि देहस्यउ, अहव किपि जे नर सक्कहु ।
ता सद्दहु ध्यानु निजु, हीयइ धरत जिणु इक न चक्कहु ।
अंते करहु सलेखणा, सब्वे जीव खमाइ ।
पालहु सावय सुख लहहु आण जिणेसुर राइ ।।१५२।।
सुणहु सावहु धम्मु हित करणु,
सो पालहु अलख मणि, सुगइ होइ दुग्गइ निवारइ ।
वुडत ससार महि, होइ तरंड खिण महि तारइ ।
बंधियइ कम्म जि सुह असुह, जीय अनंतइ कालि ।
ते तप बलि सब निद्दलहु, जिव तरु कुव कुदालि ।।१५३।।

षट् पद

छोडि इक्कु आरंभु राग दोषह बिहु तजहु ।
तीनि सल्ल परिहरउ, चारि कषाय विवज्जहु ।

पच प्रमाद निवारि, छोडि पीडणु छक्काइहि ।
पच सत्ति भय ठाणु, अट्ठ मद पडि समा इहि ।
अवगुन नव विधि आवहु, मिथ्या दस विधि परहरहु ।
रिषि सुणहु एव सरवन्नि कहिउ, इकु अप्पणु पउ उवरहु ।।१५४।।

इकु वसि करि आतमउ, विनि थावर तेस पालहु ।
आरहहु तैर वण दिट्ठि, ते समिय निहालहु ।
पचइ चार चरहु दव्व छह विढि न लिज्जहु ।
सुत्त सत्त नय जाणि, मातु अडसमे गहिज्जहु ।
नव बभ वडि दिढु राखीयइ, दस लक्षण धम्महम्महु ।
जिण भास इव मुनिवर सुणहु, गति न चारि इणि परिभमहु ।।१५५।।

सुमइ पच तिय गुत्त पचहु वैयारित परि ।
सजमु सत्त दह भेय, भेय बारह तपु आवरि ।
पडिमा इइ दस सहहु, सहहु बाइस परीसहु ।
भावण भाइ पचीस, पापु सुत्त तजि नव वीसहु ।
तेतीस असाइण वल्लियहि, जिण चौवीसइ थुति करहु ।
अट्ठाईस पगय मडु मोहु जिणु, इय सुसाय सिवपुरि सहहु ।।१५६।।

दिन्नु देसणु एहु जिणराइ जहु गणहरु सघ जाहु ।
भव्व जिय सवेउ आयउ किच तित्थु चौबिहहि ।
तित्थकरु तव नाउ पापउ, नामु गोतु फुणि वेधही ।
आउ सेसजिहु ति, तैखिउ करि सिवपुरि गयउ ।
सुख भोगवइ अनत ।।१५७।।

षट्पदु

जहु न जरा न मरणु जत्थ पुणि व्याधि न वेयणु ।
जहु न देहन न नेहु जोति मइ तहु ठइ चेयणु ।
जहु ठइ सुक्ख अनत न्यान दसण अवलोवहि ।
कालु विणासइ सयलु सिद्ध पुणि कालहि खोवहि ।
जिसु वणु न गधु न रसु फरसु, सबदु न जिस किसही लह्यो ।
बूचराजु कहै श्री रिसह जिणु सुमिरु होइ तहु ठइ रह्यो ।।१५८।।

राइ विक्कम तणउ संवतु नवासिय पणरहसै ।
सरद[1] रुति आसवज वखाणिउ तिथि पडिवा सुकलु पखु ।
सनि-सुवारु करु नखित्तु जाणिउ तितु दिन वल्हु पसट्ठयउ ।
मयणु जुज्झु सुविसेसु, करत पढत निसुणत नरहु ।
जयउ स्वामि रिसहेसु ।।१५९।।

सुभ भवतु ।। लेखक—पाठकयो ।। लिखापित बाई पारा स्वय पठनार्थं कर्म्म क्षयनिमित्त । लिखत देवपालु माली मलावरे को ।।[2]

□ □ □

---

१ सबब (क प्रति)
२ (ख प्रति)

२

संतोषजयतिलकु

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में 'संतोषजयतिलकु' की एक मात्र पाण्डुलिपि उपलब्ध हो सकी है। पाण्डुलिपि श्री दि० जैन मन्दिर नागदी, बून्दी के गुटके में कविवर बूचराज के अन्य पाठों के साथ संग्रहीत है जो पत्र संख्या १७ से ३० तक उपलब्ध है। तिलकु में १२३ पद्य हैं। उसके लिपिकर्ता पाडे देवदासु थे जिनका उल्लेख 'चेतन पुद्गल धमाल' के अन्त में दिया हुआ है। पाण्डुलिपि शुद्ध, स्वच्छ एवं सुन्दर है।

साटिक

मंगलाचरण—

जा अज्ञान अंधार फेडि करण, संन्यानदी वद्धवे।
जा दुख बहु कम्म एण हरण, दाइकसुग्गं सुह।
जा देव मणुणा तियच रमणी, भविकल तारणी।
सा जै जै जिणवीर वयण सरिय वाणी मते निम्मल ॥१॥

रड

विमल उज्जल सुर सुरसणेहि,
सु भवियण गह गहहि, मनसु सरिजणु कवल खिल्लहि।
कल केवल पयडियहि, पाप पटल मिथ्यात पिल्लहि।
कोटि दिवाकर तेउ तपि निधि गुण रतन करडु।
सो वधमानु प्रसनु नितु तारण तरणु तरडु ॥२॥

तरण तारणु हरणु दुखयह,
करुणाकर जीय सहि, भविय चित्त बहु विधि उल्लासणु।
अठ कम्मह खित्र करणु सुद्ध धम्मु दह दिसि पयासणु।
पावापुरि श्री वीर जिणु, जब सुपहुत्तउ आइ।
तब देविहि मिलि सठयउ समोसरण बहु भाइ ॥३॥

इन्द्र का वृद्ध के वेष में गौतम गणधर के पास आना—

अब सुदेखइ इंदु धरि ध्यानु,
नहु वाणी होइ जिण, तब सुक षटु मन महि उपायउ ।
हुइ बभणु डोकरउ मज्झलोइ सुरपति आयउ ।
गोतमु गोतमु जह वसै प्रवर सरोतमु वीर ।
तत्थ पहुतउ आइ करि मघवै पुणिहि गहीर ॥४॥
थिवरु बोलइ सुणहु हो विप्प,
तुम्ह दीसइ विमलमति, इकु सन्देहु हम मनहि थक्कइ ।
नहु तै साके मिलइ आसुहु तयह गाठि चुक्कइ ।
वीरहु ता मुज्झ गुरु मोनि रह्यालो सोइ ।
हउ सलोकु लीए फिरउ अत्थु न कहइ कोइ ॥५॥

गाथा

हो कहहु थिवर बभण, को अछै तुम्ह चित्ति सदेहो ।
खिण माहि सयल फेडउ, हउ अविरल्लु बुद्धि पंडित् ॥६॥

षट्पदु

तीन काल षटु दव्वि नवसुपद जीय षटुक्कहि ।
रस ल्हेस्या पंचास्तिकाइ व्रत समिति सिगक्कहि ॥
ज्ञान अवरि चारित्त भेदु यहु मूलु सु मुत्तिहि ।
तिहुवण-महवै कहिउ वचनु यहु अरिहि न रत्तिहि ॥
यहु मूलु भेदु निजु जाणियहु सुद्ध भाइ जे के गहहि ।
समक्कत्तदिट्ठि मतिमान ते सिव पद सुख वंछित लहहि ॥७॥

गाथा

एय वयण सवणि सभलि, चमकिउ चित्त मज्झि पुरइ नहु अत्थो ।
उट्ठियउ झत्ति गोइमु चल्लिउ, पुणि तत्थ जय जिणणाहु ॥८॥

रड

तव सु गोइमु चल्लिउ गजतु,
जणु सिंधुरु मत्तमय तरक छंद व्याकरण अत्थह ।
षटु अगह वेयधुनि, जोतिक्कलकार सत्थह ॥
तुलइ सु विद्या अतुल बलु चडिउ तेजि अति वमु ।
मानु मल्या तिसु मन तणा देखत मानथमु ॥९॥

गाथा

देखंत मान थभो, गलियउ तिसु मानु मनह मझम्मी ।
हूवउ सरल पणामो पुछइ गोइमु चिति संदेहो ॥१०॥

दोहा

गौतम द्वारा प्रश्न—

गोइमु पुछइ जोडिकर स्वामी कहहु विचारि ।
लोभि वियापे जीव सहि, तरिहि केउ ससारि ॥११॥

रड

भगवान महावीर का उत्तर—

लोभ लगउ पाणवधु करइ,
अलि जपइ लोभिरतु, ले अदत्त अब लोभि आवइ ।
यहु लोभु वभहु हरइ, लोभि पसरि परगहु वधावइ ॥
पचइ वरतहु खिउ करइ, देह सदा अनचारु ।
सुणि गोइम इसु लोभ का कहउ प्रगटु विचारु ॥१२॥

मूलहु दुक्ख तणउ सनेहु,
सतु विसनहु मूलु व कम्महु मूल आसउ भणिज्जइ ।
जिव इदिय मूलु मनु, नरय मूलु हिंस्या कहिज्जइ ।
जगु विस्वासे कपट मति परजिय वछइ दोहु ।
सुणि गोइम परमारथु यहु, पापहु मूलु सुलोहु ॥१३॥

गाथा

भमयउ अनादि काले, चहु गति मझम्मि जीवु वहु जोनी ।
वसि करि न तेनि सक्कियउ, यहु दारणु लोभ प्रचडु ॥१४॥

दोहडा

दारणु लोभ प्रचडु यहु, फिरि फिरि बहु दुख दीय ।
व्यापि रह्या वलि अप्पहु, लख चउरासी जीय ॥१५॥

पद्धडी छद

यहु व्यापि रह्या सहि जीय जत, करि विकट बुद्धि परमथ हुडत ।
करि छलु पयसं धूरत जेंव, परपचु करिवि जगु मुसइ एव ॥१६॥

सकुडइ मुडइ वढलु कराइ, वगर्जेउ रहइ लिव ध्यान लाइ ।
ठग जेंव ठगौ लिय सीसि घाइ, परचित्त विस्वासै विविह भाइ ।।१७।।

मजार जेउ ग्रासण बहुत्त, सो करइ जु करणउ नाहि जुत्त ।
जे वे सर्जेव करि विविह ताल, मति यावइ सुख वे वृद्धवाल ।।१८।।

लोभ का साम्राज्य—

ग्रापणौ न ग्रौसरि जाइ चुकिक, तम जेंउ रहइ तलि दीव लुक्कि ।
जव देखइ डिगतह जोति तासु, तव पसरि करइ अप्पणु प्रगासु ।।१९।।

जो करइ कुमत्ति तव मण विथार, जिसु सागर जिउ लहरी ग्रपार ।
इकि चडहि इकिक उत्तरिवि जाहि, बहु घाट घडइ नित हीयै माहि ।।२०।।

परपंचु करैइ जहरै जगत्तु, पर ग्रप्पु न देखइ सत्तु मित्तु ।
खिण ही ग्रयासि खिण ही पयालि, खिण ही भ्रित मडलि रग तालि ।।२१।।

जिव तेल बुंद जल माहि पडाइ, सा पसरि रहे भाजनह छाइ ।
तिव लोभु करइ राई सचारु, प्रगटावै अगि मे रह विथारु ।।२२।।

जो ग्रघट घाट दुघट फिराइ, जो लगड जेव लग्गत धाइ ।
इकि सवणि लोभि लग्गिय कुरंग, देहि जीउ ग्राइ पारधि निसग ।।२३।।

पत्तंग नयण लोभिहि भुलाहि, कचण रसि दीपग महि पडाहि ।
इक घाणि लोभि मधुकर भमति, तनु केवइ कटइ वेधियति ।।२४।।

जिह लोभि मछ जल महि फिराहि, ते लगि पराव अप्पणु गमहि ।
रसि काम लोभि गयवर भमति, मद ग्रवसि वध वधन सहति ।।२५।।

इक इक्कइ इदिय तणे सुक्ख, तिन लोभि दिखाए विविह दुक्ख ।
पच इदिय लोभिहि तिन रत्तुत्त, करि जनम मरण ते नर विगुत्त ।।२६।।

जगमसि तपी जोगी प्रचड, ते लोभी भमाए भ्रमहि खड ।
इद्राधिदेव वहु लोभ मत्ति, ते वछहि मन महि मणुवपत्ति ।।२७।।

चक्कवै महिय हुइ इक्क छत्ति, सुर पवइ वछहि सदा चित्ति ।
राइ राणो रावत मडलीय, इनि लोभि वसी के के न कीय ।।२८।।

वण मज्झि मुनीसर जे वसहि, सिव रयणी लोभु तिन हियइ माहि ।
इकि लोभि लग्गि पर भूमि जाहि, पर करहि सेव जीउ जीउ भणाहि ।।२९।।

सकुलीणो निकुलीणह दुवारि, तेहि लोभ डिगाए कर पसारि ।
वसि लोभि न सुणही धम्मु कानि, निसि दिवसि फिरहि ग्रारत्त ध्यानि ।।३०।।

ए कीट पडे लोभिहि भमाहि, सचहि सु अन्नु ले धरणि माहिं ।
ले वनरसु हूढं लोभि रत्तु मखिकासु मधु सचइ बहुत्त ।।३१।।
ते किग्रन पडिय लोभह मझारि, धनु सचहि ले धरणी भडारि ।
जे दानि धम्मि नहु देहि खाहि, देखत न उठि हाथ झाडि जाहिं ।।३२।।

गाथा

जहि हत्थ झाडिकि चलं, धनु सचहि सुलहि करिवि भडारे ।
तरहि कैव ससारे, मनु बुद्धि ऐ रसी जाह ।।३३।।

रड

वसइ जिन्ह मनि इस्यि नित बुद्धि,
धनु विढवहि बहकि जगु, सुगुर वचन चितिहि न आवइ ।
मे मे मे करइ सुणत धम्मु सिरि सूलु आवइ ।।
अप्पणु चित्तु न रंजही जणु रजावहि सोइ ।
लोभि वियापे जेइ नर तिन्ह मति अैसी होइ ।।३४।।

गाथा

तिन्ह होइ इसिय मत्ते, चित्ते ग्रय मलिन मुहुर मुहि बाणी ।
विदहि पुन्न न पावो, वसकियो लोभि ते पुरिष ।।३५।।

मडिल्ल

इसउ लोभु काया गढ ग्रंतरि, रयणि दिवस संतवइ निरतरि ।
करइ ढीठु अप्पणु बलु मडइ, लज्या न्यानु सीलु कुल खडइ ।।३६।।

रड

कोहु माया मानु परचड,
तिन्ह मज्झिहि राउ यहु इसु सहाइ तिन्निउ उपज्जहिं ।
यहु तिव तिव विप्फुरइ, उइ तेय बलु ग्रधिकु सज्जहिं ।।
यहु वहु महि कारणु करणु, अव घट घाट फिरतु ।
एक लोभ विणु वसि किए, चौगय जीउ भमंतु ।।३७।।

जासु तीवइ प्रीति अप्रीति,
ते जग माहि जाणि यहु, आणिउ रागु तिनि प्रीत्ति नारि ।
अप्रीत्ति हु दोष हुव, बहु कलाप परगट पसारि ।।
अन्ना केरी आपणी, घटि घटि रहे समाइ ।
इन्ह दहु वसि करि ना सकै, ता जीउ नरकि हि जाइ ।।३८।।

दोहा

सप्प करडु जैसे गरल, उपजे विष सजुत्त ।
तैसे जाणहु लोभके, राग दोष दुइ पुत्त ॥३९॥

पद्धडी छंद

दुइ राग दोष तिसु लोभ पुत्त ।
जाणहि प्रगट ससारि वुत्त ॥
जह मित्त तणु तह राग रगु ।
जह सत्त तहा दोषहु प्रसगु ॥४०॥

जह रागु तहा सरलउ सहाउ ।
जह दोषु तहा किछु वक्र भाउ ॥
जह रागु तह मनहु प्रवाणि ।
जह दोषु तहा अपमानु जाणि ॥४१॥

जह रागु तहा तह गुणहि थुत्ति ।
जह दोषु तहा तह छिद्र चित्ति ॥
जह रागु तहा तह पतिपत्तिट्ठु ।
जह दोषु तहा तह काल विट्ठु ॥४२॥

ए दोनउ रहिय वियापि लोइ ।
इन्ह बाभुन दीसइ महिय कोइ ॥
नित हियइ सिसलहि राग दोष ।
वट बाडें दारण मग्गहु मोख ॥४३॥

रड

पुत्त अैसिय लोभ धरि दोइ ।
बलु मडिड अप्पणउ, नाद कालि जिन्ह दुक्ख दीयउ ।
इद जालु विकाइ करि, मसी भूत सहु लोगु कीयउ ॥
जोगी जंगम जतिय मुनि सभि रक्खे लिवलाइ ।
अटल न टाले जे टलहि फिरि फिरि लग्गहि धाइ ॥४४॥

लोभ का प्रभाव—

लोभु राजउ रहिउ जगु व्यापि ।
चउरासी लखमहि जय जीउ पुणि तत्थ सोइय ।
जे देखउ सोधि करि तासु बाझु नहु अत्थि कोइय ॥

विकट बुद्धि जिनि सहि मुसिय चाले कम्मह फध ।
लोभ लहरि जिन्ह कहु चडिय, दीसहि ते नर अध ॥४५॥

दोहा

मणुव तिजचह नर सुरह, हीडावै गति चारि ।
वीरु भणइ गोइम निसुणि, लोभु बुरा ससारि ॥४६॥

रड

गौतम स्वामी का प्रश्न—

कहिउ स्वामी लोभु बलिवडु ॥
तब पुछिउ गोइमिहि इसु, समस्त गय जिउ गुजारहि ।
इसु तनिइ तउ वलु, को समथु कहइ सु विदारइ ॥
कवण बुद्धि मनि सोचियइ कीजइ कवण उपाउ ।
किसु पौरिषि यहु जीतियइ सरवनि कहहु सभाइ ॥४७॥

भगवान महावीर का उत्तर—

सुणहु गोइम कहइ जिणणाहु ।
यहु सासणु विम्मलइ, सुणत धम्मु भव वध तुट्टहि ।
अति सूखिम भेद सुणि, मनि सदेह खिण माहि मिट्टहि ॥
काल अनतिहि ज्ञान यहि, कहियउ आदि अनादि ।
लोभु दुसहु इव ज्जितयइ, सतोषह परसादि ॥४८॥

कहहु उपजाइ कह सतोषु ।
कहु वासइ थानि उहु, किस सहाइ वलु इसउ मडइ ।
क्या पौरिषु सैनु तिसु, कासु बुद्धि लोभह विहडइ ॥
ओरु सखाई भवियहुइ पयडावै यहु मोखु ।
गोइम पुछइ जिण कहहु किसउ सुभटु सतोषु ॥४९॥

सतोष के गुण—

सहजि उप्पजइ चिति सतोषु ॥
सो निमसइ सतपुरि, जिण सहाय वलु करइ इत्तउ ।
गुण पौरिषु सैनु धम्मु, ज्ञान बुद्धि लोभह जित्तइ ॥
होति सखाई भवियहुइ टालइ दुरगति दोषु ।
सुणि गोइम सरवनि कहउ, इसउ सूरु सतोषु ॥५०॥

रासा छंद

इसउ सूरु संतोषु जिनिहि घट महि कियउ ।
सफयत्थउ तिन पुरिसह, संसारिहि जियउ ॥
संतोषिहि जे तिपते ते थिरु नंदियहि ।
देवह जिउ ते माणुस महियलि वंदियहि ॥५१॥

जगमहि तिन्ह की लीह जि संतोषिहि रम्मिय ।
पाप पटल अधारसि अतर गति दम्मिय ॥
राग दोष मन मज्झि न खिणु इकु आणियइ ।
सत्तु मित्तु जिन हरि समकरि जाणियइ ॥५२॥

जिन्ह संतोषु सखाई तिन्ह नित चडइ कला ।
जाव कालि संतोष करइ जीयह कुसला ॥
दिनकरु यहु संतोषु विगासइ हिद कमला ।
सुरतरु यहु संतोषु कि वंछित देइ फला ॥५३॥

चिंतामणि संतोषु कि चिंत चितत्तु फुरइ ।
कामधेनु संतोषु कि सब कज्जह सरइ ॥
पारसु यहु संतोषु कि परसिहि दुक्खु मिटइ ।
यहु कुठारु संतोषु कि पापह जड कटइ ॥५४॥

रयणायरु संतोषु कि रतनह रासि निधि ।
जिसु पसाइ सउहि मनोरथ सकल विधि ॥
जे संतोषि समाणे तिन्ह मउ सभु गयउ ।
घ्रुमरेह जिउ तिन्ह मनु नितु निश्चल भयउ ॥५५॥

जिन्हहि राउ संतोषु सुतुट्ठउ भाउ धरि ।
पर रवणी पर दव्वि न छीपहि तेइ हरि ॥
कूडु कपटु परपचु सु चित्ति न लेखिहहि ।
तिणु कचणु मणि लुढसि समकरि देखिहहि ॥५६॥

पियउ अमिउ संतोषु तिन्हहि नितं महु सुखु ।
लहिउ अमरपद ठाणु गया परभमण दुखु ॥
राइहंस जिउ नीर खीर गुण उद्धरइ ।
धम्म अधम्म परिख तेव हीयै करइ ॥५७॥

आवै सुहमति ग्यानु सुबुद्धि हीयै भज्जइ ।
कलहि कलेसु कुग्यानु कुबुधि हियै तजइ ॥

लेइ न किमही दोसु कि कुण सव्वह गहइ ।
चडइ न आरति जीउ सदा चेतनु रहइ ।।५८।।
जाहन वक्क परणाम होहि तिसु सरल गति ।
इप्पजिउ निम्मलउ न, लग्गहि मलण चिति ।।
सीस जिव जिन्ह पर किति सदा सीयलु रहइ ।
धवल जिव धरि कंधु गरुव भारह सहइ ।।५९।।
सूरधीर वरवीर जिन्हहि सतोषु बलु ।
पुडयणि पति सरीरि न लिपइ दोष जलु ।।
इसउ भई संतोषु गुणिहि वंन्नियै जिवा ।
सो लोभह खिउ करइ कहिउ सरवन्नि इवा ।।६०।।

रड

कहिउ सरवन्नि इसउ सतोषु ।
सो किज्जइ चित्ति दिढु जिसु पसाइ सभि सुख उपज्जहि ।
नहु आरति जीउ पडइ, रोर घोर दुख लख भज्जहि ।।
जिमु ते कल वडिम चडइ, होइ सकल जगि प्रीय ।
जिन्ह घटि यहु मवट्ठी पिय पुन्न प्रिकिति ते जीय ।।६१।।

अडिल्ल

पुन्न प्रिकिति जिय सवणिहि सुणियहि ।
जै जै जै लोवहि महि भणियहि ।।
मोहम सिउ परवीणु पयपिउ ।
इसउ सतोषु सुवप्पति जपिउ ।।६२।।

षडाइणु छंदु

अपियै एहु सतोषु भूवपति जासु ।
नारीय समाधि ग्रत्थइ घिति ।।
जे ससा सुदरी चित्ति हे भावए ।
जीउ तत्तखिणे वछिय पावए ।।६३।।

संतोष का परिवार—

सवरो पुत्तु सुी पयडु आणिज्जए ।
जासु ओलवि सखाउ तारिज्जए ।।
छेदि सो आसदे दूरि नै वारए ।
दुक्ति मझम्मिले हेल सचारए ।।६४।।

खतियं तासु को संमणा बखियँ ।
कुञ्जरसे तेउ मभेइ पासैमिय ।।
कोह अणोगाह दझति ते नरा ।
ताहं संतोसए सोम सीयंकरा ।।६५।।
एहु कोटबु सतोष राजा तणो ।
जासु पसाइ वज्झति रती मणो ।
तासु वैरिहि को ढूकणा आवए ।
सो भडो लोभह जो जुग वावए ।।६६।।

दोहा

जो जुग वावइ लोभ, कउए गुणहहि जिसु पाहि ।
सो सतोषु मनि संगहहु, कहियहु तिहु वणणाहि ।।६७ ।

गाथा

कहियहु तिहु वणणाहो, जाणहु सतोषु एहु परणामो ।
गोइम चिति दिढु करु, जिउ जित्तहि लोभु यहु दुसहु ।।६८।।
सुणि वीरवयण गोइमि, आणिउ संतोषु सूरु घट मज्झे ।
पज्जलिउ लोहु तंखि खिणि, मेलै चउरंगु सयनु अप्पणु ।।६९।।

रड

लोभ द्वारा आक्रमण—

चिति चमकिउ हियइ थरहरिउ ।
रोमाइणु तमकियउ, लेइ लहरि विषु मनिहि घोलइ ।
रोमावलि उल्लसिय कालकू हुइ मुहह तोलइ ।।
दावानल जिउ पज्जलिउ नयण नि लाहिय बाहि ।
आजु सतोषह जिउ करउ जउ मूलहु उप्पाहि ।।७०।।

दोहा

लोभहि कीयउ सोचणउ हूयउ आरति ध्यानु ।
आइ मिल्या सिरु नाइ करि झूठु सबलु परधानु ।।७१।।

षट्पदु

लोभ की सेना—

आयउ झूठु पधानु मंतु तसु खिणि कीयउ ।
मनु कोहु अरु दोहु मोहु इक गुडउ कीयउ ।।

माया कलहि कलेसु थापु संतापु छदम दुखु ।
कम्म मिथ्या आसरउ आइ अद्धम्मि कियउ पखु ।।
कुविसनु कुसीलु कुमतु जुडिउ राग दोष आइरु लहिउ ।
अप्पणउ सबलु बलु देखि करि लोहुराउ तब गहगहिउ ।। २।।

अडिल्ल

गहु गहियउ तब लोहु चितंतरि,
बज्जिय कपट निसाण गहिय सरि ।
विषय तुरंगिहि दियउ पलाणउ,
संतोषह दिसि कियउ पयाणउ ।।७३।।

आवत सुणिउ संतोष ततक्खिणि,
मनि आनदु कीयउ सुविचक्खिणि ।
तहु ठइ सयनह पति सतु आपउ,
तिनि दलु अप्पणु वेगि बुलायउ ।।७४।।

गाथा

बुल्लायउ दलु अप्पणु, हरषिउ संतोषु सुरु बहु भाए ।
जिसु ढार सहस मग, सो मिलियउ सीलु भडु आइ ।।७५।।

गीतिका छन्दु

संतोष की सेना—

आईयो सीलु सुद्धम्मु समकतु ग्यानु चारितु सँवरो ।
वैरागु तपु करुणा महाव्रत खिमा चिति संजमु थिरु ।।
अज्जउ सुमद्दउ मुत्ति उपसमु द्धम्मु सो आकिंचणो ।
इव मेलि दलु सतोष राजा लोभ सिउ मडइ रणो ।।७६।।

सासणिहि जय जयकारु हूवउ भग्गि मिथ्याति दडे ।
नीसाण सुत बज्जिय महाधुनि मनिहि कइर लडे खडे ।।
केसरिय जीव गउजत बलु करि चिति जिसु सासण गुणो ।
इव मेलि दलु सतोषु राजा लोभ सिउ मडइ रणो ।।७७।।

गज ढल्ल जोग अचल गुडिय तत्त हयहीसारहे ।
वड फरसि पचिउ सुमति जुट्टहि विनि ध्यान पचारहे ।।
अति सबल सर आगम्म छुट्टहि असणि जणु पावस घणो ।
इव मेलि दलु सतोषु राजा लोभ सिउ मडइ रणो ।।७८।।

सा णाहु सीलु सुपहिरि अभिहि कुतु रतनत्रय कियं ।
झलहलइ हत्थि विवेक असिवरु, छत्तु सिरि समकतु ठिय ।
इक पदम अरु तहु सुकल लेस्या चवर ढाहि निसिदिणो ।
इव मेलि दलु संतोषु राजा लोभ सिउ मडइ रणो ।।७६।।

षट्पदु

मडिउ रणु तिनि सुभटि सैनु समु अप्पणु सज्जिउ ।
भाव खेतु तह रचिउ तुरु सुत आगमु वज्जिउ ।।
पच्चारघो व्यालमु पयड अप्पणु दल अतरि ।
सूर ह्रियै गहु गहहि धसहि काइर चित्त तरि ।।
उतु दिसि सु लोभु छलु तमक दैवलु पवरिषु णियतणि तुलइ ।
सतोषु गरुव मेरहु सरिसु इसुकि पवण भयणिणु खलइ ।।८०।।

गाथा

किं खलिहै भय पवण, गरुवउ सतोषु मेर सरि अटल ।
चवरगु सयनु गज्जिवि, रणि अगणि सूर वहु जुडिय ।।८१।।

तोटक छदु

रण अगणि जुट्टिय सूर नरा, तहि वज्जहि भेरि गहीर सर ।
तह बोलिउ लोभु प्रचडु भडो, हणि आइ सतोष पयालि दडो ।।८२।।
फिटु लोभ न बोलहु गव्व करे, हुण कालु चडघा है तुम्ह सिरे ।
तइ मूढ सतायउ सयल जणो, जहु जाहिन छोडउ तय खिणो ।।८३।।

युद्ध स्थल—

जहु लोभु तहा थिरु लच्छिवहो, दरि सेवइ उभउ लोउ सहो ।
जिव इट्टिय चिसि संतोषु करि, ते दीसहि भिष्य भयति परे ।।८४।।
जहु लोभु तहा कहु कत्थ सुखो, निसि वासुरि जीउ सहत दुखो ।
सयतोषु जहा तहु जोतिउसो, पय वदहि इद नरिंद तिसो ।।८५।।
सयतोष निवारहु गव्वु चिते, हउ व्यापि रह्या जगु मडि थिते ।
हुउ आदि अनादि जुगादि जुगे, सहि जीयसि जीयहि मुझु लगे ।।८६।।
सुणु लोभ न कीजइ राडि घणी, सव चिसिउ पाडउ तुम्ह तणी ।
हुउ तुज्झ विदारउ न्यानि खगे, सहि जीय पठावउ मुक्ति मगे ।।८७।।

हुउ लोभु बचलु महा सुभटो, जगु मैं सहु जितिउ बंधि पटो ।
संभि सूर निवारउ तेजु भले, महु जित्तइ कोणु समत्थु कले ॥८८॥

तइ अस्थि सतायउ लोगु घणा, इव वेखहु पौरिषु मुज्झ तणा ।
करि राउउ लंड विहुड घडी, तर जेवउ पाडउ मूल जडी ॥८९॥

सुणि इत्तउ कोपिउ लोभु मने, तब झूठु उठायउ वेगि तिने ।
सा आयउ सूर उठाइ करो, सतिराइहि छेदिउ तासु सिरो ॥९०॥

तब बोडउ लीयउ मानि भडे, उठि चलिलउ समुह गज्जि गुडे ।
बलु कीयउ महवि अप्पु घणा, खुर खोजु गवायउ तासु तणा ॥९१॥

इव ढुक्कउ छोहु सुजोडि अणी, मनि सक न मानइ और तणी ।
तब उट्ठि महाव्रत लग्गु बले, खिण मज्झि सु घाल्यौ छोहु दले ॥९२॥
मडु उट्ठिउ मोहु प्रचंडु गजे, बलु पौरिष अप्पणु सैनु सजे ।
तब देखि विवेक चडया अटल, दहु वट्ट किया सुइ भज्जि वल ॥९३॥

बहु माय महाकरि रूप चली, महु अग्गइ सूरउ कवणु वली ।
ढुक्कि पौरषु अज्जवि चोरि किया, तिसु जोति जयप्पतु वेगि लिया ॥९४॥

जब माय पडी रण मज्झि खले, तब आइय कक गजति वले ।
तब उट्ठि खिमा अब धाउ दिया, तिनि वेगिहि प्राणनि नासु किया ॥९५॥

अय आनु चल्या उठि घोर मते, तिसु सोचन आइया कपि चिते ।
उहु आवत हाक्या आनि जब, गय प्राण पडया धर घूमि तब ॥९६॥

मिथ्यातु सदा अहि जीय रिपो, रद कपि चडया सुइसज्जि अपो ।
समक्कतु उह्या उठि जोडि अणी, धरि धूलि मिल्या दिय चूर घणी ॥९७॥

कम्म अट्ठास सज्जि चडे विषम, जगु छायउ अवरु रेणु भय ।
तपु भानु प्रगासिउ जाम दिसे, गय पाटि दिगतरि मज्झि धुसे ॥९८॥

जगु व्यापि रह्या सबु आसरय, तिनि पौरिषु धीठिइता करय ।
जब सवरु गज्जिउ घोरि घट, उहु झाडि पिछोडि किया दवट ॥९९॥

रसि रागिहि धुत्तउ लोउ सहो, रण अगणि लग्गउ मडि गहो ।
बयरागु सुधायउ सज्जि करे, इव जुझि खिसाडयो दुट्ठ अरे ॥१००॥

यहु दोषु जु छिद्द गहति पर, रण अगणि ढुक्क उडाहि सिर ।
उठि ध्यानिय मुक्किय अग्गि घण, खिण मज्झ जलायउ दोषु तिण ॥१०१॥

कुमतिहि कुमारगि सयनु नडया, गय जेउं गजतउ आइ जुडया ।
खिण मसु परकय सिप परे, तिमु हाकसु णत पयट्ठ धरे ॥१०२॥

परजीय कुसील जु कट्टु करै, रण मज्झि भिडतु न संक धरै ।
बभवतु समीरणु धाइ लग, कुरविंद जि वायय पाटि द्रिग ॥१०३॥

दुलहु तजिबु भय देण सलो, काइजु दिढ आइ निसक चलो ।
परमा सुखु भायउ पूरि भट, उहु झाडि पिछोहि किवाडवट ॥१०४॥

वहु जुज्झिय सूर पचारि घणे, उइ दीसहि लुटत मज्झि रणे ।
किय दिनु रसातलि वीरवरा, किय तज्जि गए वलु मुक्कि धरा ॥१०५॥

राजा सतोष का आक्रमण—

अन दसण कद रहु तु जहा, इकि भज्जि पइट्ठिय जाइ तहा ।
यहु पैतु सतोषह राइ चडया, दलु दिट्ठु उ लोभिहि सैनु पडया ॥१०६॥

रड

लोभि विट्ठउ पडिउ दलु जाम,
तब धुणियउ सीसु कर, धम्म जेंत सुज्झिउ न अग्गउ ।
जणु वेरिउ लहरि विसु, कब कचाइ उठि आइ लग्गउ ॥
करइ सु प्रकरणु आकलउ, किंपिम बुज्झइ पट्टु ।
जेठ चणउ अति उछलइ, तकि भड मनइ भट्टु ॥१०७॥

गाथा

रोसा इणु थर हरिय, धरिय मन मझि रुद्द तिनि ध्यानो ।
मुक्कइ चित्ति न मानो, अज्ञानो लोभु गज्जेइ ॥१०८॥

रणिक्का छंदु

लोभु उठिउ अपणु गज्जि, मडिउ वलुनि लाजि ।
चडिउ दुसहु साजि रोसिहि भरे, सिरि तणिउ कपटु छत्रु ॥
विषय खडगु कितु, छदमु फरियलितु ।
समुह धरे गुण दसमंड ठाणु लगु ॥
जाइ रोक्यौ सूर मगु ।
देइ वहुउ पसग्गु जगत अरे ।
अैसे चडिउ लोभ विकटु, भूतइ भ्ररत नटु ।
सतवइ प्राणह पटु पौरिषु करि ॥१०९॥

खिणु उठइ अणिय जुडि, पिणिहि चालइ मुडि ।
खिणु गयजेव गुडि लागइ उठे, खिणु रहइ गमनु छाइ ॥

खिणिहि पयालि जाइ, खिणि मचलोइ आइ ।
चउइ हूठे बाकै चरत न जाणै कोइ व्यापैइ सकल लोइ ।
अनेक रूपिहि होइ, जाइ तबरै ॥
अैसे चडिउ लोभ विकटु घूतइ धुरत नटु ।
सतवइ प्राणह षटु पौरिषु करै ॥११०॥

जिनि समि जिय लिबलाइ बाले ततबुधि खाइ ।
राखे ए बडहू काइ, देखत नडे ।
यहु दीसइ ज परवयु, देसु सोनु राजु गयु ।
जाण्या करि आप तयु लालचि पडे ॥
जांकी लहरि अनंत परि, घोरह सागर सरि ।
सकइ कवणु तरि ।
हियउध, अैसे चडिउ, लोभ विकटु, घूतउ घूरत नटु ।
सतवैह प्राणह षटु पौरिषु करि ॥१११॥

जैसी करिणय पावक होइ, तिसहि न जाणइ कोइ ।
पडि तिण सगि होइ, कि कि न करै ।
तिसु तणिय बिविहिरग, कौणु जाणै केते ढग ।
आगम लग विलग खिणि हि फिरै ।
उहु अनतप सारै जाल, कर इक लोल पलाल ।
मूल पेड पत्त डाल, देइ उबरै ।
अैसे चडिउ लोभ विकटु, घूतइ घूरत नटु ।
सतवैह प्राणह षटु पौरिषु करि ॥११२॥

षट्पदु

लोभ विकटु करि कपटु अमिटु, रोसाइणु चडियउ ।
लपटि दवटि नटि कुघटि झपटि झटि इव जगु नडियउ ॥
धरणि लडि ब्रह्म हि गगनि पयालिहि धावइ ।
मीन कुरग पतग भ्रिग, मातग सतावइ ॥
जो इद मुणिद फणिद सुरचद सूर संमुह अडइ ।
उहु लडइ मुडइ खिणु गडबडइ, खिणु सुउट्ठि समुह जुडइ ॥११३॥

मडिल्ल

जब सुलोभि इतउ बलु कीयउ,
अधिकु कष्टु तिन्ह जीयह दीयउ ।

सव जिणउ नमतु लै चिति गज्जिउ,
राउ संतोषु इनहु परि सज्जिउ ।।११४।।

रंगिका छंदु

इव साजिउ संतोष राउ, हुवउ धम्म सहाउ,
उठिउ मनिहि भाउ आनदु भय ।
गुण उत्तिम मिलिउ माणु, हुवउ जोग पहाणु,
आयउ सुकल झाणु, तिमरु गय ।।
जोति दिपइ केवल कल, मिटिय पटल मल,
हृदय कवल बल खिडियत दे ।
ऐसे गोइम विमलमति, जिण बच धारि चिति,
छेदिय लोभहु थिति चडिउ पदे ।।११५।।

तनिक धनु सजनु धारि, तसु दह परकारि
तेरह विधि सहारि, चारितु लिय ।
तपु द्वादस भेवहु जाणि, आपणु अगिहि आणि,
बैठउ गुणहु ठाणि, उदोतु किय ।।
तम कुमतु गइउ ध्रुसि, धौलिउ जगतु जसि,
जैसेउ पुन्निउ ससि, निसि सरदे ।
ऐसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति,
छेदिय लोभहु थिति, चडिउ पदे ।।११६।।

जिन वधिय सकल दुट्ठ, परम पापनिघट्ठ,
करत जीयहु कठ, रयणि दिणो ।
जगि हो तिय जिन्हहि आण, देतिय नमुति जाण,
नरय तणिय ठाण, भोगत घणो ।।
उइ आवत नरीहि जेइ, सडवु समुह लेइ,
सुपनिन दीसे तेइ अवरु के दे ।
ऐसे गोइम बिमल मति, जिणवच धारि चिति,
छेदिय लोभहि थिति, चडिउ पदे ।।११७।।

लोभ पर विजय—

देव दुंदही वाजिय घण, सुर मुनि गहगण,
मिलिय भविकजण, हुवर लियं ।

अंग ग्यारह चौदह पुव्व, विचारे प्रकट सव्व,
मिथ्याती सुणत गव्व, मनि कलिव ।
जिसु वाणिय सकल पिय, चितिहि हरखु किय,
सतोषे उतिम जिय, वरयु बदे ।
ग्रैसे गोइम विमल मति, जिणवच धारि चिति ।
छेदिय लोमहू थिति, चडिउ पदे ॥११८॥

षट्पदु

चडिउ सुपदि गोइमु लवधि तप वलि अति गज्जिउ ।
उवउ हुवहु सासणि हि सयनु आगमु मतु सज्जिउ ॥
हिसारहि हय वरतु सुभटु चारितु वलि जुट्टिउ ।
हाकि विमल मति वाणि कुमत दल दरडि दवहिउ ॥
वधिउ प्रचडु दुद्धरु सुमनु जिनि जगु सगलउ धुत्तियउ ।
जय तिलउ मिलिउ सतोष कहु, लोभहु सह इव जित्तियउ ॥११६॥

गाथा

अव जित्त दुसहु लोहु, कीयउ तव चित्त मझि आनदे ।
हुव निकट रज्जो गहु गहियउ राउ सतोषु ॥१२०॥
सतोषुहु जय तिलउ जपिउ, हिसार नयर मझ मे ।
जे सुणहि भविय इक्क मनि, ते पावहि वछिय सुक्ख ॥१२१॥
सवति पनरइ इक्याण, भद्दवि सिय पक्खि पचमी दिवसे ।
सुक्कवारि स्वाति वृषे, जेउ तह जाणि वभ णामेण ॥१२२॥

रड

पढहि जे के सुद्ध भाएहि,
जे सिक्खहि सुद्ध लिखाव, सुद्ध ध्यानि जे सुणहि मनु धरि ।
ते उतिम नारि नर अमर सुक्ख भोगवहि बहुप्परि ॥
यहु सतोषह जयतिलउ जपिउ वल्हि सभाइ ।
मगलु चौविह सघ कहु, करइ वीर जिणराइ ॥१२३॥

इति सतोष जयतिलकु समाप्ता ॥छ॥

□ □ □

३

नेमीस्वर का बारहमासा

राग वडहंसु

सावन मास—

ए रुति सावणे सावणि नेमि जिण गवणी न कीजै वे।
सुणि सारंगा माष पुसह तनु खिणु खिणु छीजै वे।
छीजति बाही विरह व्यापित घुरह घण मइ मंतिया।
सालूर सरि रड रडहि निसि भरि रयणि विज्जु खिवंतिया।
सुर गोपि मह सुह वसुह मंडित मोर कुहकहि वणि वणि।
बिनवति राजुल सुणहु नेमि जिण गवउ ना कइ सावणे ॥१॥

भाद्रपद मास—

ए भरि भाद्रवडे भादवि मारग जलहरे छाए वे।
कोइ परभूए परभुइ पथी हरि न जु लाये वे।
नहु जु लाइ को पर भूमि पथी किसु सनेहा जप वे।
सरपच तनि मनमथ वीरुद्धिय कर लजिउ निसि कपवो।
घग चडिय तर गिरि देख पावस मनि मनन्थु उपाइया।
घरि आउ नेमि जिण चडिउ भाद्दउ मग्ग जलहर छाइया ॥२॥

आसोज मास—

ससि सोहाए सोहै ससिहरु आसूवा मासे वे।
जल निरमल निरमल जलसरि कवल वेगासे वे।
विगसति सरि सरि कवल कोमल भवर रुणु झुणकार हे।
मयमतु मनमथु तनि वियापइ किवसु चित्त सहार हे।
देखन्ति सेज अकेलि कामिणि मखहु नहु बोलै हसे।
घरि आउ नेमि जिणंद स्वामी आसूवे सोहै ससि ॥३॥

कार्तिक मास—

इनु कातेगे कातिग आगमु की ताका पालै वे।
चढि मंडपे मंडपि राजुल भग्गो नेहोलै वे।

मग्गो निहालै देवि राजुल नयण वहु दिसि धावए।
सर रसहि सारस रयणि भिंभि दुसहु विरहु जगावए।
किं वरहुउ तुव विणु पेम लुद्धिय तरुणि जोवणि बालए।
बाहुडहु नेमि जिण बडिउ कातिगु कियउ आगमु पालेए ॥४॥

मार्गशीर्ष मास—

ए इतु मघंरे मग्विरियहु जीउ तरसए मेरा वे।
तुझ कारणे कारणि यहु तनु तप ए घणेरा वे।
तनु तपइ तिन्ह सुरि जनह कारणि जीउ जिसु गुणि लीणवो।
जिसु भास अधिक उसास मेलउ रहइ चितु उडीणवो।
सभलहि सभितिय के पियारे देखिमह उम्मिम रितो।
तरसति यहु मनु नेमि तुव विणु मणि मणिहरिह रितो ॥५॥

पोस मास—

ए इतु पोहे हे पोहे सीउ सतावाए वाली वे।
नव पल्लव पल्लव नववण सो परजाली वे।
परजालि नववण रच्यो सकोइय,पडइ हिमु भाति दारणो।
वर खणि ते मनि किवसु धीरउ जिन्ह न सेज सहारणो।
अथ दीह रयणि सतुछ वासुर कियर विरहु दक्खिणे।
नेमिनाथ आउ सभालि को गुण सीउ पोहेहि अतिघणो ॥६॥

माघ मास—

ए इतु माघे हि माघिहि नेमि दया करे आऊ वे।
तनि मेंगल मैमल जेंउ घुरै मणे राऊ वे।
अणरउ मइगल जेंव गउजइ कुलह अक सिरक्खवो।
अग्गाह दुसही विरह वेयण तोहि विणु किसु अक्खवो।
क्या सवरि अवगुणु तइ विसारी लिखिन मूज पठावहो।
कर दया नेमि जिणद स्वामी माघि इव घरि आवहो ॥७॥

फाल्गुण मास—

ए यहु फागुणो फागुणु निरगुणु माहो पियारे वे।
जिनि तरवरे तरवर झाणि कीए खड खारेवे।
खड खारढीखर किए तरवर पवणु महियलि झोलइ।
उरि लाइ कर निसि गणउ तारे निव नहु आवइ खिणो।
घरि आउ नेमि जिणद स्वामी चडिउ फागुणु निरगुणो ॥८॥

चैत्र मास—

एइतु चैतेहे चैतिहि नव मोरी वणराए वे ।
नव कलियडो कलियहि भवर भणक्कियडे आए वे ।
घइ भवर नव कलियहि भणक्के नवइ पल्लव न तरे ।
नव चूय मजरि पिकय लुद्धिय करहि धुनि पचम सरे ।
फुल्लियउ मलय सुगध परमलु दक्खिणिहि पिय सवरिय ।
दरसाइ दरसणु नेमि स्वामी चैत्ति नव नर मोलिया ।।९।।

वैशाख मास—

ए यहु आइयडा अब दुसहु सखी वइसाखो वे ।
अइवइ सेवा इसिजाइ सनेहडा माखोवे ।
माखो सनेहा जाइ वाइस अन्नु नीरु न भावए ।
दुइ नयण पावस करहि निसिदिनु चितु भरि भरि आव ए ।
फुट्टउ न ज वल्लम वियोनिहि हिया दुक्खि वज्जहि घड्या ।
वइसाखु तुव विणु सुणहु सखिए दुसहु अति दारणु चडघा ।।१०।।

जेठ मास—

एइतु जेठंहे जेठिहि लूव अनल झल वावंवे ।
दिनि दिनकरों दिनकरु दिवसि रयणि ससेतावंवे ।
ससि तवइ निसि परजलइ दिन रवि नीरु सरि सुकियघण ।
तडयडइ घर तडफडइ जलचर मिल्लिय अहि ववण वण ।
पच्चउ सिह डुक पूरहि मजलु अगु अधिकु दहावए ।
विललति राजुलि फिरहु नेमि जिण लूव जेठिहि वावए ।।११।।

आषाढ मास—

एइतु षाढेहे षाढिहि नेमि न आईयडा प्यारा वे ।
मनु लागाडा लागा मनुवइ रोग हमारा वे ।
मनु लाड इव वइरागि रजमति लियउ सजमु तखिये ।
अष्टौ भवतर नेहु निरजरि सहइ नव तेरह तणे ।
तिसु तरुणि काला षाउ माहा सिद्धि जिनिवर माइया ।
आषाढ चडिया भणइ बूचा नेमि अजउ न आईया ।।१२।।

।। इति बारहमासा समाप्ता ।।[1]

□ □ □

---

१ गुटका-दि० जैन मन्दिर नागदी बूदी ।

४

चेतन पुद्गल धमाल

प्रस्तुत धमाल की पाण्डुलिपि दि० जैन मन्दिर नागदी, बूंदी के उसी गुटके में है जिसमे बूचराज के अन्य पाठो का संग्रह है। यह धमाल पत्र संख्या २२ से ४४ तक है। इसके लिपिकर्त्ता पांडे देवदासु हैं। लिपि सुन्दर एवं शुद्ध है। धमाल की पाण्डुलिपियां कामा एवं अजमेर के भट्टारकीय भण्डार मे भी है लेकिन वे उपलब्ध नहीं हो सकी इसलिए बूंदी वाली प्रति के आधार पर ही यहा पाठ दिया जा रहा है।

रागु दीपगु

मंगलाचरण—

जिनि दीपगु घटि ग्यानु करि, रज दीठी दश चारि।
कवि 'बल्ह पति' सुस्वामि के, रणवउ चलण सिरु धारि ॥१॥

दीपगु इकु सरवन्नि जनि, जिनि दीपा संसारि।
जासु उदइ सहु भागिया, मिथ्या तिमरु अंध्यारु ॥२॥

'जिरण सासरण' महि दीवडा, बल्ह पया नवकारु।
जासु पसाए तुम्हि तिरहु, सागरु यहु संसारु ॥३॥

भवियहु 'अरहंतु' दीवडा, कै दीपगु सिद्धन्तु।
कै दीपगु 'निरग्रंथ' गुरु, जिस गुरिण लहिउ न अंतु ॥४॥

जैन धम्मु जिनि उद्धरया, जुगला धम्मु निवारि।
सो रिसहेसरु पणवियइ, तारै भव संसारि ॥५॥

चेयन गुणवंत जडस्यो, संगु न कीजै।
जड गलइरु पूरइ, तिव तिव दूख सहीजै ॥६॥

जड संगु दुहेला, चिरु भमिया संसारो।
जिनि ममता छोडी, तिन पाया भवपारु ॥७॥

जिस ससरायह सणा, मलिया मयण हतेउ ।
'अजितनाथ' पय पणमियहि आवइ कमह छेउ ॥८॥

चेयन सुणु निरगुण जड, सिउ संगति कीजइ ।
इसु जड परसादिहि, मोखह सुखु बिलसीजै ॥९॥

जड सहइ परीसहु काटै करमह भारे ।
जिसु जड न सरत्राई, तिसु उरवारु न पारो ॥१०॥

तनु साध्या मोखिहि गया, कीया करमह अंत ।
'संभव स्वामी' वंदियै, जिण सासणि जयवंतु ॥
चेयण गुणवंता जडासो संगु न कीजै ॥११॥

चोगत्ति तरि सिउपुरि गया, तरि सायरु अथाहु ।
सोहउ घ्याऊ हियइ धरि, 'अभिनन्दनु' जिणनाहु ॥
चेयण सुणु निरगुण जड सिउ संगत्ति कीजइ ॥१२॥

बहुसै धुणह पवाणु तनु, मेघरायह धरि चंदु ।
नामु लित पातिग खुडहि, वंदहु 'सुमति' जिणंद ॥ चेयण गुण० ॥१३॥

चारितु धरि मोखिहि गया, माया मोहु निवारि ।
'पदमपह' जिण पद कवल, नवउ सदा सिरुधारि ॥ चेयण सुणु० ॥१४॥

जिसु मुखु दीठे भवणा, तूटै करमह फासु ।
सो वंदहु तारण तरणु, स्वामी देउ 'सुपासु' ॥ चेयण गुण० ॥१५॥

जिसु लछणि ससिहरु, 'अहइ राय' महसेणह तनु ।
चंदप्पहु जिणु आठमा, सब सयल सुपसन्नु ॥ चेयण सुणु० ॥१६॥

चौदह रजु सहु लोउ, जिन दीठा घटि अवलोइ ।
"पुहपि जिणेसरु" पणमियइ, पुनरपि जनमु न होइ ॥ चेयण गुण० ॥१७॥

राइ दिढह तनु कुलि कवलु, मुकति रिउरि हारु ।
"सियल जिणेसरु" ध्याईये, वछित सुख दातारु ॥ चेयण सुणु० ॥१८॥

अस्सी धुणह पवाणु तनु, कचणु वन्नु सरीरु ।
हुउ पणउ "श्रीयांस जिणु", स्वामी गुणिहि गहीरु ॥ चेयण गुण० ॥१९॥

"वसुसेणहु" घरि अवतारया, छेद्या जिन भव कंदु ।
"वासुपुइ" जिणु वंदियइ, जिसु वंदइ सुर इंदु ॥ चेयण सुणु० ॥२०॥

सहिय परीसह मोखिहि गया, मयण महाभड मोडि ।
"विमल जिणेसरु" 'विमलमति', हुउ पणउ कर जोडि ॥ चेयण गुण० ॥२१॥

आठ कम्म जिनि निरजरे, चितुवइ रागि धरेइ ।
अन करण "श्री अनत जिणु", भवियह वछित देइ ।। चेयण सुणु० ।।२२।।

संवरु करि जो गुण वढया, मलिया मयणहु मानु ।
"धम्मनाथ" धम्मह निलउ, हौ पणवउ धरि ध्यानु ।। चेयण गुण० ।।२३।।

गढि हथिनापुरि अवतरया, दिपइ अगु कणकति ।
सो सघह मगलु करइ, "सति करणु जिणु" सति ।। चेयण सुणु० ।।२४।।

जासु धनुष पय तीस तनु, कुखि श्रीमति अवतारु ।
सो तुम्ह पापहि खिउ करइ, सवरहु "कुथु" कुवारो ।। चेयण गुण० ।।२५।।

जो राता सिव रणिसिउ, सव्वइ कम्म निखेइ ।
आरति भजणु "अरह जिणु", अजिय सु पदु हम देइ ।। चेयण सुणु० ।।२६।।

कुभ नरिदह राइ तनु, मिथलापुरि अवतारु ।
"मल्लि जिणेसरु" पणवियइ, आवागवणु निवारो ।। चेयण गुण० ।।२७।।

राजगिरिहि गढि अवतरया, सोहइ कज्जल वन्नु ।
"मुणि सुव्वउ जिणु" वीसमा, सघ सयल सुपसनो ।। चेयण सुणु० ।।२८।।

जिसुका नाउ जपति यह, छीजइ कम्म कलेसु ।
बिजयराइ घरि अवतरया, सवरहु "नमि सु जिणेसो" ।। चेयण गुण० ।।२९।।

चल्या सु नव भव नेहु, तजि पसु बचन सु विचारि ।
वदहु स्वामी "नेमि जिणु", जो सीझइ गिरनारि ।। चेयण सुणु० ।।३०।।

आव भोगि जिन सउ वरिस, कीया मुकति सिउ साथु ।
सकल मूरति हउ वदिसिउ, स्वामी "पारसनाथ" ।। चेयण गुण० ।।३१।।

करि करुणा सुणु बीनती, तिभुवण तारण देव ।
"वीर जिणेसर" देहि मुझु, जनमि जनमि पद सेव ।। चेयण सुणु० ।।३२।।

अरहत सिद्धह आरजह अरु अवझा पणमेहि ।
सव्वे साहु जे नमहि, ते ससार तरेहि ।। चेयण गुण० ।।३३।।

पच प्रमिष्ठी 'वल्ह कवि' ए पणमी धरि भाउ ।
चेतन पुद्गल दहूक, साचु विवादु सुणावो ।। चेयण सुणु० ।।३४।।

यह जड खिणिहि विणसिणी, ता सिउ सगु निवारु ।
चेतन सेती पिरति करु, जिउ पावहि भव पारो ।। चेयण गुण० ।।३५।।

वारु वारु तुम्ह सिउ कहउ, किता कु पूछहि ऊड ।
जिसु जड ते तू गुणि चरया, तासि पिरतिम तोडि ।। चेयण सुणु० ।।३६।।

बहुती जूनिहु डाह करि, ले नरकहु महि देइ ।
ऐसी जड यहु मीत सूणि, मूढ़ु विसासु करेइ ।। चेयण गुण० ।।३७।।

सहीइ परीसह बीसदुइ, काटै करमहु भाइ ।
तिसु सिउ मूढ नचिरचीवै, तारै भव संसाइ ।। चेयण सुणु० ।।३८।।

जिनि कारि आपी आपणी, निश्चै बूडा सोइ ।
खीरु[1] पड्या विसहरि मुखे ताते क्या फलु होइ ।। चेयण गुण० ।।३९।।

चेतनु चेतनि चालइ, कहुउत मानै रोसु ।
आपे बोलत सो फिरै, जडहि लगावइ दोसु ।। चेयण सुणु० ।।४०।।

जेरूपतीना हेतु करि, सिडूवा गहि रे घाट ।
कांजी पडिया दूध महि, हूवा सु बारह बाट ।। चेयण गुण० ।।४१।।

छह रस भोयण विविहि परि, जो जड नित सीचेइ ।
इदी होवहि पडबडी, तउ पर धम्मु चलेइ ।। चेयण सुणु० ।।४२।।

सुणहु पियारे बीनती, देखहु चिति अवलोइ ।
बीजु जु कलिरि बीजीयै, ताते क्या फलु होइ ।। चेयण गुण० ।।४३।।

चौबीस परिग्रहु पर तजै, पग्रह जोग धरेइ ।
जड परसाविहि गुणि चडै, सिव पुरि सुख भूचए ।। चेयण सुणु० ।।४४।।

इसु जड तणा बिसासु करि, जो मन भया निसंकु ।
काले[2] पासि बइट्ठियह, निश्चै चडइ कलकु ।। चेयण गुण० ।।४५।।

खाजै पीजै विलसियइ, फुरइत दीजै दानु ।
यहु लाहा ससार का, भावै जाणु न जाणो ।। चेयण सुणु० ।।४६।।

मूरखु मूलु न चेतई, लाहै रहा लुभाइ ।
अधा वाटै जेवडी, पाछइ वाछा खाइ ।। चेयण गुण० ।।४७।।

पडवस्ना पालै सदा, उत्तिम यहु परवाणु ।
अकरि जा विसु सग्रही, तौ वन छूटै आणु ।। चेयण सुणु० ।।४८।।

इसै भरोसै जे रहे, चेते नाही जाणि ।
डूबे ताह वापुडे, भेडह पूछडि लागि ।। चेयण गुण० ।।४९।।

---

१ दूध ।
२ कोयला ।

पचै इंदी दंडि करि, आपा आप्पुणु जोइ।
जिउ पावहि निरवाण पदु, फीगइ जनमुन होइ ॥ चेयण सुणु० ॥५०॥
क्या जे इदी वसि कीई, क्या आख्या अप्पाणु।
इकु परमथु न जाणिया, किउ पावै निरवाणु ॥ चेयण गुण० ॥५१॥
विणु करमह काटे आपणे जो नरु को सीझेइ।
ता किं सेणकु नरक महि, अजहु दुख भूवेए ॥ चेयण सुणु० ॥५२॥
क्या जें सेणकु नरक महि, वहु बहु दुख भूचतु।
भव्व जीयहमहि जो गण्या, तिथ्थैं इव सीझतो ॥ चेयण गुण० ॥५३॥
काया राखहु जतनु करि, चडहु जेव गुण ठाणि।
विणु मणुव जम्मिहो भवियणहु, गया न को निरवाणि ॥ चेयण सुणु० ॥५४॥
हरतु परतु दोनउ गया, नाउर वाह न पारु।
जिनकरि जाणी आपणी, से डूबे काली धार ॥ चेयण गुण० ॥५५॥
जिउ गैसदरु कट्ठ महि, तिल महि तेलु भिजेउ।
आदि अनादि हि जाणियै, चेतन पुद्गल एव ॥ चेयण सुणु० ॥५६॥
लेहि गैसदरु कट्ठ तजि, लेहि तेल खलि राडि।
चेतहि चेतनु मेलियै, पुदगलु परहर वालि ॥चेयण गुण० ॥५७॥
बालत्तण की वालही, गुणहि न पूजै कोई।
सा काया किव निंदियै, जिसहु परम पदु होइ ॥ चेयण सुणु० ॥५८॥
काया कर जलु अजुली, जतनु करतिहि जाइ।
उत्तिमु विरता नित रहै, मूरिखु इमु पतियाए ॥ चेयण गुण० ॥५९॥
मनका हठु सवु कोइ करइ, चितु वसि करइ न कोइ।
चढि सिखर हु जव खडहडै, तवरु विगुचणि होइ ॥ चेयण सुणु० ॥६०॥
सिखर हु मूलि न खडहडै, जिण सासण आधारु।
सूलि ऊपरि सीझिया, चोरि अप्पा नवकारु ॥ चेयण गुण० ॥६१॥
उइ साधण परिणाम उइ, कालमि उइ थावोर।
इव साध फिरहि सहि डोलते, तदि सीझै थे चोर ॥ चेयण सुणु० ॥६२॥
साधु न डोलइ मूलि हरि, जिसु महि ज्ञानु रतन्नु।
तेरह विधि चारितु धरै, पुद्गल जाणइ अन्नु ॥ चेयण गुण० ॥६३॥
पुद्गलु अन्नु न जाणियहु, देखहु मनि विवपाइ।
किरिया सजमु ता चलै, जा पुद्गल होइ सखाए ॥ चेयण सुणु० ॥६४॥

जिण पूजा सम्मत्त गुरु, साहामी सिउ नेहु ।
इन्ह सेवंतिहि सीजीयै, नाही अन्निरखु एहु ॥ चेयण गुण० ॥६५॥
जिसु संगि कलतहु जम्मु गया, एकौ सुखु नहु लाधु ।
लोभी जीउ पतग जिउ, फिर फिर मूरख दाधो ॥ चेयण सुणु० ॥६६॥
डाइणि मतु अफीम रसु, सिखिन छोडणु जाइ ।
को को कवणु न मोहिया, काया ठवली खाइ ॥ चेयण गुण० ॥६७॥
जो जो ठवली लाइया, सोडविया गवारु ।
सांपु पिटारै पालिया, तिनिक्या कीया उपगारो ॥ चेयण सुणु० ॥६८॥
जोखिणु काया वसि करहि, इंदी रहणु न जाइ ।
तजि तपु ससारिहि कलहि, पाछै लोक हसाए ॥ चेयण गुण० ॥६९॥
ते तप तिहि कहु किव खलहि, जिन्हि जीत्या ससारु ।
सत्तु मित्तु सम करि जाणिया, साध्या सजम भारो ॥ चेयण सुणु० ॥७०॥
पहिला आपणु देख कसि, लेहि सजमु भारु ।
जे ता देखहि ओडणा, तेता पाव पसारो ॥ चेयण गुण० ॥७१॥
भला करतिहि मीत सुणि, जे हुइ बुरहा जाणि ।
तौ भी भला न छोडियै, उत्तमु यहु परवाणु ॥ चेयण सुणु० ॥७२॥
भला भला सहु को कहै, मरमु न जाणै कोइ ।
काया खोई भीतरे, भला न किवही होए ॥ चेयण गुण० ॥७३॥
हाडहु केरा पजरी, धरिया चम्मिहि छाइ ।
वहु नरकिहि सो पूरिया, मूरिख रहिउ लुभाए ॥ चेयण सुणु० ॥७४॥
जिम तरु आपणु धूप सहि, अवरह छाह कराइ ।
तिउ इसु काया सगते, जीयडा मोखिहि जाए ॥ चेयण गुण० ॥७५॥
काया नीचु कुसगडा, वैसदर सरि जोइ ।
ताता पकडै अलिमरै, सीलइ काला होइ ॥ चेयण सुणु० ॥७६॥
जिसु बिणु खिणु इकु ना सरै, भाव लियै जिसु लागि ।
जे धर पुर पट्टण दहै, ता धरि कीजइ आगि ॥ चेयण गुण० ॥७७॥
काइ सराहहि चेनहि, पुद्गलु घालहि राडि ।
हेतु बिसो अविणा सरु, जिसुकी सगती वाडी ॥ चेयण सुणु० ॥७८॥
चेस्वानेहु कसु भरमु, धर जल उप्परि कार ।
इसासु पुद्गल मीत सुणि, विहडत होइ न बार ॥ चेयण गुण० ॥७९॥

जिउ ससि मंडणु रयणिका, दिनका मंडणु भाणु ।
तिम चेतन का मंडणा, यहु पुदगलु तू जाणि ॥ चेयण सुणु० ॥८०॥

इसु काया के समते, यहु जीउ पडइ जजालि ।
हुई कचोला नीर कहु, कूटी जै घडियालि ॥ चेयण सुण० ॥८१॥

जल कहु निंदइ जीयडा, पुदगलु घालइ राडि ।
खेतु भिसो अविणा सरु, जिसुकी सगती वाडि ॥ चेयण सुणु० ॥८२॥

काय कलेवरु बीस सुहु, जतनु करतिहि जाइ ।
जिव जिव पाचें तु वडी, तिव तिव अति कडवाइ ॥ चेयण सुण० ॥८३॥

जो परमलु हुई कुसम महि, सो किव कीजै अगि ।
पुदगल जीउ सलगनु तिव, इव आस्या ·········॥ चेयण सुणु० ॥८४॥

फूलु मरइ परमलु जीवइ, तिसु जाणै सहु कोई ।
हंसु चलइ काया रहइ, किवरु बरावरि होइ ॥ चेयण गुण० ॥८५॥

कहा सकति सिव बाहरी, सकति विनसिउ काइ ।
पुदगलु जीउ सलगनु तिव, वासु दुहु इकठाए ॥ चेयण सुणु० ॥८६॥

काया सगिहि जीयडा, राख्या करमिहि बधि ।
पड्या कपुरु जुलहु सणमहि, गयवर वत्तणु गधि ॥ चेयण गुण० ॥८७॥

इस काया के सगते, जाण्या उत्तिम धम्मु ।
गूरख सा किव निंदियै, किया सफलु जिनि जम्मु ॥ चेयण सुणु० ॥८८॥

कुजर कुथू आदि दे, अैसे पुद्गलि लीय ।
सगति तै नहु बधिए, जहा सुखी होइ जीय ॥ चेवण गुण० ॥८९॥

काया तारइ जीय कहु, सतु सजमु व्रत धार ।
जिउ बेडी सगि उत्तरै, सउमण लोहा पारि ॥ चेयण सुणु० ॥९०॥

जइ वेणी पोहण तणी, इया जाणि जिय चेतु ।
कोम तिरंता दीठु मइ, करि काया सु हेतु ॥ चेयण गुण० ॥९१॥

काया की निंदा करहि, आपुन देखहि जोइ ।
जिउ जिउ भीजइ कावली, तिउ तिउ भारी होइ ॥ चेयण सुणु० ॥९२॥

इसै भरोसै जे रहे, चेते नाही जागि ।
झूठे तारु वापुडे, भेडहु पूछड लागि[1] ॥ चेयण गुण० ॥९३॥

---

१ यह पद्य पहिले ४९ संख्या पर भी आ गया है ।

तेतीस सागर बरष सुर, जिसु पसाइ सुख दीठ ।
तिसु जड सिउ इव राचियइ, जिउ कापडइ मजीठ ।। चेयण सुणु० ।।९४।।

तेतीस सागर दुख नरक महि, ते भी चित्ति चितारि ।
इसु काया के एहु गुण, रे जीव देखु सुहियइ विचारि ।। चेयण गुण० ।।९५।।

तेतीस कोडा कोडि कम, पोतै मोहु निहाणु ।
ते सहि काटै तपु सहै, काया यहु परवाणु ।। चेयण सुणु० ।।९६।।

काया कहु मुकलाइ करि, रह्या निचिंता सोइ ।
ते तपु डूबे लेइ करि, प्रजहू फिरहि निगोए ।। चेयण गुण० ।।९७।।

जिय विणु पुद्गल ना रहै, कहिया आदि अनादि ।
छह खड भोगे चक्कवै, काया कै परसादि ।। चेयण सुणु० ।।९८।।

देव नरय तियजच महि, अरु माणस गति चारि ।
जिसुका घाल्या तू फिर्‌या, तिस सिउ हौस निवारि ।। चेयण गुण० ।।९९।।

तुझ कारणि बहु दुख सहे, इनि काया गुणवति ।
चेतन ए उपगार तुझ, छोडि चला इसु प्रति ।। चेयण सुणु० ।।१००।।

कासु पुकारउ किसु कहउ, हीयडे भीतरि डाहु ।
जे गुण होवहि बोरडी, तउव न आवै ताहु ।। चेयण गुण० ।।१०१।।
मानु महतु लोभी कुजसु, अरु वहि भाकलि माहि ।
पच रतन जिसु संगते, चेतन तू कलहाहि ।। चेयण सुणु० ।।१०२।।

भला कहावै जगु मुसे सै, भगलु करे नट जेउ ।
जड की सगिहि दिठु मैं, घणा वुडंता एव ।। चेयण गुण० ।।१०३।।

माणिकु भीता अति बडा, जा कचणु तुम्ह पाहि ।
ता लगु सोभा चेतनहि, जा लगु पुदगल माहि ।। चेयण सुणु० ।।१०४।।
बहुनि कलमलु जीवडा, मुकति सरूपी आधि ।
आपा आपु विटबिया, इसु काया कै साथि ।। चेयण गुण० ।।१०५।।

मोती उपना सीप महि, विडिमा पावै लोइ ।
तिउ जिउ काया सगते, सिउपरि वासा होइ ।। चेयण सुणु० ।।१०६।।

जब लगु मोती सीप महि, तब लगु सभु गुण जाइ ।
जब लगु जीयडा सगि जड, तब लगु दुख सहाय ।। चेयण गुण० ।।१०७।।

रे चेतन तू तावला. जा जब तुम्ह सगि होइ ।
जे मदु भाजनि गूजरी, खीरु कहै सबु कोए ।। चेयरा सुरा० ।।१०८।।

चेतन तू निल ज्ञान मइ यहु नित असुचि सरीरु ।
घालि नवाया कु म महि, गगा केरा नीरु ।। चेयण गुरा० ।।१०६।।

उतु जमि न्यानु अराधिया, कीया वरतु अभगु ।
तिमु पु निहि तैं पाईया, इसु काया सिउ सगु ।। चेयरा सुरा० ११०।।

सा जड मूढ न सीचियै, जिसु फलु फूलु न पानु ।
सो सोना क्या फूकियै, जोरु कटावै कानु ।। चेयण गुरा० ।।१११।।

जोवनु लछि सरीरु सुख, घरु कुलवती नारि ।
सुरगु इच्छाई पाईया, जिन्ह कै एसो चारो ।। चेयण सुरा० ।।११२।।

तू सात धातु नीवहि सदा, चितमहि करहि विसेषु ।
तिन्ह साथि हिय नित मरी, रे जिय सभलि देखु ।। चेयरा गुरा० ।।११३।।

आहार मैथुना नींद जड, ए चारिउ जीय साथि ।
तेसठि सलाका आदि दे, इन्ह विरा कोइ न आथि ।। चेयरा सुरा० ।।११४।।

ए चारिउ सगि ताम लगु, जा जीउ करमह माहि ।
छोडि करम जीउ मोखि गया, इनहु नेडा जाहि ।। चेयरा गुरा० ।।११५।।

कालु पच मारुद्द यहु, चित्त न किसही ठाइ ।
इदी सुखु न मोखु हुइ, दोनउ खोवहि काए ।। चेयण सुरा० ।।११६।।

कालु पचमा क्या करै, जिन्ह समकतु आधारु ।
जदि कदि कोइ पुन्यात्मा, निश्चै पावहि पारु ।। चेयरा गुरा० ।।११७।।

राजु करता जे मुवा, ते भी राजु कराहि ।
भीख भमता जे मुवा, ते भीखडीय भमाहि ।। चेयरा सुरा० ।।११८।।

तपु करि पावइ राज पदु, राजहु नरकुभि होइ ।
जिनि सुहु असुह निवारिया, सो वद्या तिहु लोए ।। चेयरा गुरा० ।।११६।।

काइ पिछोडहि थोथि कहु, जिकु करा ए कुन होइ ।
जो रयरगायरु सहु मथहि, मसका चडइ न तोए ।। चेयरा सुरा० ।।१२०।।

करा ता इकु सरवनि जगि, अवरु सभैं रुपरालु ।
जिसु सेवत चौगय तरगा, तूटै माया जालु ।। चेयरा गुरा० ।।१२१।।

चेतन काइ तडप्फडहि, कूडा करहि पसारु ।
जितु फलि सकहि न पहुचि करि, तिसुकी हवस निवारो ।। चेयण सुगु० ।।१२२ ।

काया किसिथन आपणी, देखहु चिति अवलोइ ।
कूकरि बकी पूछडी, सा किम सीधी होइ ।। चेयण गुण० ।।१२३।।

भोगहि भोग जि इदपरि, भूपति सेवहि बारि ।
काया भीतरि आइकरि, सुख पाया संसारि ।। चेयण सुगु० ।।१२४।।

यहु सुखु जिय अविणासरु, दिनु दिनु छीजतु जाइ ।
जो जल सिखरहु खडहडै, सो किउ सिखरि चडाए ।। चेयण गुण० ।।१२५।।

यहु सजमु असिवर घणी, तिसु ऊपरि पगु देहि ।
रे जीय मूढ म जाणही, इव कहु किउ सीझेइ ।। चेयण सुगु० ।।१२६।।

असिवरु लागै तिन्हु कहु, जे विषया सुखि रत्तु ।
साधि सजमु हुव वज्ज मै, ते सुर लोइ पहुत्तो ।। चेयण गुण० ।।१२७।।

इसु काया परसावते, चेतन सोभा होइ ।
पचहु महि वाडिमा चडै, भला कहै सवु कोइ ।। चेयण सुगु० ।।१२८।।

भला कहावै जगु मुसै, अगलु करै नट जेंउ ।
जड कै सगिहि वीटु, मइ, घणा वूडता एव ।। चेयण गुण० ।।१२९।।

बहुता जूनि भमति यह, लही मुनिष की देह ।
तिस सिउ असी पिरति करु, जिउ सिल ऊपरि रेह ।। चेयण सुगु० ।।१३०।।

सिलभि विणसै रेहसिउ, देहमि खिण महि जाइ ।
तिसु सिउ निश्चल पिरति करु, जोले दुख छोडाइ ।। चेयण गुण० ।।१३१।।

दुक्खहु मूलिन छूटइ, पडिया आरति झाणि ।
काया खोवइ आपणी, किउ पहुचे निरवाणि ।। चेयण सुगु० ।।१३२।।

उद्दिमु साहसु धीरु वलु, बुद्धि पराकमु जाणि ।
ए छह जिनि मनि दिढु किया, ते पहुचा निरवाणि ।।१३३।।

चेयन गुणवते जडसिउ सगु न कीजै ।

जड गलइरु पूरै, तिव तिव दूख सही जै ।
जड सगु दुहेला चिरु अमिया ससारो ।।

जिनि ममता छोडी तिनि पाया भव पारो ।
पाया सुतिनि भव पारु निरुवै संगु जड मवकाजिणो ॥
तेहहु प्रकारि हि सुद्ध चारितु, धर्‌या दिढु अप्पण भुणे ।
बहु पति तणा सहि दुख छाजहि, मुकति पच लमतिया ॥
तिसु साथि जड नहु सगु कीजै, सुण चेतन गुण वतिया ॥१३४॥

चेतन सुण निरगुण जड सिउ सगति कीजै ।
इसु जड परसादिहि मोखह सुखु विलसीजै ॥
जड सहइ परीसह काटै करमह भारो ।
जिसु जड न सखाई तिसु उरवारु न पारो ॥
उरवारु पारु न होइ किछुहू रिदुइय काइ गवावहे ।
इंदिया सुखु न मोखु होवइ फिरि सुमनि पछितावहो ॥
सुरलोइ चकवति उच्च पदवी भोगतइ भोग्या घणा ।
तिसु साथि जड नित सगु कीजै सुण चेतन निरगुणा ॥१३५॥

दुख नरकि जि दीठे ते इव हीयइ सभाले ।
इसु जडकै सगते चेतन आपनु गाले ॥
परतापि विष वेली सीच्यह क्या फलु होए ।
मधु विंद कए सुख तिन्ह लगि आपुन खोए ॥
ननु खोइ आपणु राखि दिढु करि नीर समकतु निश्चलो ।
जब लगै मदिरि कालु पावकु धम्मु का लाभै जलो ॥
धनु पुत्त मित्त कलत्त काया, अति नहु कोइ सखा ।
सभलहु इव चेतन पियारे, नरकि जे दीठे दुखा ॥१३६॥

जह पुहपु तह मधु जह गोरसु तह घीउ ।
जह काठ अगनि तह जह पुदगल तह जीउ ॥
मति मुगध सि भूली हुठहि घरु घरु वारो ।
पाखडी जगु डहकहै, सकहि न आप उतारे ॥
ते सकहि आपुन तारि मूरिख, सकति काया खोवहे ।
चारितु लेकरि विषय पोषहि पक उरि मल धोमेहे ॥
सिव सकति सदा सलगनु जुगि जुगि मरमु नहु कि नही लषो ।
सभलहु इव चेतन पियारे पुहपु जह तह होइ मधो ॥१३७॥

जिय मुकति लक्ष्मी तू निकल मलु राया ।
इसु जडके लगते भमिया करमि भमाया ॥
चडि कवल जिवा गुणि तजि कहम ससारो ।
भजि जिण गुण हीयडै तेरा यहु विवहारो ॥

विवहार यहु तुझ जाणि जीयडे करहु इंदिय संवरो ।
निरजरहु बंधण कर्म्म केरे जान तनि मुक्काजरो ॥
जे वचन श्री जिण वीरि भासे ताह नित धारहु हीया ।
इव भणइ 'बूचा' सदा निम्मलु मुकति लक्ष्मी जीया ॥१३८॥

॥ इति चेतन पुद्गल धमाल समाप्त ॥

□ □ □

५

नेमिनाथ बसंतु

अमृत अमुल उमउरें निमि जिण गढ गिरनारे ।
म्हारें मनि मधुकर तुह वसैं सजम कुसुम मझारे ।
सखीय बसत सुहावौ दीसइ सौरठ देसो कोइल कुहकै मधुरसरे ।
सावणह प्रवेसो विवलसिरी महमसें भवरा रुण झुणकारे ।।
गावहि गीत सुरासुर गधप गढ गिरनारो ।
विजय पडहु जसु वाजइ आगम अविचल तालो ।
निमि जिण कीरति विलासिणि नचइ सुछन्द छदवालो ।
अभय भडार उघाडय पडइ सजम सिंगारो ।
अट्ठारह सहि प्रसील सहिलडा सरिसउ नेमि कवारो ।
न्यान कुसुम मह महकइ चारित चदन अगे ।
मुकति रमणि रगि रातउ निमि जिणु खेलइ फागो ।
सरस तबोल समाणाइ रालइ रग उगालो ।
समदविजय राइ लाडिलउ अपुर हंस विसालो ।
नव रस रसियउ निमि जिणु नव रसु रहितु रसालो ।
सिद्धि विलासिणि भोल यो समदविजय रइ बालो ।
नेमि छयल त्रिभुवण छलिउ मलियो मालणि माणो ।
राजल देखत विन्नरमे सजम सिरिय सुजाणो ।
जणु जागै तव्द सोवइ जागय सूतैं लोग ।
मोह किवाड प्रजलै अनमखु नयण सजोग ।
सरस बडे गुण माडइ चुरि चुरि करइ अहारो ।
जाण पराइ जगु झगडइ सिवदेको अलियारो ।
कुड ठाइन्द्र मैं न्हाइजै पहिरिजइ निरमल चीरो ।
नेमि गधोदकु बदिजै निर्मल होइ सरीरो ।
चदन कपूर कुकु घसि चरचिजै सावल धीरो ।
अमल कमल सालि पूजि जै भव भव भजण वीरो ।
दवणउ मरवड सेवती सहुदल पाडल मालो ।
मनह मनोरथ पूरवइ प्रभु पूज जइ त्रिकालो ।

नव नेवज रस गोरस पुञ्जि जै त्रिभुवण माही ।
जनम जीवन फलु लाभइ रे मिति तन होइ उछाहो ।
आरत्यो प्रभु कीजइ विमल कपूर प्रजाले ।
अमर मुकति मगु दीसई मोह महातमु जाले ।
कृस्नागुरु धूप धूपिजइ जिन तनु सहजि सुबासो ।
अमर रमणि रगि रमिजइ पाइजइ सिवपुर वासो ।
नव नारिग कदली फल पुञ्जि जै त्रिभुवण देवो ।
जनम जीवन फलु लाभइ होइ ससारह छेवो ।
काचीय कलीन विहसइ चोरा माउ ।
भूलउ भवरा हय भुण चवल छपल सहाउ ।
भमरु कमल रस रसियउ केतुकि कुसुम लुभाइ ।
वघण वेदु मूग्रिव सहइ राइ बर्य न सुहाइ ।
साजन छयल तिस लहि जाहि नित नवल बसतु ।
सवम नवल परि बिहसइ जाइ नित रमणि हसन्तु ।
रामाइण रगि रातउ भार बरहि तु पयाण ।
परमाहथि पथि भूलउ किउ पावहि गुण ठासो ।
अडली डाल डलामल मण लाषा फल खाये ।
वान्हवि यरवण सूखडउ सखीयण बघणा जाइ ।
मूलसघ मुखमडण पवम नन्दि सुपसाइ ।
बील्ह बसतु जि गावइ से सुषि रलीय कराइ ।।

।। इति नेमिनाथ बसतु समाप्तो ।।

□ □ □

६

टंडारणा गीत

टडाणा टडाणा मेरे जीयडा, टडाणा टडाणावे ।
इहि ससारे दुख भडारे, क्या गुण देखि लुभाणावे ।।

जिनि ठगि ठगिया अनादि कालहि, भी तिन्ह जोगु पत्याणावे ।
पडया कुमारगि मिथ्या सेवहि, मेटहि जिणि की आणावे ।।

पाप करहि पर जीव सताणै, होसी नरका ठाणावे बारा ।
केती बारह रकु कहाया, किती बारह राणावे ।।

समइ समइ सुह असुह जो बाधै, लाभो होइ सताणावे ।
बज्र लेप वह खोली नाही, लवहि अवर अयाणावे ।।

ए वह भवि भवि चहुगति भीतरि, बाध्या करमह घाणावे ।
तेरह विधि तै पालि न सकिया, चारितु धरि कृपाणावे ।।

केवल भाषित धरम अनुपमु, सो तुम चिति न सुहाणावे ।
जे सजम तै जीति न सक्या, तीखे मनमथ बाणावे ।।

राग दोष दोइ वइरी तेरै, देहि न सिवपुरि जाणावे ।
आठ महामद गज जिम गरजै, तिन मिलि किया निताणावे ।।

मात पिता सुत सजन सरीरी, यहु सबु लोगि बिडाणावे ।
रयणि पखि जिम तरवर वासै, दस दिस दिवसि उडाणावे ।।

जम्मण मरण सहे दुख अनता, तो नहुवउ सयाणावे ।
केते पुरिस निपु सिक लिंगिहि, के ते नाम धराणावे ।।

नट जिम भेष कीये बहुतेरे, तिन्हको कहइ प्रवाणावे ।
आपणु परु कारणि करि आरमु, तू पीडहि षट प्राणावे ।।

क्रोह मान माया लोभ सगहि, नितिहि रहै अरमाणावे ।
चेतनु राव निबल तइ कीयो, मनु मत्री सिउ लाणावे ।।

विषयह स्वारथ पर जिय वचहि, करि करि बुधि विनाणावे ।
छोडि समाधि महारस (अ)नूपम, मधुर बिंदु लपटाणावे ।।

आइ जरा जब मढ मैं पैठे जोवन करइ पयाणावे ।
ओसर गुण लूटहि जिव बाणुष पण पीछे पछितावणावे ।।

करि उद्दिमु अप्पणु बलु मडै, भोगहु अमर विमाणावे ।
आश्रव छेदि गही निज संवर, काटहु करम पुराणावे ।।

पाखिहि मासि नीरसु भोयणु, ते करि सेवउ जाणावे ।
समकति प्रोहणि दस विधि पूरहु निम्मलु धम्म किराणावे ।।

सुद्ध सरूप सहजि लिव निसिदिन, झावउ ग्रतरि झाणावे ।
जपति 'बूचा' जिम तुम्हि पावहु, वंछित सुख निखाणावे ।।

सुख निर्वाण निर्भय ठाण, सिव रमणी मस्तकि तिलय ।
आत्मप्रतिबुद्ध जमि कवि सुद्ध, बत्तीसो गुण पद निलय ।।

।। इति टडाणा गीत समाप्ता[1] ।।

□ □ □

---

१. गुटका दि० जैन मन्दिर नागदी बूंदी ।

७

भुवनकीर्ति गीत

आजि बधाउ सुणहु सहेली, यहु मनु पदुमनु विघसइ जिमकलीए ।
गोट्ठि अनद नित कोटिहि सारिहि, सुहु गुरु सुहु गुरु वेदहि सुकरि रलीए ।।
करि रली बन्दहु सखी सुहु गुरु लवधि गोइम सम सरै ।
जसु देखि दरसणु टलहि भवदुख, होइ नित नवनिधि घरै ।।
कपूर बन्दन अगर केसरि आणि भावन भावए ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण प्रणमोहू, सखी आज बधावहो ।।१।।

तेरह विधि चारित प्रतिपालइ, दिनकर दिनकर जिम तपि सोहइए ।
सर्वज्ञि भासिउ धर्म सुणावै वाणी हो वाणी भव मनु मोहइए ।
मोहन्ति वाणी सदा भवि सुनु ग्रन्थ आगम भासए ।
षट् द्रव्य अरु पञ्चास्तिकाया सप्ततत्व पयासए ।।
बावीस परिसह सहइ अगिहु गरुव मति नित गुणनिधो ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण पणमि सु चारितु तनु तेरह विधो ।।२।।

मूलगुणाह अठाइसइ धारइए मोहए मोहु महाभडु ताडियो ए ।
रतिपति तिणु दतिहि महिइउ पुणु कोवडुए कोवडुकरि तिहि रालीयो ए ।।
रालियो जिमि कोवड करिहि वनउ करि इम बोलइ ।
गुरु सियलि मेरहु जिउ अजगमु पवण भइ किम डोलए ।
जो पच बिषय विरतु चित्तिहि कियउ खिउ कम्मह तणु ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण प्रणमइ धरइ अठाइस मूलगुणु ।।३।।

दस लाक्षण धर्म निजु धारि कु सजमु भूसणु जिसु वनिए ।
सत्रु मित्रु जो सम किरि देखई गुरनिरगथु महामुनीए ।।
निरगथु गुरु मद अट्ठ परिहरि सवय जिय प्रतिपालए ।
मिथ्यात तम निर्द्धण दिन म जैणधर्म उजालए ।।
तेरेसव्रतहु अखल चित्तहु कियउ सकयो जम्मु ।
श्रीभुवनकीर्ति चरण पणमउ धरइ दसलक्षिण धम्मु ।।४।।

सुर तरु सब फलिउ चिंतामणि दुहिए दुहि ।
महोछा घरि घरि ए पच सबद वाबहि उछरंगि हिए ॥
गावहि ए कामणि मधुर सरे अति मधुर सरि गावति कामणि ।
जिणह मन्दिर अवहो अष्ट प्रकार हि करहि पूजा कुसममाल चढावहि ॥
ब्रह्मराज भणि श्री रत्नकीर्ति पाटिउ जयोसह गुरो ।
श्री भुवनकीर्ति आसीरवादहि सघु फलियो सुरतरो ॥

॥ इति आचार्य श्रीभुवनकीर्ति गीत ॥

□ □ □

८

पार्श्वनाथ गीत

जाग सलौनडी ए सुरण एक बाता ।
पार्श्व जिरणेंद सिवां एहु मन राता ।
राता यहु मन चरण जिरणवर वामादेवी नदनो ।
एक जगतगुरु जगनाथ वदो, पुण्य का फल पावए ।
जिन कमठ बल तप तेज हारयो, मन धर्यासि धरवणीए ।
कवि वल्ह परस जिरणेंद वदी, जाग रयरण सलौनीए ।।१।।
कु कम चदन सबल करीजे, चउसर माल गले कुसम ठवीजे ।
कुसमं ठवीजे हार गु थित, न्हाण पूज करावइए ।
एक जगत गुरु जगनाथ वदो, पुण्य का फल पावए ।
जिन अष्ट कर्म्म विदार क्षय करि, मन धरयासि धरवणीए ।
कवि वल्ह परस जिरणेंद्र वदो, सवलि चदन कीजिए ।।२।।
त्रिभुवरणं तारण मुक्त नरेसो, सत फरणतो णिकरे रहीया सेसो ।
रहीया सेसो सात फणि, अत किवही न पाइया ।
ध्यारिणवइ कोडी फिरइ, निभकरि पुरुष डिढ चित लाइया ।
धरि पुत्त सपइ लेइ लक्ष्मी, दुरति निकदना ।
कवि वल्ह परस जिरणद वदइ, स्याम त्रिभुवन वदना ।।३।।
जन्म बनारसे उतपते जासो, अलिवर विषम गढोन्यि निवासो ।
लिया निवास थान अलवर, सघ आवइ बहु पुरे ।
एक अग मडित कनक कु डल, श्रवन मुख हीरे जडे ।
दह पंच सहसउ वद तरेसठ, माघ सुदि तिथि वारसी ।
कवि वल्ह परस जिरणेंद वदो जन्म लिया बनारसी ।।४।।[1]

।। इति पार्श्वनाथ गीत समाप्तो ।।

□□□

---

१ प्रस्तुत पार्श्वनाथ गीत अभी एक गुटके में उपलब्ध हुआ है । गुटका आमेर शास्त्र भण्डार में २६२ सख्या वाला है । इसमे पार्श्वनाथ की स्तुति की गयी है । यह गीत सवत् १५६३ माघ सुदी १२ को लिखा गया था । कवि की अब तक उपलब्ध कृतियो में यह प्राचीनतम कृति है ।

६

राग वडहंसु

ए सखी मेरा मनु चपलु दसै दिसे ध्यावै वेहा ।
ए वहु पडियडा लोभ रसे खिणु सुभ ध्याने ना आवै वेहा ।।
आवै न खिणु सुभ ध्यानि लोभी पच सगिहि रात वो ।
मोहिया इनि ठगि मोहि धूरति विपु ममी करि आतवो ।
निगोद नर यह सहे वहु दुख कियो भ्रमणु धरोर वो ।
दस दिसिहि ध्यावै हरि न रहई सखी मनु मेरवो ।।१।।

एहउ वरजे रही हरि न सुणै अचरु चरै दिन रयणे वेहा ।
ए यहु मातडा आठमदे ततु न चाहीयडा नयणे वेहा ।
चाहीया तत्तु न न्यान नयणि हि सुमति चिति न धारिया ।
मिथ्याति पडिया नाद कालि हु अनमु एवह हारिया ।
मुल्लिया तितु भव मझि सागरि बूत ते जाण्या सही ।
सो अचरु चर इन सुणइ कहिया वरजिहउ तिसुको रही ।।२।।

एनि तु निगुण सिवा चेतनो क्या घुलि रहिउ लुभाए वेहा ।
ए निरजनो पटल अजनि राख्या धूरतै छाए वेहा ।
छाइया धूरति पटल अजनि राउ त्रिभुवन केरउ ।
दुख रोग सोग विजोग पंजरि किया आइ वसेरउ ।
अप्पणउ वस्तु तजि हुवउ परवसि लछि धरि कायर जिव ।
घुल रह्या निसि दिनु सगुण चेतनु निगुण तिसुनारी सिवा ।।३।।

ए रयणत्तउ वर तो भजो सुण सुण जीय हमारे वेहा ।
ए सरवनि धम्मो पालिनि जो औगुण मिटहि तुम्हारे वेवा ।
तुम मेटहि अवगुण जीय सभलि धम्मो जो सरवनि कह्या ।
मनि वचनि काया जिन्हिहि पाल्या सासुता सुख तिन्ही लह्या ।
दुख जरा जम्मण मरण केरे अब भागा सवो ।
बूचराज कवि मजु जाय म्हारे वरतु यहु रयणत्तउ ।।४।।

× × ×

१०

राग घनाक्षरी

सुणिय पथानु मेरे जीयवे, की सुभ ध्यानि न आवहि ।
साचा धम्मु न पालिया फिरि फिरिता गति धावहि ।।
फिरि फिरि गति ध्याया सुख न पाया हृढधाए उलपदा ।
इन्द्र विरवया सगिहि पया कु ढ गिहि काता आपुरि चवा ।।
सुह असुह कमह किसुह समइ तू जाणहि आपु कमावही ।
सुणिय पथानु मेरे जीयवे की सुभ ध्यानि न आवहि ।।१।। टेर

खुभिया पकज मोहनी सत्तरि कोडा कोडिवे ।
नलका सुक जिउ भासिया सक्या न वण छोडिवे ।।
नहु बधण छोड उडिया लोडै करै कलाप रे ।
रसु रसणिहि चाख्या मूलू न राख्या कीए गते हि वसेरे ।।
ठवि ठगिया लोभे नडि मोहे जडिया घाल्या आपणु वोडिवे ।
खुभिया पकज मोहनी सत्तिरि कोडाकोडिवे ।।२।।

सपति सजन सरीरि सुत पेखि न भुल्ला सभायवे ।
खेवट केरी ना वजिउ मिले सजोगिहि आइवे ।।
मिलिया सजोगिहि इन्हही लोगिहि पुव्वहि पुन्न कमाणे ।
यहु रत्नु चितामणि कवडी कारणि खोउ न मूढ अयाणे ।।
पउरगु सनेह यहु सुखु एह मधुबिंदु रस सायवे ।
सपति सजन सरीरि सुत पेखि न भुल्ला सभाइवे ।।३।।

अरहन देउ निरगथ गुरु केवल भाषित धम्मजी ।
जिनि यहु निजु करि जाणीया कीया सफलु तिन्ह जम्मुजी ।।
तिन्ह जमणु सहला गयान अहला जिनही समकतु जाता ।
दुरगति दुखु टाल्या सीयलु पाल्या मिथ्या जालि न फात्या ।।
जपति 'बूचा' कहइ सरवनि जीति सुमति मानहु भरमु जी ।
अरहतु देउ निरगथ गुरु केवल भाषित धम्मजी ।।४।।

× × ×

११

राग घनाक्षरी

पट मेरी का चोलणा लालो लोग ग मोती का हारुवे लालो ।
पहिरि पटवर कामिनी लालो, नो सती किया सिगारु वे लालो ।।
सिगारु करि जिण भवणि भाई, रहसु बहु मन महि घणा ।
सभ ईछ पूनी भया आनदु देखि दरसनु तुम्ह तणा ।।
कप्पूर चदनि अगरि केसरि अगि चरची मेलया ।
सिरि सति जिणवर करहु पूजा पहिर पाटम चोलया ।।१।।

राइ चवा अरु केवडा लालो मालवी मारुवा जाइवे लालो ।
कुद मचकु द अरु केवडा लालो, सेवती बहु महकाइ वे लालो ।।
महकाइ बहु सेवती पाडल राइवेलि सुहावणी ।
सुनल सोवन कवल कवियरु नव निवली अति घणी ।।
ले आउ मालणि गुथि नवसरू देखि विगसै हीयडा ।
माला चढ़ोडै सीसि जिणवर राइ चवा केवडा ।।२।।

पच कलस भरि निरमल लालो, स्वामी न्हवणु करेहि वे लालो ।
भावहो कामिनी भावना लालो, पुन्न तणा फलु लेहि वे लालो ।।
फलु लेहि भवियण पुन्न केरा, करि महोछा भावहो ।
नारिग तुरी जु जभीर नेवजु आणि सीमि चडावहो ।।
आरती लेकरि फिरहु आगै गहिर शब्द बजावहो ।
सिरि सत जिणवर न्हवण कीजै पच कलस भराव हो ।।३।।

गढु हथिनापुरु वदियै लालो, जिम्ह स्वामी अवतारु वे लालो ।
सफलु जनमु यहु जाणियै लालो, तेय मुकत्ति दातारु वे लालो ।।
मुकति दाता नयणि दीठा रोगु सोगु निकंदणो ।
अवतारु अचला देवि कुक्षिहि राइ विससेण नदणो ।।
जगदीस तू सुण भणइ 'बूचा' जनम दुखु दालिद हरो ।
सिरिं सति जिणवरु देउ तूठा थानु गढि हथिनापुरो ।।४।।

× × ×

१२

पद रागु गौडी

रग हो रंग हो रगु करि जिणवरु ध्याईयै ।
रग हो रंग होइ सुरमसिउ मनु लाईयै ।।
लाईयै यहु मनुरग इस सिउ अवरु रगु पतगिया ।
धुलि रहइ जिउ मजीठ कपडे तेव जिण चतुरगिया ।।
जिव लगनु वस्तरु रंगु तिवलगु इसहि कानर गाव हो ।
कवि 'वल्हु' लालचु छोडु झूठा रगि जिवरु ध्याव हो ।।१।।

रग हो रग हो पच महाव्रत पालियै ।
रग हो रग हो सुख अनत निहालियै ।।
निहालियहि सुख अनत जीयडे आठ मद जिनि खिउ करे ।
पंचिदिया दिढु लिया समकतु करम बधण निरजरे ।।
इय विषय विषयर नारि परधनु देखि व चित्त न टाल हो ।
'कवि वल्हु' लालचु छोडि झूठा रगि पच व्रत पाल हो ।।२।।

रग हो रग हो दिढु करि सीयलु राखीयै ।
रग हो रग हो रात वचन मनि भाखीयै ।।
भाखियै निज गुर ज्ञान वाणि रागु रोसु निवार हो ।
परहरहु मिथ्या करहु सवरु हीयइ समकतु धार हो ।।
बाईस प्रीसह सहहु अनुदिनु देहसिउ मडहु वलो ।
'कवि वल्हु' लालचु छोडि झूठा रगु दिढु करि सीयलो ।।३।।

रग हो रग हो मुकति रवणी मनु लाईयै ।
रग हो रग हो भव ससारि न आइयै ।।
आइयै नहु ससारि सागरि जीय बहु दुखु पाइयै ।
जिसु बाझु बहुगति फिरथा लोडै सोइ आरगु ध्याइयै ।।
तिभुवणह तारणु देउ अरहु त तासु गुण निजु गाइयै ।
'कवि वल्हु' लालचु छोडि झूठा मुकति सिउ रगु लाइयै ।।४।।

× × ×

१३

रागु दीपु

न जाणी तिसु बेल की वे चेतनु रह्या लुभाई वे लाल ।
चित हमारी राजे वरहुरी वे सुइंतरि लिवलाइ वे लाल ।।
अतरि लिवलागी आरति भागी जाण्या थूलु निराला ।
लोका अवलोक सभे जिनि दीपे हूवा सहजि उजाला ।।
निरमलु रसु पीवै जुगि जुगि जीवै जोतिहि जोति समाइवे ।
न जाण्यो तिसु बेल को वे चेतन रह्या लुभाइ वे लाल ।।१।।

जिथी रूपन गधरसो वै पयासु तिथि आइ वे लाल ।
सरगुण विधानि गुण सिवावे किती हेति सभाइ वे लाल ।।
किती सउझाए चिति चाए आपनडं सुखि थीए ।
रग महि नित अछै कहि न गछइ अमिय महारस पीए ।।
जगु जाणइ सोवै उहु सभु जोवै उनमनि रच्यो मनु लाइवे ।
जिथी रूपुन गधर सोवे पया मुतिथी तू आइवे लाल ।।२।।

वालत्तण की वालहीवे हो रत्ती तै नालि वे लाल ।
दुख सुख किती भोगवे वे सगि अनादी कालि वे लाल ।।
सगि नादी काले जिथी वाले जोवन दैवै वारे ।
जे जे सुखभाणे आपी भाणे तेइ बचिति चितारे ।।
हम साथि विरच्या अवरे रच्या साकि न वाचा पालिवे ।
वालत्तण की वालही वे हो रत्ती तै नालि वे लाल ।।३।।

जोधा सोई सोहु वावे क्या असाते नालिवे लाल ।
पाली दरि जे बस रोवे जियसर अदरि पालिवे लाल ।।
सर अबरि पाले देखु निहाले आगमि ध्यातमि कहिया ।
जो परम निरजणु सब दुख भंजणु इब जोगी सरि लहिया ।।
जपति 'बूचा' गरु तरियै सागरु अैसी बुधि संभालिवे ।
जोया सोई सो हुवावे क्या असाते नालि वे लाल ।।४।।

× × ×

१४

रागु सूहउ

वाले वलिवेहु मावे मनु माया धुलि रातावे ।
वाले वलिवेहु मावे रहइ आठ मदि मातावे ।।
मदि हूढै माता धरमु न जाता जो सरवनि हि भास्या ।
धन पुत्त कलत्ता मित्ता हित्ता देखत हियै विगस्या ।।
सा विसरीके व नरकि जा भोगी वेदन दुसहु असाता ।
करुणा करुतारि कहै जन 'वूचा' ....।
वाले वलिवेहु मावे मनु माया धुलि रातावे ।।१।।

वाले वलिवेहुँ मावे सवल मिथ्यातिहि मोह्यावे ।
वाले वलिवेहु मावे पच ठगिहि मिलि दोह्यावे ।।
ठगि पचिहि दोह्या तै नहु जोह्या साचा समकतु सारो ।
चौगति हीडतह कष्ट सहतह मूलि न लद्धा पारो ।।
आगम सिद्ध तह वचन सुणतह तै नहु चितु पउ वोह्या ।
करुणा करुतारु कहै जन 'वूचा' ।
वाले वलिवेहु मावे सवल मिथ्यातहि मोह्या वे ।।२।।

वाले वलिवेहु मावे जो लोहा पारसु पर सैवे ।
वाले वलि हु मावे ताहु कचणु दरसैवे ।।
हुइ कचणु दरसै सगति सरसै सुद्ध सरुउ पिछाणै ।
सहु अवरु भीतरु एको हानै ता परमारथु सहु जाणै ।।
आनन्द रूपी नित रहइ निरतरि कवलु हियै महि हरसै ।
करुणा करुतारुक कहइ जन 'वूचा' ।
वाले वलिवेहु मावे जो लोहा पारसु परसैवे ।।३।।

वाले वलिवेहु मावे सेवहु तिहुवण राया वे ।
वाले वलिवेहु मावे जिनि सांचा मग्गु दिखाया वे ।।
जिनि मग्गु दिखाया लिव मनु लाया तिसु अन्यामहि रहियै ।
अविहडु अविनासी जोति प्रकासी थानु मुकति जिय लहियै ।।
भौउ भागउ ससारह अति घोरह पुनरपि जनमनु पाया ।
करुणा करुतारु कहइ जनु 'वूचा' ।
वाले वलिवेहु मावे सेवहु तिहुवण रायावे ।।४।।

× × ×

१५

रागु विहागडा

ए मेरै मगखे वाचवा वासो चवे कोवल कलियावा ।
ए मइ बुखि पडया वा नवसर सो नव सरकरि मने रलिया वा ।।
मनि रलिय करि गुथ्यासि नवसर जिणह पूज रचावहे ।
सा सुता सुख अिउ मिलहि बछित जमु न चौगय पावहे ।।
जिसु देखि दरसणु टरहि भव दुख भाउ उपजै खिणु खिणो ।
जि अविजिण कारणि नि पाया राइचवा मगणो ।।१।।

ए तेरे चरणे वा चरणे वा चरणि मेरा मनो मोह्यावा ।
ए बुइ लोयणे वा अनदोसो अनदोसो जस्मो जोह्यावा ।।
जोह्यासु जा मुख देव केरा अवरु नहु सेवउ किसो ।
जिनि आठ मद निरजरे वलु करि हीयइ गुण वसिया तिसो ।।
अधिया तू इन करमि कटिनिहि भविउ जनम घणेरिया ।
मोह्या सु इन चितु आदि जिणवर चलणि इन दुहु तेरिया ।।२।।

पिरतिइ नेहडी कीजै वेसा कीजै जिणवर भाषीवा ।
ए षटु कायहा वा जाणी वा सो वाणी तिन्ह दिणे राखीवा ।।
तिन्ह राखि दिढु दे अभइन्हा परि करि नहि सैइकु खिणु ।
जिम जाणि वेयण किया निय तण तिम सुवयण पर तिणु ।।
इकु रहहु समकति सदा निश्चलु जिम सुमूलु न छीजए ।
इम कहउ आदि जिणद स्वामी पिरतिन्हा परि कीजए ।।३।।

ए चद निरमली वा वाणी वा सो वाणी अवियह पारो वा ।
ए व्रत बारहा वा धारो वा सो धरि तरहुसए सारोवा ।।
सइसारु सागरु तरहु जिम जय पचमहु वय दिढु रहो ।
वाईस प्रीसह सहहु दुग्गम तेइ अहि निसि सहो ।।
सव्वु ईछ पुनीय भणइ 'बूचा' जनमु सफला जाणिया ।
उलस्यात मनु सुणि आदि जिणवर चद निरमलो वाणीया ।।४।।

× × ×

१६

रागु आसावरी

दोहा :—सजमि प्रोहणि ना चडे भए अनत संसारि ।
स्वामी पारे उत्तरे हमि थके उरवारे ।। छदु ।।

हम थाके उरवारि स्वामी पारेगए ।
समकतु सबलो नाहुते नरदीन भये ।।
ते भये दीन जहीन समकति मग्गि जिणवर ते लडे ।
गति चारि चउरासिय लक्ष महि जनमु करि ते रूले ।।
बहु वारि दरसनु भया स्वामी धम्मु पालि न सकिया ।
तुम्हि पारि पहुते वीर जिणवर असे पतणि थकिया ।।१।।

इक्क लडेन्नरु माहि देखे कष्ट वहो ।
आसत वेदन घोर सहारैं कवण कहो ।।
कहु को सहारइ घोर वेदन ताइ तावा पावहे ।
करि लोहु थमसि अग्गिवने आणि अगि लगावहे ।।
छेयणत भेयण डड मुदगर तनु पहारे सल्लिया ।
दुख कष्ट देखे सुणहु स्वामी नर माहि इकलिया ।।२।।

सेव्या कुगुरु कुदेउ पडियाक धम्म मते ।
पुवगल प्रवतिन काल कीती बहुत थुते ।।
थुति बहुल कीती सुणहु जीयडे आठ कम्मिहि तू नच्या ।
बलु करि डिगाया पच थुत्तिहि एव मिथ्यातिहि पड्या ।।
नित चड्यो मान गयदि मय मति तसु चित्ति न वेहिया ।
पडिया कुद्धम्मिहि सुणहु जीयडे कुगुरु हेते सेविया ।।३।।

हम चातिगहु पियास दरिसन नीर विणा ।
अवतनि ताप बुझाउ सरवनि सरस घणा ।।
घण सरस सरवनि करुणा भवहु पारु लघाव हो ।
दुख जरा जम्मण मरण केरे तिन्हहु वेगि छुडाव हो ।।
कर जोडि 'बूचा' भणइ सेवगु मेटि जिण अतरि तम ।
तुम्ह नीर दरसण वाभु स्वामी त्रिसावहु चातिग हम ।।४।।

× × ×

१७

गीत

निस निस नवली देहडी निस निस अवइ कम्मु ।
निस निस आवइ कुल अमल, निस निस माणसु जम्म ।
निस निस न माणसु जम्मु लाभइ, निस निस न वांछित पावइ ।
निस निस न अरि जु खेतु लभै, निस न सुभ मति आवये ।
निस निस न सुभ गुरु होइ दसणु, धम्मु जो अप्पइ इहि ।
तो चेतना करि चेतन सभालउ, मणुव जम्म न निस मिलो ।।१।।

जा लगु खिसियन जोवना जा लगु जरा न जणावै ।
जा लगु तनु न सकोचिये, जा लगु रोग न आवै ।
आवइ न जा लगु रोगु अगइ, तेजु नहु जब लघु खलइ ।
जब्ब लग न मति श्रुति भइ भिभल, जाम बल इन्द्री मिल्यो ।
जब लग न बिछुडे प्राण प्राक्रम ताम तन पसरी गुणो ।
जब्ब लग न चेतनु चढिउ आसणु, जाम खिलियन जोवणो ।।२।।

राजु दुवारहु झल्लरी, अहि निसि सबद सुणावै ।
सुभ असुभ दिनु जो घटइ, बहुडि न सो फिरि आवइ ।
आवइ न सो फिरि घटइ जो दिनु आउ इणि परि छीज्जइ ।
पौरसहु सम्माइक्कु व्रत सजमु खिणु विलम्ब न कीजिए ।
पच परमेष्ठी सदा प्रणमउ, हियइ निज्ज समिकितु धरहु ।
खिण खिण चितावइ, चेत चेतन राजद्वारहु झल्लरी ।।३।।

जो सरवनि निज्ज भाखियो यो उत्तिम धम्मु पालहु ।
थावर जगमु जे जिया ते सम्मदिष्टि निहालउ ।
निहालि ते समदिष्टि जीवा, नत न्यानि ये कह्या ।
षट् द्रव्य अरु पचस्तिकाया, घृत घटवत भरि रह्या ।
इम भणइ बूचा व्रत्त उत्तिम तीनि रतन प्रकासिया ।
सुख लहउ वंछित सदा पालहु धरमु सरवनि भासिया ।।४।।

× × ×

गुटका सख्या मन्दिर बधीचन्द जी शास्त्र भण्डार—वेष्टन सख्या ६७१ ।

१८

गीत

ए मनुषि लियडा कवल विगस्सेवा ।
ए जिणु देखीयडा पापा पणस्सेवा ।।

सहि पाप पणासे जनम केरे देव दरसनु जोइया ।
सयल वछित इछ पुन्निय भावहा पति गोइया ।।
गहु गहिय अजि नमाइ सुदरि रोरु कसमलु पिल्लिया ।
श्री वीर जिणवर भवणि आई सखी तनु मनु खिल्लिया ।।१।।

आजु दिनु घनो रयणि सुहाइवा ।
आई तउछरगि जिणह मदरि देव गुणवहु गाइया ।
ससारि सफला नमु किया वम्मसि मनु लाइया ।।
सिद्धथराइ नरिंद नदनु दिपइ अति उज्जल तनी ।
श्री महावीरु जिणदु स्वामी दिवसु आजु आण्या घनो ।।२।।

ए गुथि मालणे माल लिवाईया ।
एमइ भाव सिवा जिण चडाईया ।।
चडाइ जिणसिरि माल कुसमहु, महमनिहि भावन भाईया ।
कप्पूरि चदनि अगरि केसरि जिणह पूज रचाईया ।।
त्रिभुवनाह नाथु अनाथु स्वामी मुकति पथ उजालणे ।
श्री वीर जिणवर भवण लाई माल गुथी मालणे ।।३।।

ए सिव अनत सुखादेण दातारावे ।
एनु म्ह चलणि मनो रचिउ हमारावे ।।
हम रचिउ मनु तुम्ह पदह पकज जरा मरणु निवारहो ।
बयाल इव किछु करहु करुणा भवह सागरु तारहो ।।
बूचराज कवि चहुगति निवारणु, सिद्धरवणी रातवो ।
श्री महावीरु जिणदु पणविउ अनत सिव सुख दातवो ।।४।।

× × ×

१९

गीत

धम्मो दुग्गय हरणो, करणो सह धम्म मगल मूल ।
जे भास्यो जिण वीरो, सो धम्मो नरहु पालोहु ।।१।।

जिसो सुकुल विनु सीलु भणिज्जै, रुपु तिसो विणु गुणहु थुणिज्जै ।
जिसो सु दीसै विणु पत्तह तरु, तिसो सु जिण धम्मह विणु जगि नरु ।
हेमु तिसो वली विनु जाणहु, मत्थ हीणु जिउ काबु बखाणहु ।
मर्क विना जैसे दीसै विनु, जती जोगु जिसो चारित विनु ।।२।।

चारित विनु जती तपी विन मतवै, जोई विनु जो ध्यान ग्रहै ।
पढ्या विनु सिद्धि बुद्धि विन पडिय, विनु सिद्धह ओवावहे ।
मन विनु जिउ भूह भूह विनु भोगी, कतपीसु विनु खिमा धुरा ।
जिण सासण वचन इव भास्यो, इसोसु नरु जिणधम्म बिना ।।३।।

समीयरु विनु रैणि दिवस विनु दिनीयरु, विन परिमल जे कुसम भणे ।
विनु तेय सुरग जलह विनु सरवर, विनु चातिक रुष वाघु घणे ।
पिक विणु तरु सू ड विणु गयवरु, जिउ दल विणपै सतरणे ।
जिण सासण वचन इव भास्यो, इसोसु नरु जिण धम्म विना ।।४।।

छतह विणु डक गुण विणु जिउ घण, कठह विणु जे थुणहि गीय ।
कर विणु जिउ ताल वेस विणु लावण, विणु लज्जु जे कुलतीय ।
लछी विणु लोल सुरह विणु धीरहि जिउ दल विणु पैस तिरण ।
वण विणु जिउ सिंघ मोर विणु गिरवर, हस विणु जिउ मानसर ।।५।।

विस विनु जिउ उरग, लूण विणु भोयणु, जिसो सु विणु केवै भवर ।
मती विणु नृपति सोम विणु पटणि सुक वल्लहइ वसवुभणे ।
जिसी रैंणि विनु जोति, तिसो चकवी विणु दिनीयरु ।
जिसी दीप विणु रैंणि तिसी बिहुणि ने बरि ।।६।।

विणु रुचि भोयण जिसा वन्धरसि तिसी कहाणी ।
जिसा भाव विणु भगति तिसो मोती विणु पाणी ।
तैसो जु बीजु कल ह योगि रही सपै वा घातिउ ।
कवि कहै वल्हे रे वुहयणह जिण सासण विगुजम इव ॥७॥

लिखित कल्याण सवत् १६४८ वरष कातग वदि श्रमावस्या ।

२

छीहल

१६ वी शताब्दी के अन्तिम चरण के जैन कवियो में छीहल सबसे अधिक चर्चित कवि रहे हैं। रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास से लेकर सभी इतिहासकारो ने किसी न किसी रूप छीहल का नामोल्लेख अवश्य किया है। छीहल राजस्थानी कवि होने के कारण राजस्थानी विद्वानो ने भी अपने अपने इतिहास में उनकी रचनाओ का परिचय दिया है।

सर्वप्रथम रामचन्द्र शुक्ल ने छीहल का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "ये राजपुताने के ओर के थे। सवत् १५७५ में उन्होने पञ्च सहेली नाम की एक छोटी सी पुस्तक दोहो मे राजस्थानी मिली भाषा में बनाई जो कविता की दृष्टि से अच्छी नही कही जा सकती। इसमे पाच सखियो की विरह वेदना का वर्णन है। इनकी लिखी बावनी भी है जिसमे ५२ दोहे हैं। उदाहरण के रूप मे उन्होने पञ्च सहेली के प्रथम दो एव अन्तिम एक पद्य भी उद्धृत किया है।[1] डा० रामकुमार वर्मा ने अपने "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" मे कवि की पञ्च सहेली गीत के परिचय के साथ ही उनके सम्बन्ध मे अपना अभिमत लिखा है कि "इनका कविता काल सवत् १५७५ माना जाता है। इनकी पञ्च सहेली नामक रचना प्रसिद्ध है। भाषा पर राजस्थानी प्रभाव यथेष्ट है क्योकि ते स्वय राजपुताने के निवासी थे। रचना में वियोग शृ गार का वर्णन ही प्रधान है।[2]

मिश्रबन्धु विनोद में छीहल का वर्णन रामचन्द्र शुक्ल एव रामकुमार वर्मा के परिचय के आधार पर किया गया है। क्योकि उद्धरण भी शुक्ल वाला ही दिया गया है। वे लिखते हैं कि इन्होने सवत् १५७५ मे पञ्च सहेली नामक पुस्तक बनाई जिसमें पाच अबलाओं की विरह वेदना का वर्णन है और फिर उनके सयोग का भी कथन है। इनकी भाषा राजपुताने ढर्रे की है और इनकी कविता मे

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृष्ठ १६८।

२ रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ५४४।

छन्दोभग भी है। इनकी रचना से जान पडता है कि ये मारवाड़ की तरफ के रहने वाले थे क्योंकि उन्होने तालाबों आदि का वर्णन बड़े प्रेम से किया है।[1]

डा० शिवप्रसाद सिंह ने अपनी पुस्तक "सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य" मे छीहल का सबसे अच्छा मूल्याकन प्रस्तुत किया है।[2] यही नही उन्होने रामचन्द्र शुक्ल एव डा० रामकुमार वर्मा के मत का उल्लेख करते हुए कवि के सम्बन्ध मे निम्न प्रकार अपने विचार लिखे हैं—"आचाय शुक्ल ने छीहल के बारे में बड़ी निर्ममता के साथ लिखा, सवत् १५७५ मे इन्होने पञ्च सहेली नाम की एक छोटी सी पुस्तक दोहो मे राजस्थानी मिली भाषा मे बनाई जो कविता की दृष्टि से अच्छी नही कही जा सकती। इनकी लिखी एक बावनी भी है जिसमे ५२ दोहे हैं। पञ्च सहेली को बुरी रचना कहने की बात समझ मे आ सकती है क्योंकि इसे रुचि भिन्नता मान सकते हैं। किन्तु बावनी के बारे मे इतने नि सदिग्ध भाव से विचार किया यह ठीक नही है। बावनी ५२ दोहो की एक छोटी रचना नही है बल्कि इसमे अत्यन्त उच्चकोटि के ५३ छप्पय छन्द हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने छीहल की पञ्च सहेली का ही जिक्र किया है। वर्मा जी ने छीहल की कविता की श्रेष्ठता-निकृष्टता पर कोई विचार नहीं दिया किन्तु उन्होने पञ्च सहेली की वास्तविकता का सही विवरण दिया है।"

इसके पश्चात् 'राजस्थानी साहित्य का इतिहास' पुस्तक मे डा० हीरालाल महेश्वरी ने छीहल कवि का राजस्थानी कवियो मे उल्लेखनीय स्थान स्वीकार करते हुए उनकी पञ्च सहेली और बावनी को काव्यत्व से भरपूर एव बोलचाल की राजस्थानी मे बहुत ही अनूठी रचनाएँ मानी हैं।[3] इसके पश्चात् और भी विद्वानो ने छीहल के बारे मे विवेचन किया है। डा० प्रेमसागर जैन ने छीहल को सामर्थ्यवान कवि माना है। तथा उनकी चार रचनाओ का परिचय एव बावनी का नामोल्लेख किया है।[4] लेकिन जैन विद्वानो मे डा० कामता प्रसाद, डा० नेमीचन्द शास्त्री आदि ने छीहल जैसे उच्च कवि का कहीं उल्लेख नही किया है।

जन्म परिचय

छीहल राजस्थानी कवि थे। वे राजस्थान के किस प्रदेश के रहने वाले थे

---

१ मिश्रबन्धु विनोद—पृ० १४३।

२ सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० १६८।

३ राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० २५५–५६।

४ हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि पृ० १०१–१०६।

इसके बारे में उन्होंने स्वय ने कोई परिचय नहीं दिया है। लेकिन पञ्च सहेली गीत मे कवि ने जिस प्रकार कुए पर पानी भरने के लिए आने वाली पांच विरहिणी स्त्रियो का चित्र प्रस्तुत किया है। उनके परस्पर की वार्तालाप को काव्यबद्ध किया है। उससे ऐसा लगता है कि कवि शेखावाटी प्रदेश के किसी भाग के थे जो ढूढाड प्रदेश की सीमा को भी छूता था। बावनी मे दिये गए परिचय के अनुसार वे अग्रवाल जैन थे तथा दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में उत्पन्न हुए थे। कवि ने 'लघुवेलि' मे जिस प्रकार जिन धर्म की महत्ता का वर्णन किया है उससे स्पष्ट है कि वे दिगम्बर अनुयायी श्रावक थे।[1] डा० शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है कि कवि के जैन होने का कही उल्लेख नहीं मिलता।[2] इससे प्रतीत होता है कि उन्होने कवि का लघु गीत नही देखा। पथी गीत का भाव नहीं समझा। पिता का नाम नाथू जी नाल्हिग वश के थे।[3] इससे अधिक परिचय अभी तक नही मिल सका है। खोज जारी है और हो सकता है किसी अन्य सामग्री के उपलब्ध होने पर कवि के सम्बन्ध मे पूरा परिचय ही प्राप्त हो जावे।

छीहल रसिक कवि थे। जब उन्होने पञ्च सहेली गीत की रचना की थी तो लगता है वे युवावस्था मे थे। और किसी के विरह मे डबे हुए थे। कवि पानी भरने के लिए कुए पर जाते होगे और उन्होने वहाँ जो कुछ सुना अथवा देखा उसे छन्दोबद्ध कर दिया। मालिन, छीपन, सोनारिन, तम्बोलिन, आदि जाति की युवतिया वहाँ पानी भरने आती होगी। जब उसने उनसे अपने अपने विरह की बात सुनायी तो कवि ने उसे छन्दोबद्ध कर दिया। कवि की अब तक ७ रचनाए उपलब्ध हो चुकी हैं। यद्यपि बावनी को छोडकर सभी लघु रचनाए हैं। किन्तु छोटी होने पर भी वे काव्यमय है तथा कवि की काव्य-शक्ति को प्रस्तुत करने वाली हैं। सात रचनाओ के नाम निम्न प्रकार हैं—

१ पञ्च सहेली गीत
२ बावनी
३ पथी गीत
४ लघु वेली
५ आत्म प्रतिबोध जयमाल

---

१ श्री जिनवर की सेवा कीधी रे मन मूरख आपणा ॥१॥
२ सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य—पृ० १६८।
३. नाल्हिग वसि नाथू सुतनु अगरवाल कुल प्रगट रवि।
बावनी वसुधा विस्तरी कवि ककण छीहल कवि ॥५३॥

६ उदर गीत
७ वैराग्य गीत

१ पञ्च सहेली गीत

यह राजस्थानी भाषा की कृति है। डा० रामकुमार वर्मा ने इसके सम्बन्ध मे लिखा है कि इसमे पाच तरुणी स्त्रियो ने मालिन, छीपन, सोनारिन, तम्बोलिन, प्रोषित पतिका नायिका के रूप मे अपने प्रियतमों के विरह मे, अपने करुण आवेगों का वर्णन अपने पति के व्यवसाय से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओ का उल्लेख और तत्सम्बन्धी उपमाओं और रूपकों के सहारे किया है।[1] डा० शिवप्रसाद सिंह ने पञ्च सहेली को १६ वीं शती का अनुपम शृ गार काव्य माना है। साथ मे यह भी लिखा है कि इस प्रकार का विरह वर्णन उपमानो की इतनी स्वाभाविकता और ताजगी अन्यत्र मिला दुर्लभ है।"[2]

पञ्च सहेली मे पाच विभिन्न जाति की स्त्रियो के विरह की कहानी कही गई है। ये स्त्रियां किसी उच्च जाति की न होकर मालिन, तम्बोलिन, छीपन, कलालिन एव सुनारिन हैं जिनके पति विदेश गये हुए हैं। उनके विरह मे वे सभी स्त्रियां समान रूप से व्यथित हैं। कवि ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि पति वियोग मे प्रोषित पतिका कितनी क्षीणकाय म्लान मुख हो जाती हैं। उनके आंखों मे कज्जल, मुख मे पान नहीं होता। गले मे हार भी नहीं पहना जाता और केश भी सूखे-सूखे लगते हैं। वह हमेशा अनमनी रहती है। तथा लम्बे श्वास लेती है। उनके अधरोष्ठ सूख जाते हैं तथा मुख कुम्हला जाता है।

छीहल कवि जिस किसी नगर के रहने वाले थे, वह सुन्दर था तथा स्वर्ग- लोक के समान था। वहां विशाल महल थे। स्थान-स्थान पर सरोवर थे तथा कुए और बावडियो से युक्त था। नगर मे सभी ३६ जातियां रहती थी। लोगों मे बहुत चतुरता थी। वे अनेक विद्याओ को जानते थे। तथा वे एक-दूसरे का सम्मान करते थे। नगर की स्त्रिया रूपवती एव रभा के समान लावण्यवती थीं। नये नये वस्त्रा- भूषण पहिन कर वे सरोवर पर पानी भरने जाती थी। एक दिन इसी प्रकार नगर की कुछ नवयौवना स्त्रिया वस्त्राभूषणों से अलकृत होकर सरोवर के पास आई। उस समय बसन्त था। इसलिए उनमे और भी मादकता थी। उनमे से कुछ गीत गा रही थी। कुछ झूलना झूल रही थी तथा एक-दूसरे से हास परिहास कर रही

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- पृ० ४४८।
२ सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य—पृ० १७०।

थी । लेकिन उनमें पांच सहेलियां ऐसी भी थीं जो न नाचती थी, न गाती थी और न हसती थी । कवि के शब्दों में उनकी दशा निम्न प्रकार थी—

तिन महि पंच सहेलियां नाचइ गावइ न हसइ ।
ना मुख बोलई बोल·········· ·······················।।६।।

नयनह काजल ना दीउ, ना गलि पहिर्यो हार ।
मुख तम्बोल न खाईया, ना कछु किया सिंगार ।।१०।।

रूखे केस ना न्हाईया, मइले कप्पड तास ।
विलखी बइसी उनमनी, लावे लेहि उसास ।।११

सुन्दरियो ने जब उन्हे उदास देखा तो उसका कारण जानना चाहा क्योंकि साथ की सहेलियों ने कहा कि वे यौवनवती हैं उनकी देह भी रूप वाली है । फिर इतनी उदासी का क्या कारण है । यह सुनकर उन्होंने मधुर स्वर से अपना-अपना सच्चा दुख निम्न प्रकार कहा—

उन्होने कहा कि वे एक ही घर की अथवा जाति की नही अपितु मालिन, तम्बोलिन, छीपन, कलालिन एव सुनारिन जाति की हैं । लेकिन विरह का कारण सब का समान है । इसलिए एक-एक ने अपने दुख का कारण कहना प्रारम्भ किया—सर्वप्रथम मालिन जाति की यौवना स्त्री ने कहा कि उसका पति उसे छोडकर परदेश चला गया है । जिसके विरह से वह अत्यधिक दु खी है । उसका एक दिन एक वर्ष के बराबर व्यतीत होता है । यौवनावस्था मे पतिदेव परदेश चले गये हैं । रात्रि दिन आँखो मे से आसू बहते रहते हैं । कमल के समान मुख कुम्हला गया है । सारा बाग सूख गया है । शरीर रूपी वृक्ष पर फूल लगने लगे हैं तथा दोनो नारगिया रस से ओतप्रोत हैं लेकिन अब वे विरह से सूखने लगी हैं क्योंकि वन को सीचने वाला माली परदेश गया हुआ है ।

पहिली बोली मालनी मुझको दुख अनन्त ।
बालइ यौवन छाँडि कइ, चल्यु दिसाउरि कत ।।१७।।

निस दिन बहवई पवाल ज्यु, नयनह नीर अपार ।
विरहउ माली दुक्ख का सूभर भरया किवार ।।१८।।

कमल बदन कुमलाईया, सूकी सुख बनराइ ।
वाझू पीयारइ एक खिन, बरस बराबरि जाइ ।।१६।।

तन तरवर फल लागिया दुइ नारिंग रसपूरि ।
सूखन लगा विरह झल, सींचन हारा दूरि ।।२०।।

दूसरी विरहिणी तम्बोलिन थी। वह पति के विरह में इतनी दुर्बल हो गयी थी कि चोली मात्र से ही पूरा शरीर ढक जाता था। वह हाथ मरोड़ती, सिर धुनती और पुकारती। उसका कोमल शरीर जलता। मन मे चिन्ता छाये रहती और आंखों से अश्रुधारा कभी रुकती ही नहीं। जब से उसके पिया बिछुड़े तब से ही उसके सुख का सरोवर सूख गया—

हाथ मरोरउ सिर धुनउ, किस सउ करूं पुकार।
तन दाझई मन कलमलइ, नयन न खडइ धार ॥२५॥
पान झडे सब रूख के, बेल गई तनि सुक्कि।
दूभरि रति बसंत की, गया पियारा मुक्कि ॥२६॥
हीयरा भीतरि पइसि करि, विरह लगाइ आगि।
प्रीय पानी विनि ना बुझवइ, बलीसि सबली लागि ॥२७॥

छीपन आखो मे आसू भर कर कहने लगी कि उसके विरह का दु ख वही जानती है, दूसरा कोई नही जानता। तन रूपी कपडे को दु ख रूपी कतरनी से वह दर्जी (प्रियतम) एक साथ तो काटता नही है और प्रतिदिन देह को काटता रहता है। विरह ने उसके शरीर को जला कर रख दिया है। उसका सारा रस जला कर उसको नीरस कर दिया है।

तन कपडा दुक्ख कतरनी दरजी विरहा एह।
पूरा ब्योत न ब्योतई, दिन दिन काटइ देह ॥३२॥
दु ख का तागा वीटीया सार सुई कर लेइ।
चीनजि बघइ अविकाम करि, नान्हा बखीया देई ॥३३॥
विरहइ गोरी अति दही, देह मजीठ सुरग।
रस लिया अवटाइ कइ, बाकस कीया अग ॥३४॥

चौथी कलालिन थी। वह कहने लगी कि उसका शरीर तो भट्टी की तरह जल रहा है। आखों में से आसू बरस रहे हैं जो मानो अर्क बन रहा है। उसका भरतार बिना अवगुन के ही उसको कस रहा है। एक तो फागुन का महिना फिर यौवनावस्था, लेकिन उसका प्रियतम इस समय बाहर गया हुआ है इसलिए उसकी याद कर करके वह मर रही है।

मो तन भाटी ज्यूं तपइ, नयन चुवइ मद धारि।
बिन ही अवगुन मुझ सू, कसकरि रह्या भरतार ॥३६॥
माता योवन फाग रिति, परम पियारा दूरि।
रली न पूजै जीव की, मरउ विसूरि विसूरि ॥४२॥

पाचवी विरहिणी सुनारिन थी । वह तो विरह रूपी समुद्र मे इतनी डूब गई थी कि उसका थाह पाना ही कठिन था । उसके अंगों को मदन रूपी सुनार ने हृदय रूपी अंगीठी पर जला जलाकर कोयला कर दिया था । उसके विरह ने तो उसका रूप ही चुरा लिया जिससे उसका सारा शरीर सूना हो गया ।

हू तउ बूडी विरह मइ, पाउ नाहीं थाह ।।४५।।

हीया अगीठ्ठी मसि जिय, मदन सुनार अभग ।
कोयला कीया देह का मिल्या सवेइ सुहाग ।।४६।।

इस प्रकार पाचो विरहिणी स्त्रियो से छीहल कवि ने जब उनके विरह दु ख का वर्णन सुना तो सभवत वे भी दु खी हो गये । अन्त मे कवि को भी कहना पडा कि विरहावस्था ही दु खावस्था है । जिसमे पल भर को सुख नही मिलता ।

छीहल बयरी विरह की घडी न पाया सुख ।
हुम पचइ तुम्हसउ कह्या, अपना अपना दु ख ।।५१।।

कुछ दिनो पश्चात् फिर वे पाचो मिली । वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के साथ-साथ उनके पति भी परदेस से वापिस आ गये थे । इसलिए वे हसने लगीं, गाने लगीं । उस दिन वे पूरे शृ गा'र मे थी । छीहल ने जब उन्हे हसते हुए देखा तो उन्होंने फिर उन स्त्रियो से पूछा--

विहसी गावइहि रहिसमू कीया सइ सिंगार ।
तब उन पच सहेलिया, पू छी दूजी बार ।।५४।।

मइ तुम्ह आमन दूमनी देखी थी उतवार ।
अब हू देखू विहसती, मोसउ कहउ विचार ।।५५।।

उनका सांई आ गया था । वियोगिन बसन्त ऋतु जा चुकी थी । मिलन की वर्षा ऋतु आ गई थी । मालिन के मुख रूपी पुष्प को पति ने मधुकर बनकर खूब पी लिया था । तम्बोलिन ने चोली खोल कर अपार यौवन भरी देह को निकाला और अपने पति के साथ बहुत प्रकार ये रग किया । आखो से आख मिली और अपूर्व सुख का अनुभव किया ।

मालिन का मुख फूल ज्यउ बहुत त्रिगास करेइ ।
प्रेम सहित गुञ्जार करि, पीय मधुकर मलेइ ।।५८।।

चोली खोल तम्बोलनी काढ्या गात्र अपार ।
रग कीया बहु प्रीयसु, नयन मिलाई तार ।।५९।।

रचना काल

पञ्च सहेली गीत का रचना काल संवत् १५७५ फागुण सुदि पूर्णिमा है। उस दिन होली थी और कवि भी होली के उन्मुक्त आनन्द मे ऐसी सरस रचना लिखने मे सफल हुए थे। इसलिए स्वयं ने लिखा है कि उसने अपने मन के मधुर भावों से इस रचना को निबद्ध किया है।

> मीठे मन के भावते, कीया सरस बखाण।
> अण जाण्या मूरिख हसइ, रीझइ चतुर सुजाण ॥६७॥

भाषा

छीहल राजस्थानी कवि हैं। उनकी कृतियो की भाषा के सम्बन्ध मे डा० शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है कि कवि की कुछ पाण्डुलिपियाँ ब्रजभाषा के निकट है जबकि कुछ पर राजस्थानी प्रभाव ज्यादा है। आमेर शास्त्र भण्डार वाली पाण्डुलिपि को उन्होने राजस्थानी प्रभावित कहा है। लेकिन अन्त मे वे यही निष्कर्ष निकालते हैं कि पञ्च सहेली गीत की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है।[1] अनूप संस्कृत लाइब्रेरी मे इसकी चार प्रतिया है जिनमें तीन का नाम तो 'पञ्च सहेली री बात" दिया हुआ है।[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रतिलिपिकार उसे राजस्थानी भाषा की कृति मान कर चलते थे। वैसे कृति की अधिकांश शब्दावली राजस्थानी भाषा की है। न्हाईया (११) अवालीया (१२) बालीया (१३) चल्यु (१७) कुमलाईया (१९) चपाकेरी (२२) बीछुड्या (२९) आदि शब्द एवं क्रिया पद सभी राजस्थानी भाषा के हैं।

पञ्च सहेली गीत एक लोकप्रिय कृति रही है। राजस्थान के कितने ही शास्त्र भण्डारो मे इसकी प्रतिया संग्रहीत है।

१ दि० जैन शास्त्र भण्डार मन्दिर ठोलियान — गुटका संख्या ६७।
२ भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर — गुटका संख्या १३८।
३ शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर चौधरियो का मालपुरा (टोक) — गुटका संख्या ११।
४ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी केटलाग राजस्थानी सेक्सन नं० ७८ छंद सं० ६६ पत्र १९-२२ लिपि काल सं० १७१८।
५ ,, ,, ,, नं० १४२ पृ० ७६–७७।

---

१ सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—पृ० १७०–७१।
२ वही।

६ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी केटलाग राजस्थानी सेक्सन न० २१७—अन्त में संस्कृत श्लोक भी दिये हुए हैं।

७ " " " न० ७७ पत्र स० ९८–१०२ लिपिकाल सवत् १७४६।

मूल्यांकन

पञ्च सहेली गीत राजस्थानी भाषा की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमे शृंगार रस का बहुत ही सूक्ष्म तथा मार्मिक वर्णन हुआ है। वियोग शृंगार में विरहिणी नायिकाओं के अनुभावो का चित्रण उन्ही के शब्दों में इतना सवेद्य और अनुभूतिपरक है कि कोई भी सहृदय विरह की इस दग्धकारी वेदना से व्याकुल हुए बिना नही रहता।[1] कवि ने उसमे वियोग तथा सयोग दोनों का ही चित्रण कर के साहित्य मे एक नयी परम्परा को जन्म दिया है। उन्ही पांचो स्त्रियो की सयोग मे मनोभावो की दशा एकदम बदल जाती है। एक तम्बोलिन की मनोदशा वर्णन मे तो कवि ने सब सीमाओ को लाघ दिया है। वास्तव मे विरह मे और मिलन मे यौवना स्त्री की क्या दशा रहती है कवि ने इसका बहुत ही सूक्ष्म हृदय ग्राही वर्णन करके पाठको को आश्चर्य चकित कर दिया है। भाषा एव शैली दोनो दृष्टियो से भी पञ्च सहेली गीत एक उत्कृष्ट रचना है। राजस्थानी भाषा साहित्य मे इस लघु काव्य को एक महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिये।

२ बावनी

छीहल कवि की यह दूसरी बडी रचना है जिसमे कवि ने कितने ही विषयो को छुआ है। प्रो० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' के शब्दो मे बावनी मे वर्णित नीति और उपदेश के विषय हैं तो प्राचीन पर प्रस्तुतीकरण की मौलिकता, प्रतिपादन की विशदता एव दृष्टान्त चयन की सूक्ष्मता सर्वत्र विद्यमान है। कवि सस्कृत के सुभाषितो एव नीतियों का ऋणी हैं। पर उनके अनुवादन अनुधावन मात्र नही है।[2] प्रस्तुत कृति भाषा एव भाव दोनो के परिपाक का उत्तम उदाहरण है। यद्यपि नीति और उपदेशात्मक विषयो का वर्णन बावनी का मुख्य विषय है फिर भी कवि कभी भी काव्य से दूर नहीं हुआ। उसने अपने विषय को नये ढग एव नये भावो के साथ अभिव्यक्त किया है।

---

१ सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—पृ० ३०७।

२ मरुभारती—वर्ष १५ अक २—पृ० ६।

जैन विद्वानों ने बावनी संज्ञक काव्य लिखने में प्रारम्भ से ही रुचि दिखाई है। ये बावनियां किसी एक विषय पर आधारित न होकर विविध विषयो का वर्णन करती हैं। बावनी लिखने वाले कवियों मे डूगरसी, बनारसीदास, जिनहर्ष, दयासागर, ब्र० मालक, मतिशेखर, हेमराज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जैन कवि न तो अपने पौराणिक कथानको मे ही बधे रहे और न उन्होने सामन्ती के चित्रण मे जन सामान्य को भुलाया। जैन काव्य मे विराग और कष्ट सहिष्णुता पर बहुत बल दिया गया है। यह भी सत्य है कि इस प्रकार सदाचरण के नीरस उपदेश काव्य को उचित महत्व नहीं देते किन्तु यह केवल एक पक्ष है। अपने अध्यात्म जीवन को महत्त्व देते हुए तथा पारलौकिक सुखो के लिए अति सचेष्टा दिखाते हुए भी जैन कवि उन लोगो को नहीं भुला सका जिनके बीच वह जन्म लेता है। उसके मन मे अपने आस-पास के लोगो के सुखी जीवन के लिए अपूर्व सदिच्छा भरी हुई है। वह सृष्टि की सारी सम्पत्ति जनता के द्वार पर जुटा देना चाहता है।[1]

बावनी का एक-एक छप्पय नीति के रत्न हैं जो अपनी प्रभा से उद्‌भासित और प्रकाशित हैं। कवि ने बडी सभ्यता से मर्यादा, नीति और न्याय के पक्ष का समर्थन करते हुए पाखडियो और स्वार्थियो की खबर ली हैं। जगत का स्वभाव प्रस्तुत किया है तथा उसमे मानव को अच्छे कार्य करने की प्रेरणा दी है।

प्रस्तुत बावनी का हिन्दी की बावनियों मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य शुक्ल ने यद्यपि इसमे ५२ दोहे होना लिखा है पर इसमे ५३ छप्पय छन्द हैं जो ओम से प्रारम्भ होकर नगराक्षर क्रम से निबद्ध हैं। क्रम निर्वाह के लिये ओ, औ, क्ष, त्र वर्ण छोड दिये गये हैं तथा ङ, एव ञ के स्थान पर न का तथा ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, य, व, श, के स्थान पर क्रमश रि, री, लि, ली, ज, ओ, म, का प्रयोग किया गया है। कई अन्य कवियो द्वारा रचित बावनियो मे भी वर्णमाला का यह परिवर्तित रूप पद्य क्रम के लिये प्रयुक्त हुआ है।[2] बावनी के प्रारम्भिक पाच पदो मे आदि अक्षरो के द्वारा ॐ नम सिद्ध बनता है जो कवि के जैन होने का द्योतक है।

बावनी का प्रथम पद्य मगलाचरण के रूप मे तथा अन्तिम पद्य मे कवि ने बावनी का रचना काल एव स्वय का परिचय दिया है। इसके शेष छन्द नीति एव उपदेश परक हैं। कवि ने बावनी मे विषय का अथवा नीति एवं उपदेशो का कोई क्रम नही रखा है किन्तु जैसा भी उसे रुचिकर प्रतीत हुआ उसी का वर्णन कर दिया।

---

१ सूर पूर्व ब्रज भाषा और साहित्य—पृ० २८१।
२ मरु भारती वर्ष १५ अंक–२ पृ० ६।

विषय प्रतिपादन

प्रारम्भ में पांच इन्द्रियों के विषयों में यह जीव किस प्रकार उलझा रहता है और अपने मन को अस्थिर कर लेता है। हाथी स्पर्शन इन्द्री के वशीभूत होकर, हरिण श्रवण इन्द्री के कारण अपनी जान गवा देता है। यही नहीं रसना इन्द्री के कारण मछलियां जाल मे फस जाती हैं। भवरा एव पतग भी इसी तरह जाल मे फसकर अपने जीवन का अन्त कर लेते हैं—

नाद श्रवण धावन्त तजइ मृग प्राण ततष्खिण।
इन्द्री परस गयन्द वास अलि मरइ बिचष्खण।
रसना स्वाद विलग्गि मीन बज्झइ देखन्ता।
लोयण लुबुध पतग पडइ पावक पेषन्ता।
मृग मीन भवर कु जर पतग, ए सब बिणासइ इक्क रसि।
छीहल कहइ रे लोइया, इन्दी राखउ अप्प वसि।।२।।

कवि ने समस्त जगत को स्वार्थमय बतलाया है। मनुष्य जगत् मे आता है और कुछ जीवन के पश्चात् वापिस चला जाता है। यह सब उसी तरह है जैसे फलो से लदे वृक्ष पर पक्षी आकर बैठ जाते हैं और फल समाप्त होने तथा पत्ते झडने पर सब उड जाते हैं। उसी तरह मनुष्य जगत् से स्वार्थ के लिए अथवा धन के लिए मित्रता बाधता है और वे मिल जाने के पश्चात् उसे वह भुला बैठता है।

छाया तरुवर पिष्षि आइ, वहु बसै विहगम।
जब लगि फल सम्पन्न रहै, तब लगि इक सगम।
विहवसि परि अवथ्थ, पत्त फल झरै निरन्तर।
खिण इक तथ्थ न रहइ, जाहि उडि दूर दिसतर।
छीहल कहै दुम पंखि जिम महि मित्र तणु दव्व लगि।
पर कज्ज न कोऊ वल्ल हो, अप्प सुवारथ सयल जगि।।२६।।

मनुष्य को थोडे-थोडे ही सही लेकिन कुछ अच्छे कार्य करने चाहिए। दूसरो के हित के लिए विनयपूर्वक धन दिन भर देते रहना चाहिए अर्थात् भलाई एव दान के लिए कोई समय निश्चित नही होता। कवि कहता है कि जब तक शरीर मे श्वास है तब तक अपने ही हाथो से अपनी सम्पत्ति का उपयोग कर लेना चाहिए क्योंकि मरने के पश्चात् वह उसके लिए बेकार है। कवि ने बीसल राजा की उपमा दी है जो १९ करोड़ का धन जोड कर छोड गया और उसका जीवन पर्यन्त भोग और दान किसी मे भी उपयोग नही किया।

थोरो थोरो माहि, समय कछु सुकृति कीजइ।
विनय सहित करि हित्त, वित्त सारं दिन दीजइ।
जब लगि सांस सरीर मूढ विलसहु निज हत्थहि।
मुवा पछै लपटो, लच्छी लग्गै नहि सत्थहि।
छीहल कहइ बीसल नृपति सचि कोडि उगणीस दब्ब।
लाहो न लियो भोगब्वि, करि अतकाल गो छांडि सब्ब ।।३६।।

मनुष्य जीवन भर भविष्य की कल्पना करता रहता है और मृत्यु की ओर जरा भी सचेत नहीं रहता लेकिन जब मृत्यु आती है तो उसकी सब आशाएँ धरी की धरी रह जाती हैं और वह कुछ भी नहीं कर सकता। जिस प्रकार मधुकर कमल पुष्प मे बन्द होने के पश्चात् सुखद प्रात काल की कल्पना करता है लेकिन उसे यह पता नही कि उसके पूर्व ही कोई हाथी आकर उसकी जीवन लीला समाप्त कर सकता है इसलिए भविष्य की आशाओ की कल्पना छोड़कर वर्तमान मे अच्छे कार्य कर लेना चाहिए—

भ्रमर इक्क निसि भ्रमै, परो पकज के सपुटि।
मन महि मडै आस, रयणि खिण माहि जाइ घटि।
करि हैं जलज विकास, सूर परभाति उदय जब।
मधुकर मन चितवै, मुक्त हैव हैं बन्धन तब।
छीहल द्विरद ताही समय, सर सपत्तउ दइव वसि।
अलि कमल पत्र पुडइणि सहित, निमिष माहि सो गयो ग्रसि ।।४३।।

इस प्रकार पूरी बावनी सुभाषितो एव उपदेशात्मक पद्यो से भरी पडी है। उसका प्रत्येक पद्य स्मरणीय है तथा मानव को विपत्ति से बचा कर सुकृत की ओर लगाने वाला है। सभी सुभाषित सम्प्रदाय भावनाओ से दूर किन्तु मानवता तथा विश्व सेवा का पाठ पढ़ाने वाले हैं। मानव को राग, द्वेष, काम, क्रोध, मान एव माया के चक्कर से बचाने वाले हैं। यही नही जगत का वास्तविक स्वरूप को भी प्रस्तुत करने वाले हैं। कवि ने इन पद्यो मे अधिक से अधिक भावो को भरने का प्रयास किया है। इसलिए कवि की प्रस्तुत बावनी हिन्दी एव राजस्थानी भाषा की सुन्दरतम कृतियो में से है।

भाषा

भाषा की दृष्टि से बावनी राजस्थानी भाषा की कृति है। इसमें अपभ्र श शब्दो की जो भरमार है वे इसके राजस्थानी रूप को ही व्यक्त करने वाले हैं। डा० शिवप्रसाद सिंह ने बावनी को ब्रजभाषा के विकास की कड़ी के रूप में माना है

जो सूरदास के ब्रजभाषा का परिवर्ती रूप है लेकिन बावनी में ब्रज का ही नहीं अपभ्रंश एवं राजस्थानी का भी परिस्कृत रूप देखा जा सकता है।

छीहल कहइ बल गज्जि करि, जो जल उलहरि देइ घन।
चातक नीर ते परि पियै, ना तो पियासो तजै तन ॥३४॥

रचना काल

बावनी की रचना संवत् १५८४ कार्तिक सुदी अष्टमी गुरुवार के दिन सम्पन्न हुई थी। कवि ने अपने श्री गुरु का नाम लेकर रचना प्रारम्भ की थी और सरस्वती की कृपा से उसकी यह रचना सानन्द समाप्त हुई थी।

चउरासी अग्गला सइ जु पनरह संवच्छर।
सुकुल पख्य अष्टमी मास कातिग गुरुवासर।
हृदय उपनी बुद्धि नाम श्री गुरु को लीन्हो।
सारद तणइ पसाइ कवित संपूरण कीन्हो।

कवि का परिचय

बावनी के अन्तिम पद्य मे कवि ने अपना परिचय दिया है। वह नाथू का पुत्र था। अग्रवाल जैन जाति मे उत्पन्न हुआ था तथा उसका वंश नाल्हिग कहलाता था।

नाल्हिग वंससि नाथू सुतनु अगरवाल कुल प्रगट रवि।
बावन्नी वसुधा विस्तरी, कवि कंकण छीहल्ल कवि ॥५३॥

बावनी अपने समय मे लोकप्रिय कृति रही है तथा उसका संग्रह गुटको मे मिलता है जिससे पता चलता है कि पाठक इसे चाव से पढा करते थे। अब तक राजस्थान के जैन ग्रंथागारों मे बावनी की निम्न पाण्डुलिपियां उपलब्ध हो चुकी हैं—

१ शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरणजी पांडे, जयपुर — गुटका संख्या १४० लेखन काल सं० १७१६ (इसमे २२ से ५३ तक के पद्य हैं)

२ शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर ठोलियान — गुटका संख्या १२५ (इसमे ५० पद्य हैं)

३ भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर — गुटका संख्या ३५ (इसमे ५३ पद्य हैं)

४ उक्त कृतियो के अतिरिक्त, अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर तथा अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर मे भी बावनियो की पाण्डुलिपियां मिलती हैं।[1]

---

१ सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य पृ० ३७७।

इस प्रकार बावनी राजस्थानी भाषा की एक उत्कृष्ट रचना है जिसकी पाण्डुलिपियां राजस्थान के और भी भण्डारों मे उपलब्ध हो सकती हैं।

वैराग्य गीत मानव को जीवन मे अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरणा स्वरूप है। बचपन, यौवन एव वृद्धावस्था तीनो ही ऐसे ही निकल जाते हैं और जब मृत्यु आती है तो यह मनुष्य हाथ मलने लगता है इसलिए अच्छे कार्य तो जितना जल्दी हो कर लेना चाहिए। यही गीत का सार है जिसको कहने के लिए कवि ने प्रस्तुत गीत निबद्ध किया है।

उदर गीत मे कवि कहता है कि सारा जीवन यदि उदर पूर्ति मे ही व्यतीत कर दिया और अगले जन्म के लिए कुछ नहीं किया तो यह मनुष्य जीवन धारण करना ही व्यर्थ जावेगा। कवि की भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन मे ऐसा कोई सुकृत कार्य अवश्य करले जिससे उसका भावी जीवन भी सुधर जावे।

इस प्रकार छीहल कवि की कृतिया राजस्थानी काव्यो मे उल्लेखनीय कृतिया हैं। सभी कृतियां जन कल्याण की भावना से लिखी हुई हैं। इनमे शिक्षा है, उपदेश है, नीति और धर्म का पुट है तथा लौकिक एव आध्यात्मिक दोनो की कहानी प्रस्तुत की गयी है।

१. पंच सहेली गीत

नगर वर्णन—

देखा नगर सुहावणा, अधिक सुचंगा थान।
नाउ चंगेरी परगट, जन सुर लोक सुजान ॥१॥

ठाइ मिंदिर सत खिने, सो नइ लिहिया लेहु।
छीहल तन की उपमा कहत न आवइ छेहउ ॥२॥

ठाइ ठाइ सरवर पेखीया, सू सर भरे निवाण।
ठाइ कूवा बावरी, सोहइ फटक समान ॥३॥

पवन छतीसी तिहां वसइ, अति चतुराई लोक।
गुम विद्या रस आगला, जानइ परिमल लोग ॥४॥

तिहा ठइ नारी पेखीयइ, रभा केउ निहारि।
रूप कत ते आगली, अवर नहीं ससार ॥५॥

पहरि सभाया आभरण, अर दख्यण के चीर।
बहुत सहेली साथि मिलि, आई सरवर तीर ॥६॥

चोवा चदन थाल भरि, परिमल पहुप अनत।
खडह बीडी पान की, खेलहु सखी बसत ॥७॥

केइ गावइ मधुर धुनि, केइ देवहि रास।
केइ हीडोलइ हीडती, इह विधि करइ विलास ॥८॥

तिन माहि पच सहेलिया, नाचइ गावहि ना हसइ।
ना मुखि बोलइ बोल………… …………॥९॥

नयनह काजल ना दीउ, ना गलि पहिन्दो हार।
मुख तबोल न खाईया, ना कछु कीया सिंगार ॥१०॥

रूखे केस ना न्हाईया, मइले कप्पड तास।
बिलखी बइसी उनमनी, लांबे लेहि उसास ॥११॥

सूके अहर प्रवालीयां, अति कुमलाणा मुख।
तउ मइ बूझी जाइ कहु, तुम्ह कहउ केतउ दुख ॥१२॥

दीसय योवन बालिया, रूप दीपती देह ।
मोसउ कहउ विचार, जाति तुम्हरी केह ॥१३॥

तउ ऊगि सब भाखीया, मीठा बोल अपार ।
ना बहु मारी जाति की, छीहल्ल सुनहु विचार ॥१४॥

मालन अर तंबोलनी, त्रीजी छीपनि नारि ।
चउथी जाति कलालनी, पचमी सुनारि ॥१५॥

जाति कही हम तम्ह सउ, अब सुनि दुख हमार ।
तुम्ह तउ सुगना आदमी, लहउ विरासी सार ॥१६॥

मालिन की विरह व्यथा—

पहिली बोली मालनी, मुझ कू दुख अनत ।
बालइ योवन छडि कइ, चल्यु दिसाउरि कत ॥१७॥

निस दिन बहइ पवालज्यु, नयनहु नीर अपार ।
विरहउ माली दुक्ख का, सूभर भरया किनार ॥१८॥

कमल वदन कुमलाईया, सूकी सुख वनराइ ।
वाझू पीया रइ एक पिन, वरस बराबरि जाइ ॥१९॥

तन तरवर फल लग्गीया, दुइ नारिंग रस पूरि ।
सूकन लागा विरह फल, सींचन हारा दूरि ॥२०॥

मन बाडी गुण फूलडा, प्रीय नित लेता बास ।
अब इह थानकि रात दिन, पीडइ विरह उदास ॥२१॥

चपा केरी पखडी, गू थ्या नव सर हार ।
जइ इहु पहिरउ पीव विन, लागइ अग अगार ॥२२॥

मालनि अपना दुख का, विवरा कह्या विचार ।
अब तू वेदन आपनी, आखि तबोलन नार ॥२३॥

तम्बोलिन की विरह व्यथा—

दूजी कहइ तबोलनी, सुनि चतुराई बात ।
विरहइ मार्‌या पीव विन, चोली भीतरि गात ॥२४॥

हाथ मरोरउ सिर धन्यु, किस सउ कहु पोकार ।
जउती राता बालहा, करइ न हम दिस भार ॥२५॥

पान झडे सब रूंख के, वेल गई तनि सुक्कि ।
दूभरि रति बसंत की, गया पीयरा मुक्कि ॥२६॥

हीयरा भीतरि पइसि करि, विरह लगाई आगि ।
प्रीय पानी विनि नां बूझवइ, बलीसि सबली लागी ॥२७॥

तन बाली विरहउ बहइ, परीया दुक्ख असेसि ।
ए दिन दुभरि कउ भरइ, आया प्रीय परदेसि ॥२८॥

जब थी बालम बीछुड्या, नाठा सरिबरि सुख ।
छीहल मो तन विरह का, नित नवेला दुख ॥२६॥

कहुउ तंबोलनि आप दुक्ख, अब कहि छीपन एह ।
पीव चलतइ तुझसउं, विरहइ कीया छेह ॥३०॥

छीपन का विरह वर्णन—

त्रीजी छीपनि आखीया, भरि दुइ लोचन नीर ।
दूजा कोइ न जानही, मेरइ जीय की पीर ॥३१॥

तन कपडा दुक्ख कतरनी, दरजी विरहा एह ।
पूरा ब्योत न ब्योतइ, दिन दिन काटइ देह ॥३१॥

दुक्ख का तागा वाटीया, सार सुई कर लेह ।
चीनजि बधइ अवि काम करि, नान्हा बखीया देह ॥३३॥

विरहइ गोरी अतिदही, देह मजीठ सुरग ।
रस लीया अवटाइ कइ, बाकस कीया अग ॥३४॥

माऊ मरोरी निचोरि कइ, छार दिया दुख अति ।
इहु हमारे जीव कहु, मइ न करी इहु भ्रति ॥३५॥

सुख नाठा दुख सचरया, देही करि दहि छार ।
विरहइ कीया कत वनि, इम अम्ह सु उपगार ॥३६॥

कलालिन का विरह—

छीपनि कह्या विचार करि, अपना सुख दुख रोइ ।
अबहि कलालनि आखि तु, विरहइ याई सोइ ॥३७॥

चउथी दुख सरीर का, लागी कहन कलालि ।
हीयरइ प्रीयका प्रेम की, नित खटूकइ भालि ॥३८॥

मोतन भाठी ज्यु तपइ, नयन चुवइ मद वारि ।
विनही अवगुन मुझ सु, कस कर रह्या भरतार ॥३९॥

देखिइ केली तइ दई, विरह लगाई थाइ ।
वालभ उलटा हुइ रह्या, परउप छारी खाइ ॥४०॥

इस विहरइ के कारणइ, धन बहु दारु कीय ।
चित्त का चेतन ठ्राहस्या, गया पीयरा लेय जीय ॥४१॥

माता योवन फाग रिति, परम पीयारा दूरि ।
रली न पूरी जीयकी, मरउ विसूरि विसूरि ॥४२॥

हीयरा भीतरि झूर रहु, कक धणेरा सोस ।
बहरी हुआ वालहा, विहरइ किसका दोस ॥४३॥

मोसउ व्युरा विरह का, कह्या कलालन नारि ।
इहु कुछ दुख सरीर महि, सो तु आखि सुनारि ॥४४॥

सुनारिन की व्यथा—

कहइ सुनारी पचमी, अग उपना दाह ।
हू तउ बूडी विरह मइ, पाउ नाही थाह ॥४५॥

हीया अगीठी मूसि जिय, मदन सुनार अभग ।
कोयला कीया देह का, मिल्या सवेइ सुहाग ॥४६॥

टका कलिया दुख का, रेसी न देइ धीर ।
मासा मासा न मूकीया, सोच्या सब सरीर ॥४७॥

विहरइ रूप बुराइया, सूना हुआ मुझ जीव ।
किस हइ पुकारू जाइ कइ, अब घरि नाही पीव ॥४८॥

तन तोले कटउ वरी, देखी किस किस जाइ ।
विरहा कु ड सुनार ज्युउ, घडी फिराय पिराइ ॥४९॥

खोटी वेदन विरह की, मेरो हीयरो माहि ।
निसि दिन काया कलमलइ, नां सुख धूपनि छाह ॥५०॥

छीहल वयरी विरह की, घडी न पाया सुख ।
हम पचइ तुम्ह सउ कह्या, अपना अपना दुख ॥५१॥

कहिं करि पंचउ चलीयां, अपने दुख का छेह।
बाहुरि वह दूजी मिली, जबह धडूक्या मेह ॥५२॥

मुह नीली घन पूं वरि, गुनिहि चमकी वीज।
बहुत सखी के झूड भई, खेलन आइ तीज ॥५३॥

विहसी गावइ हि रहिससु, कीया सह सगार।
तब उन पच सहेलीयां, पूछी दूजी बार ॥५४॥

छीहल का पाचों स्त्रियों से पुर्नमिलन—

मइं तुम्ह आमन दूमनी, देखी थी उतवार।
अब हु देखुं विहसती, मोसउ कहउ विचार ॥५५॥

छीहल हम तउ तुम्ह सउ, कहती हइ सतभाइ।
साई आया रहससु, ए दिन सुख माहि जाइ ॥५६॥

गया वसत वियोग मइ, अर धुप काला मास।
पावस रिति पीय आवीया, पूगी मन की आस ॥५७॥

मालनि का मुख फूल ज्यउ, बहुत विगास करेइ।
प्रेम सहित गुंजार करि, पीय मधुकर सलेइ ॥५८॥

चोली खोल तबोलनी, काढ्या गात्र अपार।
रग कीया बहु प्रीयसुं, नयन मिलाई तार ॥५९॥

छीपनि करइ वधाईया, जउ सब आए दिट्ठ।
अति रंगिराती प्रीयसु, ज्यउ कापडइ मजीठ ॥६०॥

योवन बालइ लटकती, रसि कसि भरी कलालि।
हसि हसि लागइ प्रीय गलि, करि करि बहुती आलि ॥६१॥

मालनि तिलक दीपाईया, कीया सिगार अनूप।
आया पीय सुनारि का, चढ्या चवगणा रूप ॥६२॥

पी आया सुख सपज्या, पूगी सबइ जगीस।
तब वह पचइ कामिनी, लागी दयन असीस ॥६३॥

हु उ वारी तेरे बोलकु, जहिं वरणवी सुठाइ।
छीहल हम जग माहि रही, रह्या हमारा नाव ॥६४॥

धनिस मंदिर धन्न दिन, धनस पावस एह ।
धन्न वल्लभ घरि आईया, धनस वुट्टा मेह ।।६५।।

निस दिन आइ आनद मइ, विलसइ बहु विघ भोग ।
छीहल्ल पंचइ कामिनी, भाई पीय सजोग ।।६६।।

मीठे मन के भावते, कीया सरस बखाण ।
अण जाण्या मूरिख हसइ, रीझइ चतुर सुजाण ।।६७।।

सवत् पनर पचहुत्तरइ, पू निम फागुण मास ।
पच सहेली वरणवी, कवि छीहल्ल परगास ।।६८।।

।। इति पच सहेली गीत सम्पूर्ण ।।

लिख्यत परोपकाराय ।। श्री रस्तु ।।

□ □ □

गुटका सख्या ६६ । पत्र सख्या ११-१२ । शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरणजी पांडे, जयपुर ।

२. बावनी

ओंकार आकार, रहित अविगति अपरम्पर ।
अलख अजोनी सभ, सृष्टिकरता विश्वम्भर ।
घट घट अन्तर वसइ, तासु चीन्हइ नहि कोई ।
जल थलि सुरगि पयालि, जिहां देखो तिहँ सोई ।
जोगिन्द सिद्ध मुनिवर जिके, प्रबल महातप सद्धयौ ।
छीहल्ल कहइ अस पुरुष को, किण ही अन्त न लद्धयौ ।।१।।

नाद श्रवण ध्यावन्त, तजइ मृग प्राण ततख्खिण ।
इन्द्री परस गयन्द, वास अलि मरइ विचष्षण ।
रसना स्वाद विलग्गि, मीन बज्झइ देषन्ता ।
लोयण लुबुध पतग, पडइ पावक पेषन्ता ।
मृग मीन भवर कुजर पतग, ए सब विणसइ इक्क रसि ।
छीहल कहइ रे लोइया, इन्दी राषउ अप्प वसि ।।२।।

मृग वन मज्झि चरति, डरिउ पारधी पिषिख तिहि ।
जब पाछिउ पुनि चल्यो, वधिक रोपियउ फद तिहि ।
दिसि दाहिणी सु स्वान, सिंह ज्यु सनमुष धावै ।
वाम अगिनि परजलिय, तासु भय जाण न पावै ।
छीहल्ल गमण चहु दिसि नही, चित चिंता चितउ हरण ।
हा हा देव सकट परयो, तुझ बिन अवर न को सरण ।।३।।

सबल पवन उतपन्न अगिनि उडि फद दहे सब ।
ततषिण धन बरसत, तेज दावानल गौ तब ।
दिसि दाहिणी जु स्वान, पेषि जबुक को धायउ ।
जब जान्यो मृत जात, खिसि पारधी रिसायउ ।
ताणत[1] धनुष[2] गुण तुट्टिगौ, विसि ध्याइउ मुगती भई ।
छीहल न को मारवि सकै, जिहि रष्षण हारा दई ।।४।।

---

१. अनचिन्त
२. बाण

धन्य ति नर सलहिजै, जे हि परकज्जु सवारण ।
भीर सहै तन आपु, सामि सकट्ट उवारण ।
कयो धर कुल मज्झि, सभा सिगार सुलक्खण ।
विनयवत बड-चित्त, अवनि उपगार विचष्षण ।
आचार[1] सहित अति हित्त सो, धरम नेम पालै घणौ ।
पर तरुणि पेष्षि छीहल कहै, सील न षडइ आपणौ ॥५॥

अवनि अमर नहि कोई, सिद्ध साधक अरु मुनिवर ।
गण गधर्व मनुष्य, जिष्ष किन्नर असुरासुर ।
पन्नग पावक उदधि, भार तरुवर अष्टादस ।
ध्रु व[2] नषित्र ससि सुर, अन्त सब षपै काल बस ।
प्रस्ताव पिष्षि रे नर चतुर, ता लगि कीजइ ऊच कर ।
तिहु भुवन मज्झि छीहल कहइ, सदा एक कीरति अमर ॥६॥

आवति जाचक[3] पेखि, द्वार सम देहु मूढ नर ।
मिष्ट वयण बुल्लियइ, विनय कीजइ बहु आदर ।
दिन दस अवसर पेखि, वित्त विलसियै सुजस लगि ।
षिण रीती षिण भरी, रहिटी घटी सारिस लगि ।
चिरकाल दसा निहचल नही, जिमि ऊगई तिमि आथमण ।
पलटियै दसा छीहल कहइ, बहुरी बात पुच्छै[4] कवण ॥७॥

इन्दी पचिय अथ्थि, सकति जब लगि घट निर्मल ।
जरा जजीरी दूरि, षीण न हुवै आयुबल ।
तब लगि भल पण, दान-पुण्य करि लेहु विचष्षण ।
जब जम पहु चइ आइ, सबै भूलिहइ ततष्षिण ।
छीहल कहइ पावक प्रबल, जिमि घर पुर पट्टण दहइ ।
तिणि काल कूप जो खुद्दियइ, सो उद्यम किमि निरवहइ ॥८॥

ईस ललाटह मज्झि, गेह कीयौ सु निरन्तर ।
चहु दिसि सुरसरि सहित, वास तसु कीजइ अन्तर ।

---

१ आधार
२ ध्रु नव ग्रह
३ सपति बार बार
४ बूझइ

पावक प्रबल समीपि, रहइ रखवाल रयणि दिन ।
प्रतिहार बिसहर बलिष्ट, सोवइ नहि इकु छिन ।
अति जतन्न छीहल कहै, हर मस्तक हिमकर रहइ ।
पूर्व लेख चूकै नही, तऊ राहु ससि कौ ग्रहइ ॥९॥

उदरि मज्झि दस मासु, पिंड पाइयें[1] बहुत दुख ।
उर्ध होइ दुइ चरण, रयणि दिन रहइ प्रधोमुख ।
गरभ ग्रवस्था अधिक जाणि चिंता चितै चित्त ।
जो छूटो इहि बार, बहुरि करहौं निज सुकृत ।
बोलइ जु बोल सकट पडइ, बहुरि जन्म जग महिं भयौ ।
लागी जु वाउ छीहल कहइ, सबै मूढ बीसरि गयौ ॥१०॥

ऊसरि फागुण मास, मेह बरसइ घोरकरि ।
विधवा पतिव्रत तणौ, रूप जोबण ग्रानन परि ।
कवियण गुण विस्तार, नृपति अविवेकी आगे ।
सुपनन्तर की लच्छि, हाथ आवइ नहि जागे ।
करवाल कृपण कायर करह, सुन्न[2] गेह दीपक ज्यु ।
कवि छीहल अकारण एह सब, विनय जु कीज्यै नीच स्युं ॥११॥

रितु ग्रीषम रवि किरण, प्रबल ग्रांगइ निरन्तर ।
पावक सलिल समूह, मघर झिल्लउ धारा धर ।
सीतकाल सीतल तुषार, दूरन्तर टाल्यउ ।
पत्त सही दुखस्य, अधिक मित्तप्पण पाल्यउ ।
रे रे पलास छीहल कहै, धिक धिक जीवन तुझ तणौ ।
फुल्लयौ पत्त अब मूढ तजि, ए अजुत्त कीधो घणौ ॥१२॥

रीति होइ सो भरै, भरी खिण इक वै ढालै ।
राई मेर समाणि, मेर जड सहित उथाले ।
उदधि सोखि थल करै, थलहिं जल पूरि रहै अति ।
नृपति मगावइ भीख, रक कू थपै छत्रपति ।
सब विधि समर्थ भजन घडन, कवि छीहल इमि उच्चरै ।
इक निमिष माहि करता, पुरुष करण चहै सोई करै ॥१३॥

---

१ देखियै
२ सुनि मेह दीपक ज्युं

लिषा तणइ परमाणि, राम लष्वण बनवासी ।
सीय निसाचर हरी, भई द्रौपदि पुनि दासी ।
कुंती सुन बैराट गेह, सेवक होइ रहिया ।
नीर भर्यो हरिचंद, नीच घर बहु दुख सहिया ।
आपदा पडी परिग्रह तजि, भमे[1] इकेलउ नृपति नल ।
छीहल कहइ सुर नर असुर, कर्म रेष व्यापइ सकल ।।१४।।

लीन्ह कुदाली हत्थ प्रथम, षोदियउ रोस करि ।
करि रासभ आरूढ, घालि आणियउ गूरा भरि ।
देकरि लत्त प्रहार, मूढ गहि चक्क चढायो ।
पुनरपि हत्थहिं कूटि, घूप धरि अधिक सुकायो ।
दीन्ही जु अगिनि छीहल कहइ, कुंभ कहइ हउ सहिउ सब ।
पर तरुणि आइ टकराहणौ, ए दुख सालइ मोहि अब ।।१५।।

ए जु पयोहर जुगल, अबल उरि मज्झि उपन्ना ।
अति उन्नत अति कठिन, कनक घट जेम रवन्ना ।
कहि छीहल पिण इक्क, द्दष्टि देषता चतुर नर ।
धरणि पडइ मुरझाइ, पीर उपजत चित अन्तर ।
विधना विचित्र विधि चित्त करि, ता लगि कीन्हउ कृष्णमुख ।
होय स्याम वदन तिह नर तणो, जो पर हृदय देइ दुख ।।१६।।

ए ए तू द्रुमराइ, न्याइ गरुवत्तण तेरो ।
प्रथम विहगम लब्ध, आइ तह लीयो बसेरो ।
फल भुंजै रस पिये, अवर संतोषइ काया ।
दुष्ष सहै तन अप्प, करइ अवरन कू छाया ।
उपकार लगै छीहल कहइ, धनि धनि तू तरुवर सुयण ।
सचइ जिमि सपइ उदधि पर, कज्जि न आवै ते कृपण ।।१७।।

अमृत जिमि सुरसाल, चवति धुनि वदन सुहाई ।
पंषिन महि परसिद्ध, लहै सो अधिक बडाई ।
अंब वृक्ष महि बसइ, ग्रसइ निर्मल फल सोई ।
ये गुण कोकिल अग, पेषि बदहि नहि कोई ।

1. भम्यो

पापिष्ठ नीच अंजन सुती, करम सदा कमि फल सुर्गति ।
छीहल ताहि पूजइ जगत, करम तणी विपरीत मति ।।१८।।

अहनिस मज्जै मच्छ, कच्छ जल मज्झि रहै नित ।
मौन सहित बक ध्यान, रहै लवलीन इक्क चित ।
ऊदर गुफा निवास, भसम गादहो चलावइ ।
पवन अहारी सर्प, भ्रग गाडरी मुडावइ ।
इनि माहि कहउ किण पद लह्यो, कहा जोग साँचै जुगत्ति ।
छीहल कहै निष्फल सबै, भाव बिना न हुवै मुगत्ति ।।१९।।

कबहू सिर धरि छत्र, चढवि सुष्खासन आवइ ।
कबहू इकेलो भ्रमै, पाइ पाणही न पावइ ।
कबहिं अठारह भष्य, करइ भोजन मन वछित ।
कबहिं न धलु लपजइ, षुधा पीडित कलपै चित्त ।
लभै न कबहू तृण सथ्थरो, कबहि रमइ तिय भाव रसि ।
बहु भाइ छद छीहल कहइ, नर चित नच्चइ देव बसी ।।२०।।

खत्तिय रणि भज्जनो, विप्प आचार विहीणो ।
तपीयै जीति कइ अगि, रहै चित लालच खीणो ।
तीय जु अति निर्लज्ज, लज्ज तजि घरि घरि डोलइ ।
सभा माहि मुषि देखि, साषि जउ कूडी बोलइ ।
सेवक स्वामी द्रोह करि, सग रहइ न इक्क खिण ।
छीहल कहइ सो परिहरि, नृपति होइ विवेक बिण ।।२१।।

गरब न कर गुणहीन, अरे कचन के गिरवर ।
तो समीपि पाषाण, अध्यि तरुवर ते तरुवर ।
किये न अप्प समान, वृथा गुरुवत्तण तेरउ ।
मलयाचल सलहिजै, सुजस तस सगति केरउ ।
कटु तिक्त कुटिल परिमल रहित, तरु अनत जे वन थया ।
श्री खड सगि छीहल कहइ, ते समस्त चदन भया ।।२२।।

घरी घरी नृप द्वार[1], एह घडियालउ बज्जै ।
कहै पुकारि पुकारि, आउ षिणही षिण छीज्जै ।

---

१ गेहि

सपति सांस सरीर, सदा नर नाहीं निसचल ।
पुरइणि पत्र पतत बूंद जल लव जिमि चचल ।
इमि जानि जगत जातो, सकल चित चेतौ रे मूढ नर ।
ऊवरें जु तौ छीहल कहइ, दीजिइ दाहिण उच्चकर ।।२३।।

ग्यान बत सुकुलीरा, पुरुष जो हो धनहीना ।
विषम अवस्था पडइ, वयरा नही भाषं दीना ।
नीच करम नहिं करइ, रोरु जो अधिक सतावइ ।
वरि मरिबौ अग वैं, निमिष सो नाक न नावइ ।
छीहल कहै मृगपति सदा, मृग आमिष्ष भष्षन करैं ।
जो बहुत दिवस लघण परैं, तऊ न केहरि तृरा चरैं ।।२४।।

चैत मास बनराइ, फलहि फुल्लहि तरुवर सहि ।
तो[1] क्यो दोस बसन्त, पत्त होवइ करीर नहु ।
दिवस उलूक ज्यु अध, ततौ रवि को नहिं अवगुण ।
चातक नीर न लहइ, नत्थि दूषरा बरसत घण ।
दुष सुष दईव जो निर्मयौ, लिषि ललाटा सोइ लहइ ।
विषमाद न करि रे मूढ नर, कर्म दोष छीहल कहइ ।।२५।।

छाया तरुवर पिष्षि, आइ बहु बसैं विहगम ।
जब लगि फल सम्पन्न, रहैं तब लगि इक सगम ।
विहवसि परि अवथ्थ, पत्त फल झरैं निरन्तर ।
पिरा इक तथ्थ न रहइ, जाहि उडि दूर दिसतर ।
छीहल कहै द्रुम पषि जिम, महि मित्त तरा दब्ब लगि ।
पर कज्ज न कोऊ वल्ल हो, अप्प सुवारथ सयल जगि ।।२६।।

जलज बीज जल मज्झि, तरुणि[2] कप्पसि किहि काररा ।
मो मन इच्छा एह, अमरवल्ली विस्तारण ।
सुदरि इहि ससार, किया कोइ किरत न जाणइ ।
जे गुरण लघउ करोरि, सुतौ अवगुण करि मानइ ।
अबला अयानि इक सिष्य सुनि, जौ फुल्लै उल्लास भरी ।
छीहल कहै एइ कमल, तब करि हैं तुम वदन सरि ।।२७।।

---

१ ता किम
२ बरराातरपिसि

क्षीण लंक पदमिणी, सेजि नहीं रमी सुरति रस ।
अरियण असिवर धार, त्रास कीन्हें न अप्प बस ।
सुज्जस कज्ज ससार, दव्व दीनौं न सुपत्तह ।
बोरे अपणइ चहुत, चाव पिष्षियौ न चित्तह ।
कर्यौ न सुकृत के करम मन, कलि अवतरि छीहल्ल भनि ।
उद्यान मज्झि जिमि मालती, तिमि नर जनम अकियथि गिनि ।।२८।।

निरमल चित्त पवित्त, सदा अच्छै उत्तम मति ।
जो उह बसइ कुठाइ, तासु नहि भिदै कुसगति ।
तिह समीपि सठ बहुत, मिलिब जौ करइ कुलच्छण ।
सुभ सुभाव आपणौ, तऊ मुक्कइ न विचच्छण ।
श्रीषड सग जिम रयणि दिन, अहि असपि बेठ्यौ रहै ।
तद्दपि सुबास सीतल मलय, विष न होय छीहल कहै ।।२९।।

टलै न पुव्व निबद्ध, मित्त मत दीनौ भाषे ।
जब आयुबल घटै, षिनक तब कोइ न रापै ।
विनय न करि अनकाज, मूढ जन जन के आगै ।
गुरूवत्तन मम हारि, लोभ लिषमी कै लागै ।
आवै अवसर अनपार की, जेम मीचु तिम जानि धन ।
छीहल्ल कहै द्रिढ सग्रहौ, मान न मुक्कौ निब रतन ।।३०।।

ठाकुर मित्त जु जाणि, मूढ हरषइ जे चित्तह ।
निज तिय तणउ विसास, करइ जिय महि जे मित्तह ।
सरप सुनार रू पारस रस, जे प्रीति लगावहि ।
वेस्या अपणी जाणि, छयल जे छन्द उछावहि ।
बिरचत बार इन कहु नही, मूरिख नर जे रूचिया ।
छीहल्ल कहइ ससार महि, ते नर अति विगूचिया ।।३१।।

डरपइ दादुर सद्द, बाहु घालै केहरि गलि ।
बूडइ कूडइ नीर, तिरै नद जाइ अथगि जल ।
मरइ फूल कै भार, सीस धरि पर्वत टालइ ।
कपई ऊदरि देखि, पकरि धरि कुजर रालइ ।
सीदरी देखि सकै सदा, विषहर कौ बल वठ गहइ ।
छीहल सुकवि जपइ वयण, तिरिय चरित्र को नवि लहइ ।।३२।।

ढोलि कुंभ जे ग्रमी, सोइ पूरति सुरा अलि ।
कसतूरी परिहरइ, नीच सग्रहइ कचू खलि ।
कचण पीतलि तणो, जहाँ कोइ भेव न जाणै ।
तरुवर ग्रब उपारि, ग्ररड रोपे तिहि ठाणै ।
गुण छांडि निगुण जड मानियै, जस तजि ग्रपजस संचियै ।
सो थान सुकवि छीहल कहै, दूरन्तर ही बंचियै ।।३३।।

णिसि वासर जिय आस, बसै उन बूंदन केरी ।
चखु न बोरइ ग्रवर, ठाउ नदि तिथ्थ घनेरी ।
आदर विण जर सलिल, पिष्यि परिहरइ ततच्छण ।
सरवर निर्झर कूप, सीस नावइ न विचच्छण ।
छीहल्ल कहइ गल गज्जि करि, जो जल उलहरि देइ घन ।
चातक्क नीर ते परि पियै, न तो पियासौ तजै तन ।।३४।।

तरु कदली कुहकंत, कीर ऊंचौ द्रुम दिट्ठौ ।
कोमल फल तजि मूढ, जाइ नालेर बइट्ठौ ।
छुधा प्रबल तनि भइ, ग्रसन कह ठुकज दिन्नी ।
ग्रासा भइ निरास, चखु विधना हर लिन्नी ।
मति हीण पखि छीहल कहइ, सिर धुनि रोवइ भरि नयण ।
सुक जेम सु नर पछिताइ हैं, जे होइंहि सतोष विण ।।३५।।

थोरो थोरो माहिं, समय कछु सुकृति कीजइ ।
विनय सहित करि हित्त, वित्त सारै दिन दीजइ ।
जब लगि सांस सरीर, मूढ विलसहु निज हत्थहिं ।
मुवा पछै लपटी, लच्छि लगै नहिं सत्थहिं ।
छीहल कहइ बीसल नृपति, संचि कोडि उगणीस दव्वु ।
लाहो न लियौ भोगव्वि करि, ग्रतकाल गो छाडि सव्वु ।।३६।।

दरबु गाडि जिन धरहिं, धरो किछु काम न आवइ ।
विलसि न लाहो लेइ, सु तो पाछै पछतावइ ।
नर नरिंद नर भुवनि, संचि सपइ जे मूवा ।
तै वसुधा मैं बहुरि, जनमि सूकर कै हूवा ।
धनकाज ग्रधोमुष दसन सिउ, धरणि विदारहि रयणि दिन ।
छीहल्ल कहइ सोचत फिरै, कहू न पावहिं पुण्य विण ।।३७।।

धन ज्यु ललाटहिं लिख्यौ, तुच्छ बहुतौ विधि अच्छर ।
सो न मिटै सुनि मूढ झंप दीजइ रयणायर ।
रचि करि कोडि उपाय, सकल ससारहिं धावइ ।
पौरुष जाणि विनाणि किये कछु अधिक न पावइ ।
छीहल्ल कहै जइ जहं फिरइ कर्म बंध तहं तह लहै ।
पिख्यौ यह कूप समुद्र महं घट प्रमाणि जल सग्रहै ।।३८।।

नीच सरिस नहीं प्रीति, बैर कीजइ न प्रवल करि ।
मध्य भाइ आछियै, सग छांडिय दूरतरि ।
हित अथवा अनहित, चित चितवै बुरि मति ।
निसचय सुख की हानि, दुख्ख उपजै दहू गति ।
छीहल कहै पिख्खहु प्रगट, कर अंगारहिं कोउ धरै ।
दाझै निवद्ध तातो लियै, सीरो कारो कर करै ।।३९।।

पत्त सुतौ अति तुच्छ काज नहिं आवै कत्थहू ।
फल वाकस रसहीण, छांह निदीय कियथ्यहू ।
साषा कटक कोटि, लेइ पषी न बसेरउ ।
छीहल गुणियन कहइ, कौन गुण वरणौ तेरउ ।
र रे बबुलनि लच्छण निलज, पापी परहु न उपगरै ।
जो देहि फूल फल अवर तरू, तिनहु की रख्या करै ।।४०।।

फिर चउरासी लख्ख, जोणि लद्धो मानुष जम ।
सो निसफल न गंवाइ, मूढ कीजइ सुकृत कम ।
कनक कचोली मज्झि मूढ भरि छारिन नाखिसि ।
कल्पवृक्ष उख्खेलि, मूढ एण्डम रख्खिसि ।
वायस्सि उडावण कारणौ, चिंतामणि क्यौं रालियै ।
छीहल कहै पीयूष सौं, नाऊ पांव पखालियै ।।४१।।

बसुधा विश्वामित्र, सरिस जे तपिय गरिट्ठा ।
सपति ते भोगवै, रहै बनघडहि बैठा ।
लोभ मोह परिहरै, किया इन्द्री पचे बस ।
तरुणि वदन निरखत, तेइ पुनि परइ काम रस ।
आहार करहिं षटरस सहित, पचामृत जुगति सिम ।
छीहल्ल कहै तिहि पुरुष कौ, इन्द्री निग्रह होइ किम ।।४२।।

भ्रमर इक्क निसि भ्रमै, परौ पकज के सपुटि ।
मन महि मडै भास, रयणि खिण माहि जाइ घटि ।
करि हैं जलज विकास, सूर परभाति उदय जब ।
मधुकर मन चितवै, मुक्त ह्वै हैं बन्धन तब ।
छीहल द्विरद ताही समय, सर सपत्तउ दइव बसि ।
अलि कमल पत्र पुडइणि सहित, निमिष माहि सो गयो ग्रसि ।।४३।।

मग्गि चलहु कुलवहि, जेणि विकसैं मुख[1] सज्जन ।
होइ न जस की हाणि, पिष्खि करि हसइ न दुज्जन ।
जप तप सजम नेम, धर्म आचार न मुक्कइ ।
परमष्वर निज एह, क्रिया आपनी न चुक्कइ ।
पर तरुणि पाप अपवाद परि दूरन्तर ही परिहरउ ।
मन वचन काय छीहल कहैं, पर उपकारहि चित धरउ ।।४४।।

जब लगि तरुवर राइ, फुल्लि करि फलिय विवह परि ।
तब लगि कटक कोटि, रहै बहु दिसा वेढि करि ।
पषी आसा लुद्ध, त्रिष्ष तक्कवि जो आवइ ।
फल पुनि हथ्थ न चढै, छाह विश्राम न पावइ ।
छीहल्ल कहै हो अब सुणि, यह अवगुण सपति थियै ।
तो सदा काल निरफल फलो, जिहि सुख छाह बिलवियै ।।४५।।

रे रे दीपक नीच, लष्ष अवगुण तुअ अगह ।
पत्तहि करइ कुपत्त, प्रकृति सुभाव मलिन रगह ।
बत्तिय गुण निरदहण, तैल सनेह घटावन ।
जिहि थानक तू होइ, तिहा कालिमा लगावन ।
छीहल्ल कहै वासर समय, मान न लम्भै इक्क चुष ।
जो सहस किरण रवि अथ्थवइ, तो जग जोवै तुज्झ मुष ।।४६।।

लछण ससि कह दीन्ह, कीन्ह अति षार उदधि जल ।
सफल एरण्ड धतूर नागवल्ली सो नीफल ।
परिमल विणु सोवन्न, बास कस्तूरी विविध परि ।
गुणियन सपत्ति हीण, बहुत लच्छीय कृपण घरि ।

---

१ मन

तिय तरुण वयस[1] विधवा पलउ, सज्जन सरिस वियोग दुष ।
इतनै ठाम छीहल्ल कहइ, कियां विवेक न विषि पुरुष ।।४७।।

ओछो सज्जन प्रीति, अवर पुनि छाया बद्दल ।
दासी सरिस सनेहु, अवर बरषइ जु औस जल ।
सरवरि छीलरि पानि, अगिनि तृण केरउ तप्पन ।
विडह सरिस भड बाउ, पिष्षि[2] गब्बहु जिनि अप्पन ।
का पुरुष बोल वेस्याविसन, एता अंत न निरवहै ।
विस्वास करइ ते होष मति, साचि बयण छीहल कहै ।।४८।।

ससि उगवनि जो कवल मज्झि मकरंद पियो जिहिं ।
विकसित चित्त उल्हास, वास केतकी लई तिहिं ।
कुंभस्थल गय मय प्रवाहु, ग्रस्यौ कदली वन ।
सरस सुगन्ध जु पुहुप, विहसि[3] पुज्जइय रली मन ।
छीहल्ल विविहु वणराइ, जिहि रितु मानो अप्पन समैं ।
सो भ्रमर अबहि विधि पुरुष बसि, अक्क करीरहि दिन गमैं ।।४९।।

षल दुज्जन मुष विवर, मज्झि निवसहि जे कुवचन ।
तेई सरप समान, होइ लागहिं घटि सज्जन ।
सोषइ सकल सरीर, लहरि आवइ जोवतहु ।
मूली गद गाकडी, गिनै नहिं तस न मतहु ।
उपचार इक्क छीहल कहै, सुणिय विचष्षण उत्तमा ।
विष दोष निवारण कारणैं, निज औषध साधउ षिमा ।।५०।।

समय जु सीत बितीत, वृथा वस्तर बहु पाए ।
षीण षुधा घटि गई, वृथा पचामृत षाए ।
वृथा सुरति संभोग, रयणि के अंत जु कीजइ ।
वृथा सलिल सीतल सु तासु, बिण तृषा जु पीजइ ।
चातक कपोत जलचर मुए, वृथा मेघ बहु जल दए ।
सो दान वृथा छीहल कहै, जो दीजइ अवसर गए ।।५१।।

---

१ वेस
२ जन जे आपब
३ विलसि

हइ धनवंत आलसी, ताहि उद्यमी पयम्पइ ।
क्रोधवंत अति चपल, तऊ थिरता जग जम्पइ ।
पत्त कुपत्त न लखइ, कहइ तसु इच्छाचारी ।
होइ बोलण असमथ्थ, ताहि गुरु वत्तन भारी ।
श्रीवन्त लच्छ अवगुण सहित, ताहि लोग करि गुण ठवइ ।
छीहल्ल कहै ससार महि, सपति को सहु को नवइ ।।५२।।

चउरासी अग्गला, सइ जु पनरह सवच्छर ।
सुकुल पच्छ अष्टमी, मास कातिग गुरुवासर ।
हृदय उपन्नी बुद्धि, नाम श्री गुरु को लीन्हो ।
सारद तणइ पसाइ, कवित सपूरण कीन्हो ।
नाल्हिग बस सिनाथू सुतन, अगरवाल कुल प्रगट रवि ।
बावन्नी वसुधा विस्तरी, कवि ककण छीहल्ल कवि ।।५३।।

इति छीहल कृत बावनी सपूर्ण समाप्त । सवत १७१६ लिखित पाडे वीरू लिख्यापित व्यास हरिराम महला मध्ये । राज श्री स्योर्वसिंघ जी राज्ये सवत १७१६ का वर्षे मिती वैसाख सुदी ५ शनिसरवार ।। शुभ भवतु ।।[1]

□□□

---

१ शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर लूणकरण जी पांडे जयपुर गुटका सख्या १४० ।

३. पंथी गीत

इक पंथी पथ चलतो, बन सिंहनि माहि पहुतो ।
भूलो ऊबट दह दिसि धावै, वह मारग कहियन पावै ।
पावै न मारग विषम बन मैं, फिरै भ्रमि भटकत हो ।
देखियो तहां सामहौं आवत, गरुव गज मयमत हो ।
सो रौद्र रूप प्रचंड सुंडा, दड फेरै रिस भर्यो ।
भयभीत होइ कंपिया लागो, पथिक चित्त अंतरि डर्यो ॥१॥

ता देखि सु पंथी भागो, वाकी पूठिहि कुंजर लागो ।
जीव कै डरि आतुर धायो, आगै कूप हुतो त्रिण छायो ।
त्रिण छयो कूप जुहु तो आगै, बिचि वेलि छवि रह्यो ।
तिहि माहि पथिक पड्यो अजानत, भेद भौंदू ना लह्यो ।
वहि गही अवलंबि वाकारणि, और कछु न पाइयो ।
कूचडो एक सरकनो केरो, पडत हाथें आइयो ॥२॥

तब सरकन दिढ करि गहियो, झूलत दारुण दुख सहियो ।
सिर ऊपरि गदो गयदा, दिसि च्यार्यो चारि फुणिंदो ।
चहु दिसि हि चारि फुणिंद न्योली, बधे करि बैठे जहां ।
तलि मुख पसारि विरह्यो अजिगर, ग्रसन कै कारणि तहां ।
सित असित द्वै देखिया मूषक, जड खणै सरकन तणी ।
संकट पड्यो अब नहि उबरण, करै चिंता चित्ते घणी ॥३॥

कुवा ढिग इक विरख बडे रो, तहां छातो लम्बो महुके रो ।
नहि हसती हलाई डाली, मोखी अगनित उडी विसाली ।
मोखी विसाली उडिवि अगनित, लगि उडी वैहि नर तणे ।
उपसर्ग अणि करै घणैरी, तास को संख्या गिणै ।
वहि समै मधुकण अहर ऊपरि, पडत रस रसना लियो ।
या बिन्दु कै सुखि लागो लोभो, सबै दुख वीसरि गयो ॥४॥

मधु बिन्दु जु सुख ससारो, दुख बरणत लहु बनयारो ।
जीव जाणों पथिक समानो, अग्यान निवड उद्यानो ।
उद्यान घन अग्यान गिनिजै, जम भयानक कुजरो ।
भव अंध कूपरु चारो गति, अहि मखिक व्याधि निरतरो ।
अजिगर सु एहु निगोद बोयम, भखत जगत न धापये ।
द्वै पक्ष उज्जजल किसन मूषक, आयु खिण खिण का पये ।।५।।

ससार को यहु व्यवहारो, चित चेत हु क्यों न गवारो ।
मोह निद्रा में जे सूता, ते प्राणी अति बिगूता ।
प्राणी विगूता बहुत ते जिनि, परम ब्रह्म विसारीयौ ।
भ्रमि भूलि इद्री तणै रसिनर, जनम वृथा गवाइयौ ।
बहुकाल जाना जोनि दुख, दीरघ सह्या छीहल कहै ।
करि धर्म जिन भाषित जुगति स्यौ, त्यौं मुकति पदवी लहै ।।६।।

।। इति पथी गीत समाप्ता ।।

□ □ □

४. वेलि गीत

रे मन काहे कू भूलि रहे विषया बन भारी।
इह ममता मैं भूलि रहे मति कुण[1] तुहारी।
मति कुण तुहारी देखी बिचारी, अति अधिक दुख पावो।
विण[2] इक मृग तिसना जल देखत, बहुडि न प्यास बुझावो।
ग्रह सरीर सपति सुत बधो, एतै फिरि फिरि आया।
श्री जिणवर की सेव न कीधी, रे मन मूरिख मवाणा ॥१॥

बहु जूणी मैं भ्रमता माणस जन्म जु पायौ।
है[3] देवन कू दुर्लभ सो कत वादि गवायौ।
कत वादि गवायो मुढ मुडाले, काहे पाव परवाले।
काग उडावणि कारिणि कर थे, च्यतामणि काइ राले।
इकु जिनवर सेव बिना सब झूठा, ज्यो सुपना की माया।
वृथा[4] जन्म खोय माणस को, बहु जूणी भ्रमि आया ॥२॥

उतिम धर्म्म है जीव दया, सो दिढ़ करि गहिए।
अरहंत ध्यानु धरिज्यो सत, सजमस्यो रहिये।
रहिये सजमस्यो परधन पर रमणी पर निंदा पर हरिये।
पर उपगार सार है प्राणी, बहुत जतन स्यौं करिये।
जब लग हस अछित काया मै, कुछ सुकृत उपावो भाइ।
अति कालि तुहि मरती बेला, हो हो धर्म्म सहाइ ॥३॥

कलि विष कोट विणासै जिनबर नाम जु लीया।
जे घट निर्मल नाही, का तपु तीरथ कीया।
का तप तीरथ कीया, जे पर द्रोह न छाडै।
लपट इंद्री लघु मिथ्या भ्रमु, जनमु आपणो भांडै।
छीहल कहै सुणौ मन बौरे, सीख सीयाणी करिये।
चितवत परम ब्रह्म कै[5] ताई, भव सायर कूं तिरिये ॥४॥

॥ इति वेलि गीत समाप्त ॥

□ □ □

---

१ कवण (ख प्रति) २ जिमु मृग (ख प्रति)
३. हय (ख प्रति) ४. वृथा न खोइ जनम माणस कउ (ख प्रति)
५ ब्रह्म स्यो रहिये जिम भव दुतर तिरिये (ख प्रति)

५. वैराग्य गीत

ऊदर उदक में दश मास रह्यौ, पखिवि घोमुखि बहु संकटु सह्यौ ।
कहु सहिउ सकटु उदर अंतरि, चितवै चिंता घणी ।
ऊबरो अबकी बार जेह्यौ, भगति करिस्यौं जिण तणी ।
ए बोल सकट पडै बोलै, बहुडी जनि जामण भयो ।
संसार का जम भूवालि लागो, मूढ तब वीसरि गयो ।।१।।

बालक विकहू अचेत······· भखि अभखि रण कछु अतरु लहै ।
लहै ना भखि अभखि अंतरु, लाल मुखि अरिल चुवै ।
पडइ लोटै धरणि उपरु, रोइ करि अमृत पिवइ ।
तनु मूत विष्टा रहै बोध्यौ, सुकृत ना कायौ कियो ।
वीसरयो जिन भक्ति प्राणी, बाल पणौं यौं हा गयो ।।२।।

जोवनि मातो नर बहु दिशि भवै, परधन परतीय ऊपरि मनु रचै ।
रचै परधनु देखि परतीय, चित्त ठाइए राखए ।
छाडै अनीफल सेव जिनकी विषय विष फल भाखए ।
काम माया मोह व्याध्यो प्रमत हूम बिसार ।
पूजइ न जिणवर स्वामि वकरो, अविरथा जोबन गालए ।।३।।

जरा बुढापा वैरी आइयौ सुधि बुधि नाठी तब पछिताइयौ ।
पछिताइयो तव सुद्धि नाठी, सयण[1] जगतु न बूझए ।
जियन कारणि करै लालच नयन जगत्त न सूझए ।
मनु[2] कहइ छीहल सुणहि रे मन भरमि भूलो काइ फिरै ।
करि सेव जिणवर मति सेती, जो भव समुद दूतरु तिरै ।।४।।

गुटका सख्या ६५, पाटोदी का मन्दिर जयपुर ।

□ □ □

---

१ श्रवण सबद न बूझए ।

२ जन कहइ छीहल सुणो रे नर भ्रमि भूलि काई फिरै ।
करि भगति जिनकी कुगति स्यो स्यो मुकति लीलइ वर्वो ।।४।।

६. गीत

राग सोरठा

संसार छार विकार परहरि, सुमरि श्री जिण भाण।
रे जीव जगत सुपनो जाणि ॥१॥

एक रक सारो सहर जाच्यो, सुतो द्रुम तलि आणि।
आणिक बड भूपाल पोढ्यो, छत्र धारी सोक।
खवासी विजणा बहालि ढोले, सेक रही कहि जोडि।
एक प्राणि रभा पाव चुर्व, बहो विधि भावे भेंट।
ए ताही मै जागि तो ठीकरो सिर हेठि।
रे जीव जगत सुपनो जाण ॥२॥

एक बाझ कै घरि लुवर धागा, जाणिक जनम्यो बाल।
बुलाइ पण्डित बुझै जोशी होसी वह भूपाल।
मेरो पुत्र कुमाइसी त्रिया बहुत बधी भास।
ए ताही मैं जाणि देखे तो नाखिया रानिसास।
रे जीव जगत सुपनो जाण ॥३॥

एक निरधन जानै हुवो धनवत सो भी गमी पूरि।
अर्थ दर्व बहुभर्या भण्डा बधु निधि बाधी भास।
एता मे ही जागि देखे नहीं कोडी पासि।
रे जीव जगत सुपनो जाण ॥४॥

एक मूरिख जानै हूवो पण्डित मुखा चारयो वेद।
नाग आगम सबही सूझयो तीन भवन तन मोखि।
एता मे ही जागि देखे तो नहीं आखिर रेव।
रे जीव जगत सुपनो जाण ॥५॥

संसार सुपनो सर्व जाण्यो जाण्या कछू न होइ।
कहै छीहल सुमरि जीवडा जिण भज्या भलो होइ।[1]
रे जीव जगत सुपनो जाण ॥६॥

□□□

---

१ गुटका संख्या ८, शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधान जयपुर।

३

चतुरुमल

१६ वीं शताब्दि के अन्तिम चरण मे होने वाले जितने हिन्दी जैन कवि अल्प ज्ञात हैं उनमें चतुरुमल अथवा चतुरु कवि भी है। राजस्थान के जैन ग्रथागारों मे अभी तक ऐसे सैकड़ो कवि पोथियो मे बन्द हैं जिन्होने हिन्दी भाषा मे कितनी ही सुन्दर रचनाए लिखी थी और अपने युग मे प्रसिद्धि प्राप्त की थी। लेकिन समय के अन्तराल ने ऐसे कवियो को पर्दे के पीछे धकेल दिया और फिर वे सामने आ ही नही सके।

कुछ बडे कवि तो फिर भी प्रकाश मे आ गये और उनका अध्ययन होने लगा लेकिन कितने ही कवि जिन्होने लघु रचनाए लिखी, पद एव सुभाषित लिखे तथा पुराणो के आधार पर चरित व रास लिखे, बावनी व बारहमासा लिखे, ऐसे पचासो कवि अभी तक भी गुटको मे बन्द हैं और उन्होने हिन्दी की जो अमूल्य सेवाए की थी वे अभी तक हमारे से ओझल हैं।

जैन कवियो के हिन्दी मे केवल चरित एव रास सज्ञक प्रबन्ध काव्य ही नही लिखे किन्तु साहित्य के विविध रूपो मे अपनी कृतियो को प्रस्तुत करके हिन्दी के प्रचार प्रसार मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होने स्तोत्र, पाठ, सग्रह, कथा, रासो, रास, पूजा, मगल, जयमाल, प्रश्नोत्तरी, मत्र, अष्टक, सार, समुच्चय, वर्णन, सुभाषित, चौपई, शुभमालिका, निशाणी, जकड़ी, व्याहलो, बधावा, विनती, पत्री, आरती, बोल, चरचा, विचार, बात, गीत, लीला, चरित्र, छद, छप्पय, भावना, विनोद, काव्य, नाटक, प्रशस्ति, धमाल, चौढालिया, चोमासिया, बारामासा, बटोई, वेलि, हिडोलणा, चूनडी, सज्झाय, बाराखडी, भक्ति, वन्दना, पच्चीसी, बत्तीसी, पचासा, बावनी, सतसई, सामायिक, सहस्रनाम, नामावली, गुरुवावली, स्तवन, सबोधन, एव मोडवो सज्ञक रचनायें निबद्ध करके अपने विशाल ज्ञान का परिचय दिया। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दो मे इन विविध साहित्य रूपो मे से किसका कब प्रारम्भ हुआ और किस प्रकार विकास और विस्तार हुआ यह

शोध के लिए रोचक विषय है। इन सब की बहुमूल्य सामग्री देश के जैन ग्रन्थागारों में उपलब्ध होती हैं।[1]

लेकिन साहित्य के उक्त विविध रूपों के अतिरिक्त अभी तक और भी बीसों रूप हैं जिनकी खोज एवं शोध आवश्यक है। अभी हमे साहित्य का एक रूप "उरगानो" प्राप्त हुआ है। जिसके रचयिता हैं कविवर चतुरुमल अथवा चतुर।

कवि परिचय

चतुरुमल १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के कवि थे। यद्यपि इनकी अभी तक अधिक रचनाए उपलब्ध नही हो सकी हैं लेकिन फिर भी उपलब्ध कृतियों के आधार पर कवि श्रीमाल जाति के श्रावक थे। दि० जैन धर्मानुयायी थे तथा गोपाचल ग्वालियर के रहने वाले थे।[2] कवि के पिता का नाम जसवत था।[3] अपने पिता के वे इकलौते पुत्र थे। कवि ने अपने परिचय मे लिखा है कि जन्म लेते ही उसका नाम चतुरु रख दिया गया। कवि की शिक्षा दीक्षा कहा तक हुई इसकी तो विशेष सूचना प्राप्त नही है किन्तु नेमिपुराण सबसे अधिक प्रिय था और उसी के आधार पर उसने 'नेमीश्वर का उरगानो' काव्य की रचना की थी। क्योंकि उसने अनेक पुराणो को सुना था तथा स्वाध्याय की थी लेकिन हरिवंश पुराण मे उसका सबसे अधिक आकर्षण हुआ। उस समय वहा चवल पण्डित रहते थे। वे साहसी एव धैर्यवान थे।[4] उन्ही के पास कवि ने पुराणो का अध्ययन किया था। और उसी अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत कृति की रचना की थी।

रचनाएँ

कवि ने हिन्दी मे कब से लिखना प्रारम्भ किया इसकी तो अभी खोज होना शेष है लेकिन सवत् १५६९ मे उसने गोपाचल गढ मे आकर के गीतों की रचना

---

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची—भाग चतुर्थ पृ० ४।

२ मवि देसु सुख सयल निधान, गढु गोपाचलु उत्तिम थानु ॥४४॥

३ श्रावगु सिरमलु नरु जसवत निहचै जिय धर्म धरंत।
चउ चल नभवि संवती, पुत्र एकु ताके घर भयो।
जनमत नाम चतुरु तिनी लियो, जैनधर्म चिहु जीवह धरी ॥४३॥

४ सुनि पुरानु हरिवंस गम्हीर, पंडित चवलु जु साहस धरि।
तिनिसु तरया निधु रचि कियौ, कलि केवलि जो त्रिभुवन राव ॥२॥

प्रारम्भ की थी।[1] अभी तक हमे कवि के चार गीत उपलब्ध हो सके हैं और चारों ही एक गुटके मे सग्रहीत हैं।

कवि की सबसे बडी रचना "नेमीश्वर की उरगनो" है। इस को कवि ने ग्वालियर में सवत् १५७१ मे मावबा बुदी पचमी सोमवार को समाप्त की थी। उस दिन रेवती नक्षत्र था।[2] इसमे ४५ पद्य हैं। तथा नेमिनाथ एवं राजुल के विवाह की घटना का प्रमुखत वर्णन है।

उक्त रचनाओ के अतिरिक्त कवि ने और कौन कौनसी कृतियां निबद्ध की इसका अभी पता नहीं चल पाया है लेकिन यदि मध्य प्रदेश के शास्त्र भण्डारो मे खोज की जावे तो सभवत कवि की और भी रचनायें उपलब्ध हो सकती हैं।

कवि ने ग्वालियर के तोमर शासक महाराजा मानसिंह के शासन का अवश्य उल्लेख किया है तथा ग्वालियर को स्वर्ण लका जैसा बतलाया है। महाराजा मानसिंह की उस समय चारों ओर कीर्ति फैली हुई थी तथा अपनी भुजाओ के बल से वह जग विख्यात हो चुका था। ग्वालियर मे उस समय जैन धर्म का प्रभाव चारो ओर व्याप्त था। श्रावकगण अपने षट्कर्मों का पालन करते थे तथा उनमे धर्म के प्रति अपार श्रद्धा थी।

कवि के कुछ समय पूर्व ही अपभ्रंश के महाकवि रइधू हो चुके थे जिन्होने अपभ्रंश में कितने ही विशालकाय काव्यो की रचना की थी। रइधू ने जिस प्रकार ग्वालियर का, वहा के श्रावको का, तोमर वशी राजाओ का वर्णन किया है लगता है ग्वालियर दुर्ग का वही ठाट बाट कवि चतुरुमल के समय मे भी व्याप्त था। लेकिन चतुरु ने न रइधू का नामोल्लेख किया और न नगर के साहित्यिक वातावरण का ही परिचय दिया।

कवि के जिन रचनाओ की अब तक उपलब्धि हुई है उनका परिचय निम्न प्रकार है—

१ गीत—(ना जानो हो को को पैरे ढीलरीया कत जाई)

---

१ चतुरु श्रीमाल वासुदेव वधी। गति गारि की आइ कीयो गढ़ नर संवत् १५६६ को। गुटका - शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर बडा तेरहपथियो का, जयपुर। वेष्टन सख्या २४८७।

२. सवतु पन्द्रहसै वो गर्न, गुन गुनुहत्तरि ता ऊपरि भवे।
भादौ वदि तिथि पचमी वार, सोम न खित्त, रेवती मास।

यह लघु गीत है जो पद रूप में है। जिसमें मानव को भगवान की पूजा आदि करके निर्वाण मार्ग पर बढ़ते जाने को कहा गया है। पद की अन्तिम पंक्ति में "संसारह श्रावग कुलि साह ममई चतुश्रावगु श्रीमारु" कह कर अपना परिचय दिया है।

दूसरा गीत—इस गीत का शीर्षक है 'वाडी के गढवार की'। यह भी आध्यात्मिक पद है जिसमे दशधर्म को जीवन में उतारने तथा सातो व्यसनो को त्यागने की प्रेरणा दी गई है। पद का अन्तिम चरण इस प्रकार है—

"श्रावग सुणहु विचारु, चतुरु यो गावहिये"

तीसरा गीत—इस गीत का शीर्षक है "आईसि वावा वारी कै जईयौ" यह भी उपदेशात्मक पद है जिसमे श्रावक को मानव जीवन को सफल बनाने का अनुरोध किया गया है। कवि ने पद के अन्त मे "भनई चतुरु श्रीमारु" से अपने नाम का उल्लेख किया है।

४ क्रोध गीत—यह भी लघु गीत है जिसमे क्रोध, मान, माया और लोभ की निन्दा करके उन्हे छोडने का उपदेश दिया गया है। इसमे चार अन्तरे हैं। मान कषाय का पद निम्न प्रकार है—

मानु न कीजै जोईवरा, तिसु मानहि हो मानहि जीवरा दुख सहे।
अप्पु सराहे हो भलो, पुणि परु की हो परु की णित करई।
परु करई निंद्रा नित प्रानी, इसोइ मन गरवै खरौ।
हउ रूप चतुरु सुजानु सुबरु, ईसोप भनौ मद भरै।
अहमेव करि करि कर्म्म बधो, लाख चौरासी महि फिरै।
ईम जानि जियरा मानु परिहरि, मानु बहु दुखह करो॥२॥

५ नेमीश्वर का उरगानो—प्रस्तुत कृति कवि की सबसे बडी कृति है। अब तक काव्य के जितने भी नाम आये हैं उनमें 'उरगानो' संज्ञक रचना प्रथम बार प्राप्त हुई है। 'उरगानो' का अर्थ स्वय कवि ने 'गुन विस्तरो' अर्थात् गुणो को विस्तार से कहने वाले काव्य को उरगानो कहा है। इसमे नेमिनाथ के जीवन की विवाह के लिए तोरण द्वार को छोडकर वैराग्य धारण करने की घटना का वर्णन किया गया है। उरगानो की कथा का सक्षिप्त सार निम्न प्रकार है—

मगलाचरण के पश्चात् उरगानो नारायण श्रीकृष्ण के पराक्रम की प्रशसा से प्रारम्भ होता है जिसमे कहा गया है कि द्वारिका मे ५६ कोटि यादव निवास करते थे जो सब प्रकार से सुखी एव सम्पन्न थे। नारायण श्रीकृष्ण ने जरासघ पर

विजय प्राप्त करके शखनाद के साथ द्वारिका पहुंचे । एक दिन पूरी राज्य सभा जुड़ी हुई थी । विविध खेल हो रहे थे । राजा एवं रानी दोनों ही प्रसन्न थे । उसी समय नेमिकुमार आए । सभी ने उनका आरती उतार कर स्वागत किया । नारायण श्रीकृष्ण ने सभी सभासदों को नेमिनाथ का परिचय दिया तथा कहा कि वर्तमान समय में नेमिनाथ से बढ़कर कोई साहसी एवं धैर्यवान है । बलभद्र ने नेमिनाथ के बारे मे और भी जानना चाहा । श्रीकृष्ण जी ने नेमिनाथ का चित्र लिया तथा राजा उग्रसेन के पास गये और उनसे नेमिनाथ के लिये राजुल को माग लिया । उन्होंने कहा कि हम सब यादव नेमिनाथ की बारात मे आयेंगे । उग्रसेन ने अत्यधिक प्रसन्न होकर राजुल से नेमिनाथ के विवाह की स्वीकृति दे दी । लेकिन साथ मे उन्होने चुपचाप ही कुछ पशुओ को एकत्रित करने के लिए कह दिया ।

कुछ समय के पश्चात् नेमिनाथ बारात लेकर वहां पहुचे । उन्होंने वहा चारों ओर देखा और पशुओ को एकत्रित करने का कारण जानना चाहा । लेकिन जब उन्हे मालूम पड़ा कि ये सब बरातियो के लिए आये हैं तो उन्हे एकदम वैराग्य हो गया और विवाह ककण तोडकर तथा रथ को छोडकर गिरनार पर्वत पर जा चढे । नेमिनाथ के वैराग्य से राजुल के माता पिता एवं परिजनो सबको दु.ख हुआ और वे विलाप करने लगे । जब राजुल को उनके वैराग्य लेने का पता चला तो वह मूर्छित हो गई । वह कभी उठती कभी बैठती और कभी चिल्लाती । वह अपने पिता के पास जाकर रुदन करने लगी । पिता ने सारा दोष श्रीकृष्ण जी पर डाल दिया । लेकिन उसने राजुल से यह भी कहा कि उसका विवाह किसी दूसरे राजकुमार से कर दिया जावेगा जो नेमि के समान ही रूपवान एवं धैर्यवान होगा । तथा विद्याओ का आगार होगा । राजुल को पिता के शब्द सुनकर अत्यधिक दु ख हुआ । और नेमिनाथ के अतिरिक्त दूसरे किसी से भी बात नही करने के लिए कहा ।

राजुल भी नेमि के पीछे-पीछे शिखर पर जा चढी और नेमि से ही उसे छोडकर चले आने का कारण जानना चाहा । नेमिनाथ ने स्वय के लिए सयम लेने की बात कही तथा राज्य, हाथी, घोडा एव अन्य सभी परिग्रह छोडने की बात कही । लेकिन उन्होने राजुल से वापिस घर जाकर विवाह करने के लिए कहा क्योंकि तपस्वी जीवन अत्यधिक कठिन जीवन है । इसमे साथ-साथ रहना परित्याज्य है । राजुल ने नेमि को छोडकर घर लौटने से इन्कार कर दिया और कहा कि चाहे उसके प्राण ही क्यों न चले जायें वह तो उन्ही के चरणो मे रहेगी । घर जाकर क्या करेगी । इसके बाद राजुल ने दो-दो महिनो को लेकर बारह महिनों मे होने वाले ऋतु जन्य सकट का वर्णन किया तथा कहा कि ऐसे दिन में उनको छोडकर कैसे जा सकती हैं । वह तो उनही की सेवा करेगी । राजुल ने कहा सावन भादो में

तो घनघोर वर्षा होगी। बिजली चमकेगी तथा मयूर एवं पपीहा की रट लगेगी। ऐसे दिनों में वह नेमि को छोड़कर कैसे जावेगी। आसोज एव कार्तिक मास में शरद ऋतु होगी। सरोवर एव नदियों में स्वच्छ जल भरा होगा। आकाश मे चन्द्रमा भी निर्मल हो जावेगा। चारो ओर गीत एव नृत्य होगे ऐसी ऋतु मे नेमि बिना वह कैसे रह सकेगी।

मगसिर एव पोष मे खूब सर्दी पडेगी। शरीर मे काम रूपी अग्नि जलेगी। घर घर मे सभी मस्ती मे रहेगे लेकिन नेमि के बिना वह किस घर में रहेगी और उसका हृदय पत्ते के समान कपित होता रहेगा। एक ओर काली रात्रि फिर बर्फ का गिरना। लेकिन उसका मन तो पिया के बिना ही तरसता रहेगा।

अघन पुषु अति सीत अपारु, जादौ विघु व्यापे ससारु।
काम अगिनि बहु पर जलु, घर घर सुख करै सब कोई।
तुम बिनु हमहि कहा घर होई, हिरदौ कपे पात ज्यो।
निसि अध्यारी परतु तुसारु, काम लहरि अति होइ अपार।
यहु मनु तरसै पीउ बिना, सबु ससार करै अति भोग।
राजल रटै करै पीय सोगु, नेमि कु वर जिन वन्दिहो ॥३०॥

माघ और फाल्गुण ऋतु मे तो बसन्त की बहार रहेगी। सभी बसन्त का आनन्द लेंगे। कामनिया अपने प्रियतम के साथ विलास करेंगी। वे अपने अगो मे चन्दन का लेप करेंगी तथा माथे पर तिलक भी करेंगी। घर घर वन्दनवार होगी। राजुल भी ऐसी ऋतु मे अपने पिया के साथ परिहास करना चाहती है तथा दिन मे अपने कत की सेवा करना चाहेगी।

चैत्र और वैशाख मे सभी वनस्पतियां खिल जावेंगी। नन्दन वन के सभी पुष्प भी खिले होगे। भौरे फलो का रस पीते होगे। वन में कोयल कुहु कुहु के प्रिय शब्द सुनाई देगी। विरहिणी स्त्रिया अपने प्रिय के बिना तडफती रहेगी लेकिन वह स्वय बिना नेमि के क्या करेगी।

इसी तरह जेठ और आषाढ मे गर्मी खूब पडेगी। सूर्य भी तपेगा। कुछ लोग चन्दन लगा कर शरीर को शीतल करेंगे। लू चलेगी। लेकिन उसे तो प्रिय के बिना और भी ऊष्णता सतावेगी। इसलिए वह रात्रि दिन नेमि पिया नाम की माला जप कर उनके शीतल वचनों को सुनती रहेगी।

इस प्रकार राजुल बारह महिनो के विरह दु ख को नेमि के सामने रखती है और चाहती है कि विवाह न किया तो न सही किन्तु वह उनके चरणो मे रहकर

ही उनकी सेवा करती रहे । यह कह कर वह रोने लगी और उसकी आंखों से अश्रुधारा बह चली ।

नेमि ने राजुल की बात सुनी । उन्होंने कहा कि वे तो वैरागी हो गये है संयम धारण कर लिया है इसलिए अब राजुल की सेवा कैसे स्वीकार कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त उन्होंने राजुल से वापिस अपने परिजनो मे लौटने की सलाह दी । जिससे वह राज्य सुख भोग सके । लेकिन राजुल कब मानने वाली थी । उसने फिर अनुनय विनय किया । रोयी और नेमि से उसे भी व्रत देने की प्रार्थना की । अन्त मे नेमिनाथ को उसकी प्रार्थना को स्वीकार करना पडा और उसे आर्यिका की दीक्षा दे दी । इसके साथ ही नेमिनाथ ने आवश्यक व्रतों को पालने का उपदेश दिया ।

इस प्रकार 'नेमीश्वर का उरगानो' एक शान्त रस प्रधान काव्य है जिसमे विरह मिलन की अद्भुत सरचना है । नेमि द्वारा तोरणद्वार पर आकर वैराग्य धारण कर लेने की इतिहास में अकेली घटना है । फिर उनसे राजुल का घर वापिस लौटने के लिए अनुनय विनय, पति के विरह में होने वाले कष्टो का वर्णन और वह भी आमने सामने । जहा एक वैरागी हो और एक नयी नवेली बनी हुई उसी की दुल्हिन । भगवान शिव को तो पार्वती की तपस्या के सामने झुकना पडा लेकिन नेमिनाथ के वैराग्य को राजुल नही डिगा सकी । उसने भी नेमि से अधिक से अधिक आग्रह किया, रोई विलाप किया, लेकिन वे कब अपने वैराग्य से वापिस लौटने वाले थे । अन्त मे राजुल का ही सयम धारण करना पडा ।

भाषा

प्रस्तुत कृति व्रज भाषा की कृति हैं जिस पर राजस्थानी का प्रभाव है । अखारे (६), कोरि (४), भीतरे (७), कन्हह (६), जोवहि (११), मोरि (१३), तोरि (१३), होइ है (१६), तिहारे (२२) आदि शब्दो का पर्याप्त प्रयोग हुआ है । ड और ट के स्थान पर र का प्रयोग किया गया है ।

रचना काल

प्रस्तुत कृति सवत् १५७१ की रचना है । रचना समाप्ति के दिन भादवा बुदी पचमी सोमवार था । रेवती नक्षत्र एव लगन मे चन्द्रमा था ।[1]

---

१ सवतु पन्द्रहसं दो गनौ, गुन गुनहत्तरि ता उपरि पन ।
भादौ वदि तिथि पचमी वार, सोम नखितु रेवती सार ।
लगुन भली सुभ उपजी मति, चन्द्र जन्म वलु पाइयौ ॥

रचना स्थान

'नेमीश्वर का उरगानों' का रचना स्थान गोपाचल दुर्ग (ग्वालियर) रहा। उस समय वहा के शासक महाराजा मानसिंह थे जिनके सुशासन की कवि ने प्रशस्ति मे प्रशसा की है। महाराजा मानसिंह तोमर वशी शासक थे। वहां जैन धर्म का पूरा प्रभाव व्याप्त था तथा उसके अनुयायी देव पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, सयम, तप और दान जैसे कार्यों का प्रति दिन पालन करते थे।

पाण्डुलिपि

उरगानो की एकमात्र पाण्डुलिपि शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर तेरह पंथियान् के एक गुटके मे सग्रहीत है। पांडुलिपि सवत् १८२''''माह बुदी १४ गुरुवार के दिन समाप्त हुई थी। सवतोलेख वाला अन्तिम अक नहीं है इसलिए वह पाण्डुलिपि सवत् १८२० से १८२६ के मध्य किसी समय लिखी गयी थी। प्रतिलिपि करने वाले थे आचार्य देवेन्द्रकीर्ति थे जिन्होंने इसे अपने शिष्य के लिए लिखा था।

१. नेमीश्वर को उरगानो

अथ उरगानो लिखित नेमी कुवर को।

मंगलाचरण—

प्रथम बलन जिन स्वामी जुहारु, ज्यों अवसायरु पावहि पारु।
लहइ मुकति दुति दुति तिरो, पच परम गुर त्रिभुवन सारु।
सुमिरत उपजै बुधि अपारु, सारद मनाविऊ तोहि।
गुरु गोतमु मो देउ पसाउ, जौ गुन गाउ जादु राइ।
उरगानो गुन विस्तरौ, समद विजै सिव देवी कुवार।
जाके नाम तिरै ससारु, चतुर गति गमनु निवारियो।
राजमति तजि जीव मिलाई, चढि गिरनैरि लियौ तपु जाई
नेमि कुवरु जिन वदि हौ ॥१॥

सुनि पुरानु हरिवस गम्हीरु, पडित धवलु जु साहस धीरु।
तिनि सुत रयनि जु रचि कियो, कलि केवलि जो त्रिभुवन सारु।
सुनि भाविय भव उतरै पारु, नेमि कुवर जिन वदि हौ ॥२॥

नारायण श्रीकृष्ण का वर्णन—

वरनौ आदि जु होइ पसारु, जादौ कुल इतनौ व्योहारु।
जो नाराइनु औतरे, अरु जी जानौ नेमि कुमारु।
जाके नाम तिरै ससारु, नेमि कुवरु जिन वदि हौ ॥३॥

छप्पन कोरि सु जादौ वीरु, रहइ द्वारिका सायर तीरु।
भोग भाइ वहु विधि रहै, राजु करै हित सौ पारवारु।
वाढै हय गय प्रथु भडारु, नेमि कुवर जिन वदि हौ ॥४॥

जीति जुरासिधु सधु वजाई, पुनि द्वारिका पऊचे जाइ।
चक्र नाराइन कर चढै, करहि वीप्रा ए मगलचार।
पच सवद वाजहि अनिवार, नेमि कुवरु जिन वदि हौ ॥५॥

सभा पूरि वैठे हरि राउ, चऊ धा सयनु न सुझै ठाउ।
होइ अषारे पेषनै, रानी राइ भइ मनोहारी।
नाराइन आरते उतारी, नेमि कुवर जिन वदि हौ ॥६॥

नेमीश्वर का परिचय—

तब वसुदेव कहै सतभाव, यहु नेमीसुरु त्रिभुवन राउ ।
समद विजै घर औतरे, जनु देहु यौं ज्यौं नर नाहा ।
वादि चरन भारले कराउ, नेमि कुंवर जिन वदि हौ ॥७॥

तब हरि भनै सुनै बसदेउ, नेमि तिनौ तुम जानौ भेउ ।
सो कारन हम सौ कहौ, जिया बलु या पासन आहि ।
जीत्यौ कहै जुरासिंधु ताहि, मैं बारौ करि जानियौ ।
तब हि कहै बलिभद्र कुमारु, मो पहि सुनौ याको व्यौहार ।
गुपित रूप गुन आगरौ, नेमि कुंवरु यहु गरुवो वीरु ।
या समान नहि साहस धीरु, नेमि कुंवर जिन वदि हौ ॥८॥

दूत का उग्रसेन के पास जाकर राजुल के विवाह का प्रस्ताव—

सुनत अचंभौ हरि मन भयौ, पटतरौ नेमी कुंवर कौलियौ ।
तब बलु आउत देखियौ, बिलख वदन माहरी मन जाम ।
कर ही उपाउ त्रिसो ताम, दूतु तब हि तिन पाठयौ ।
उग्रसेनि धिया राजकुमारि, राजुल देवी रूप कि आरि ।
देहु राइ कन्हरु भनौ, नेमि कुंवरु या ब्याहि आइ ।
जादौ सयल साथ समुहाइ, नेमि कुंवर जिन वदि हौ ॥९॥

उग्रसेनि तब हरखिय गात, परियन बोलि कही तिनि बात ।
सौज करौ बहु अति धनि, जादौं आवहि स्यौ परिवार ।
कला हमारी रहै अपार, मनु नाराइन रजियौ ।
बधिक बुलाइ राइ यौ कह्यौ, बन मा जीउन एकू रहै ।
तौ निग्रहु तुम सौ करौ, हिरन रोझ बहु जीव अपार ।
आनहु घेरि न लावो वार, नेमि कुंवर जिन वदि हौ ॥१०॥

बारात—

छपन कोरि जो जादौ असमान, पहुचे उग्रसेन के थान ।
पच सबद बाजैहि घनै, छायहु सुर गगन आकासु ।
सुरपति सेसु डरौहि कविलास, तीनि भुवन मन कंपियौ ।
नेमि कुंवर जोवहि चहु पास, जीव देखि चितु कियो उदास ।
नेमि कुंवर जिन वदि हौ ॥११॥

नेमिकुमार का प्रश्न—

नैमी भनैं हरि सुनहु बिराइ, जीव कहाए बहुत अपार।
कौन काज ए घेरियो, कारनु कवनु सुनौ बडवीर।
बहुत चिंता मो भईय सरीर, सांचउ वयनु प्रकासियो।

नारायण का उत्तर—

भनहि नाराइनु सुनहु कुवार, जी नर सोइ होइ सधार।
बहु ज्योनार रचाइवीयो, बधिए जीउ सहु लईहि काज।
भोजन करहि तुम्हारे काज, नेमि कुवर जिन वंदि हो ॥१२॥

नेमिकुमार का वैराग्य—

भयौ विरागी सुनत हरि वयनु, अैसौ व्योह करै अब कवनु।
ककन मुकट जु परिहरे, छाडौ अथ भडारु जु राजु।
जीव सइल मुकराऊ आजु, व्याहु छोडि तपु सु गह्यौ।
रथ तैं उतरि चलै बन मोरि, कर ककन सब डारे टोरि।
नेमि कुवर जिन वंदि हो ॥१३॥

जानिउ सयल ससार असारु, छाडि चाले सबु राजु भडारु।
चित्त वैरागु जु दिढ धरो, गौ गिरनैरि सिखिरि वर वीरु।
चौवा जोवैं साहस वीरु, भुवनु खानु देखियौ।
उत्तिम ठाऊ जु आमनु देहि, लोभु मानु जे दुरि करेहि।
निहचल मनु करि सोइ रहै, पचम महाव्रत सजमु धरै।
कष्ट सरीर बहुत विधि करै सील सुमति जिहि जिय वसौ।
नेमि कुवर जिन वंदि हो ॥१४॥

जोग जुगति सौं ध्यानु कराइ, चौ गै गमनु कि वारियौ।
मनु इन्द्र पचौ निगहे, कर्म तारासु परम पदु लहै।
नेमि कुवर जिन वंदि हो ॥१५॥

नेमि कुवर गिरनयरिहि, जादौ सयल विलखित भए।
कन्हर मनु आनद भए, उग्रसेनि दुख करहि अपारु।
कियौ हमारो सुबु भयौ आसरु, नेमिकुवर जिन वंदि हौ ॥१६॥

राजुल का विलाप—

राजुल देवी तबि सुधि लही, दासी बात जाइ तब कही।
नेमि सुनौ गिरि सौ गए सुनत बासु मुछिय जाइ।

कौन पाप हम कीनै माइ, खिन खिन मुरछि, भी परिजाइ।
थिम थिन उठि जोवइ चहु पास, परीय बिलखी लेइ उसार।
को मनु मेरो धीरवै, कोनु बहोरै नेमि कुंवारु।
कोयहु जाइ करै उपगारु, नेमि कुंवर जिन वदि हों ॥१७॥

राजुल का अपने पिता के पास जाना—

तब उठि कुंवरि पिता पहि जाहि, बात करत वे परीय लजाइ।
नेमि सुने गिरि भी गये, कहउ पिता तुम जानउ भेउ।
कोनु बहोरे जावो देव, गवहु भरि चित न सहारो।
सुनत बात सो मुरछी जाइ, ब्याहु छांडि संजम लिया।
उनि बैराग कियो किहि काज, छाडिउ छत्र संघातु राजु।
नेमि कुंवर जिन वदि हो ॥१८॥

उग्रसेन का उत्तर—

उग्रसेनि यो कहि विचार, यहु सबु जानै कन्हु मुरारि।
जिन ए जीव घिराईयो, देखि तिन्हहि मनु भो बैरागी।
बोछउ कुंवरि तुम्हारो भाग, कन्हर कुरम कमाइयो।
लेन गये हम करि मनोहारि, जादो सयल रहे पचिहारि।

दूसरे राजकुमार के साथ विवाह का प्रस्ताव—

वे दिढु संजमु लै रहे, अवहि कर्थारि हम करिहै काजु।
ब्याहु तुम्हारा होइ है आजु, वरु चोखो ले आइ हैं।
अति सरूप सो राजकुंवारु, चौदह विद्या गुनहनि धानु।
नेमि कुंवर जिन वदि हो ॥१९॥

राजुल का उत्तर—

यह सुनि राजुल उठी रिसाइ, ऐसो बोलु कहै कतराइ।
ब्याहु जनम औरै करो, एही जनम मो नेमि भरतारु।
उग्रसेनि सो सबु ससारु, बढि गिरिनयरिहि जासीउ।
उनहि साथ हों संजमु धरी, सहऊ परीसहि सेवा करो।
कर्म कुचित सब टारिहै, अरु निस रहहु पिया के साथ।
नेमि कुंवर जिन वदि हो ॥२०॥

राजुल की पुन चिंता करना—

मारगु जोवैं करैं सदेहउ, नेन भरैं जनु भादौ मेह ।
कत कवन गुन परिहरी, गढी होइ सो चलति तुरन्त ।
दुद्धर दुषु दियो मो कंत, तुम विनु को मनु धीरवै ।
जगु अध्यारौ मेरे जान, और न देषौ तुमहि समान ।
नेमि कुवर जिन वदि हौं ।।२१।।

झुरवै कारन करै वहुतु, बरनंन जाइ तासु गुन रूपु ।
रुदनु करत मारगु गहै, तुम विनु जन्मु जु वाहायौ ।
पुर्ब्व जन्म विछोही नारि, पाप पराचित हम किए ।
पथ अकेली चलति अनाह, अैसो तुमहि न वुझिए नाह ।
हमहि छाडि गिरि तुम गये, पिय विनु सुदरि करवि काइ ।
रहै समीप तिहारैं नाह, नेमि कुवर जिन वदि हो ।।२२।।

गिरिनार पर राजुल का पहुंचना—

करति विष्वादु गई सो नारि, पहु जी जाइ सिषिरि गिरनैरि ।
चरन लागि सो वीनवै, कर जोरैं सो वात कहाइ ।
दासी वर मो जानो राइ, सेवा वहु दिन दिन करौ ।

नेमिकुमार से निवेदन—

हम परिय कवन तुम काज, छाडो व्याहु माई मो लाज ।
तुम गिरनैरिहि आइयौ, दोसु कवन पीय लागो मोहि ।
सो कहि स्वामी पुछु तोहि, नेमि कुवर जिन वदि हो ।।२३।।

नेमिनाथ का उत्तर—

नेमि भनै सुनि राज कुवारि, हमि सजम लियो चढि गिरनारि ।
राज रीति सब परिहरि, हय गय विभव छत्र धन राजु ।
परियन व्याहु नही मो काजु, जीव दया प्रतिपालिहौ ।
यहु ससारु जु साइरु भव भवनु, वहुरिउ भ्रमि भ्रमि वूडै कौनु ।
नेमि कुवर जिन वदि हौ ।।२४।।

अब तुम कुवरि वहु घर जाहु, ककन वंधौ करहु विवाहु ।
हम गौंहि नु करि वावरी, राजधिया तु अति सुकुमाल ।

भोग विलास करी तुम बाल, तपु न करि सकै सुन्दरि ।
हम जोगी वि जोगु धराइ, ध्यान जुगति सौं कष्ट सहाइ ।
हम तुम साधु न बुझिय, जाऊ कवरि हम छाडी भ्राय ।
करहु बहु विधि भोग विलास, नेमि कुंवरु जिन वदि हों ।

राजुल एवं नेमिकुमार का उत्तर प्रत्युत्तर—

राजुल भनै सुनोहु जदु राइ, तुम सौं छाडि घरैं हम जाइ ।
पापु कौन हम कौं परै, तुम जु कहो हम सो वर जान ।
जीव कह तु हो तजो परान, चरन कमल दिन सेई है ।
धरु करि हो तुम नामु अधार, जिहि चढ़ि भव जल उतरै पारु ।
नेमि कुवर जिन वदि हों ।।२६।।

तव हि कुवर तैं उतरु दयो, घर को भरु तुम्हारें लेइ ।
वन ह अकेली तपु करो, हम वहु कष्ट सहै चितु लाइ ।
तुम हि कुवरि सहो कत आइ, नेमि कुवर जिन वदि हो ।।२६।।

उग्रसेनि धिय चतुर सुजान, कुवर सुनहु यो उत्तर ठानि ।
पास रहो सेवा करो, जाउ घरें हो कैसे रहो ।
गरुवो दुख वहु तू क्यो सहो, खडर तु मान को हाथि है ।

बारह महिनो का विरह वर्णन, सावन भादों—

सावन भादो वर्षा काल, नीरु अपवलु वहुत असराल ।
मेघ घटा अति नऊ नई, लह लह बीजुरी चमकति राति ।
तव घर रयनि सह्यारे कति, परदेसी चितु वह भरैं ।
दादुर मोर रढे दिन रैनि, पपीहा पिउ पिउ करैं ।
को भील करोउ महै नेत्र, तुम बिन को जिउ राखिहै कत ।
नेमि कुवर जिन वदिहो ।।२८।।

आसोज कार्तिक—

कातिक क्वार सरद रितु होइ, नरि हुलासु करैं सबु कोई ।
निर्मल नीर सुहावनो, णिसि निर्मल ससि अति सोहति ।
भरि जलि नैन सम्हारैं कति, विरह व्यथा अति ऊपजै ।
गीत नाद सुनि मैं वहु पास, हम तुम बिनु पिय घरी अनास ।
नेमि कुवर जिन वदिहों ।।२९।।

मंगसिर पोष—

अघन पुषु अति सीत अपारु, जादौ विषु व्यापै ससार ।
काम अगिनि बहु पर जलु, घर घर सुख करै सब कोई ।
तुम बिनु हमहि कहा घर होइ, हिरदौ कपै पात ज्यौ ।
निसि अध्यारी परतु तुषारु, काम लहरि अति होइ अपार ।
यहु मनु तरसै पीउ विना, सवु ससार करै अति भोग ।
राजुल रटै करै पीय सोगु नेमि कु वर जिन वदिहौं ।।३०।।

माघ फाल्गुन—

माघ पवनु फागुन रितु होइ, रितु बसत खेलै सब कोई ।
कत सतबर कामिनी, दिन दिन रागु करै अनसरै ।
सजोग सिगारु बहुत विधि करे, फागुण फागु सुहावनी ।
सोहै सरिसु करै दिनु खेलु, गावहि गीत करे पिय मेलु ।
परि मेघुरि उडाइसी, हुँ ज, सवनि सिर उडई सीहु ।
चोवा चन्दन अगर कपूरु, तिलकु करै कर सुन्दरी ।
घर घर बाधे बन्धन वार, पच सबद वाजही अनि अार ।
पिय परिहसु राजुल करै, दिन दिन तुम्ह ही सहारै कत ।
राखि सकै को हस उडात, नेमि कु वर जिन वदिहौं ।।३१।।

चैत्र वैशाख—

चैतु सुहावो अरु वैशाख, वनसपती सब भई हुलासु ।
भार आठारह मौरियौ, सव फुलै नन्दन वन फूल ।
वासु सुगध भौर रस भुलि, फलहिते अमृत फल घनै ।
वन कोयल कुह कुह सुर करहि, गह गह मोर सुहावनै ।
बिरहिनि त्रम म्हारै कत, पिय बिनु जनमु अकारथ जत ।
रइनि निरासी क्या गमै, हमहि पिया जनि करहु निराए ।
वीसर रैनि सु म्हारी आस, नेमि कु वर जिन बदि हौ ।।३२।।

जेठ आषाढ—

जेठु अषाढु गरम रितु होइ, घाम घरे व्यापै सब कोइ ।
तपा तपै तनु अति तपै, पेम अगिनि तन डेहै सरीरु ।
लुवल वहि झर सवन परही, सीतल जतन ते सयल करही ।
श्रीखड घसि तनु मडहि, अरु वीच गरम पसी जै देहु ।

होइ बिथा अलि पिय के नेहु, बाउ सरीरु सुहावातो।
सपती अधिक पिय तुम बिनु होय, हुस उबत न राखे कोई।
निसि बासर गुन तुम्हेरो, सीतल वचन तुम्हारे कंत।
सुनत हमहि सुखु होइ तुरन्त, नेमि कुंवर जिन बंदिहौं ॥३३॥

ए षट् रिवु को बकै सह्यारि, उपजै दुखु तुमहि सम्हारि।
क्यों करियहु मनु राषि है, रहि है पास तुम्हारे देव।
करिहैं चरन कमल नित सेव, नेमि कुंवर जिन बंदिहौं ॥३४॥

जादो राइ भनै सुनि बैन, रुदनु करहु कंत भरि जल नैन।
हम मनु सजमु दिढु धरै, तुम अति गाढु कत करो बहुत।
राजु करहु वर सखिनि सजुत, नेमि कुंवर जिन बंदिहौं ॥३५॥

तब सुनि राजुल बिलली होई, तुम बिनु स्वामी मैहै कोइ।
साथ सहित सजमु धरो, अरु श्रावक व्रत कर उरवास।
और सबै छाडो हम आस, कष्ट बहु बिधि हौं सही।
करहु दया मो दे उपदेसु, ज्यो तिरिए संसारु असेसु।
नेमि कुंवर जिन बंदिहौं ॥३६॥

यह सुनि बोले त्रिभुवन नाथ, धर्म सनेह रहै हम पास।
मनु निहचलु करि रायो, सुनहु कुंवरि ससारु असारु।
भव सायरु जलु गहीर अपारु, चतुर्गति गमनु निवारियो।
जीव छो चौरासी जाति, सहइ बहुत दुखु अन अन भाति।
भ्रमतनि अतु न पाइऐं, रहट माल ज्यों यहु जीव फिरै।
रूप अनेक बहुत बिधि करै, नेमि कुंवर जिन बंदिहौं ॥३७॥

अब समिकितु धारियो दिढ चितु, मोख मुगति जो लहइ तुरन्त।
पर परिहरि सुनि सुन्दरी, चेतनि सुन्दरी सम करहु गुन आसु।
ध्यानु धरहु जानी दीनो तासु, मिथ्या मोहवि परिहरो।
पंच परम गुरु जपु पाहु, जीव दया जीवहु तय राहु।
नेमि कुंवर जिन बंदिहौं ॥३८॥

पालउ आठ मूल गुन सारु, सात बिसन तजि तिरि ससारु।
वर अमोव्रत दिन करहु, अरु ग्यारहु प्रतिमा जिय धरो।
त्रेपन क्रिया करि भव तिरो, गुन अस्थान चौदह चढो।
ए श्रावक व्रत कीजहि सार, जिहि तै कुंवरि तिरो ससारु।

पच मगल धुपाइये, बहु तजि कुवरि निवारी मोहु ।
दीक्षा धरऊ मोहि व्रत देउ, नेमि कुवर जिन वदिहौं ।।३९।।

लै सजमु व्रत ध्यानु धराहि, जो परुजानि ते हारि कराइ ।
धम्म गुनु गहि निर्मलो, इहि विधि कर्म दसन सो करे ।
राजल नेमी चलत नित धरै । नेलि कुवर जिन वदिहौं ।।४०।।

नेमि कुवर राजमती नारि, दुहु संजमु लियो चढि गिरनैरि ।
तीनि भुवन जसु मडियो, अरु तिन उपजो केवल ग्यानु ।
सुरनि सहित सुरपति अकुल्यानु, करन महोछो आयो इन्द्रु ।
पूजा नित सेवा कराइ, पच सवद तल रसी वजाइ ।
कलस अठोतर धरियो आई, करि आरतो धर बुज वदियो ।
समोसरनु स्वामी को कियो, सुर नर केनिक आईयो ।
गन गधर्व बीद्याधर जछि, जादो सयलति राइ सधि ।
नेमि कुवर वदिहौ ।।४१।।

वनी इन्द्रु तवही तिनि कियो, सुनतई नु जग मन भयो ।
जीव निदा नदि ते आऐ, जै जैस वदु तिहु लोकहृ भए ।
जै जै सवउ तिहु लोकहृ भए, पचम गति सीद्ध त सुभयो ।
नेमि कुवर जिन वदिहौं ।।४२।।

प्रशस्ति—

श्रावगु सिरीमलु अरु जसवत, निहचै जिय धर्म धरत ।
चरु चलन भवि वदतो, पुत्र एकु ताके घर भयो ।
जनमत नाउ वसुह तिनि लियो, जैन धर्म दिढु जीयहृ धरो ।
नेमि चरितु ताके मन रहै, सुनि पुरानु अरगानो कहै ।
नेमि कुवर जिन वदिहौ ।।४३।।

मधि देसु सुख सयल निधान, गढु गोपाचलु उतिम ठानु ।
एक सोवन की लका जिसि, तौंवर राउ सवल वर वीर ।
भुववल आप जु साहस धीरु, मान सिधु जग जानियै ।
ताके राजु सुखी सब लोगु, राज समान करहिं सब भोगु ।
जैन धर्म बहु विधि चलै, श्रावग दिन जु करे षट् कर्म ।
निहचै चितु लावैहि जिन धर्म, नेमि कुवर जिन वदिहौ ।।४४ ।।

सवतु पन्द्रहसै बो वर्ष, सुन चतुद्दसरि ता उपरि भने ।
भादो वदि तिथि पचमी बार, सोम नखितु रेवती सार ।
सगुन भली सुभ उपजी मती, चन्द्र जस्म बलु चाइयौ ।
चतुर भनै भली सयलनि दासु, गुनिय सुनत जिय करहि न हासु ।
लछि उपसर्ग बुधि हीनु, मैं स्वामी को कियो बखानु ।
पठत सुनत जा उपज्यै ग्यानु, मन निहचल करि जिय धरऊ ।
राजमती जिन सजमु लियो, नेमि कुवर नेमि सयल बीनयो ।
नेमि कुवर नेमि जिन बदिहौं ।।४५।।

।। इति नेमिसुर को उरगानो समाप्त ।।

सवत् १८२""वर्ष सव माह वदी १४ व सेरो गुरु । लीलीत श्री देवेन्द्रकीर्ति आचरज सीसज के पह ।

□□□

२. गीत (गारि)

[१]

ना जानो हो को को चेरै ढीलरीया कत जाई ।।
मन चेतहु हो अमुका सवई सुणहु विचार ।। मन ।।
चमु गति भवकत भमहु, ससारु, धरु परबिणु सवु भयो है जारु ।
जगतारनु जिण नामु अधारु, जीवदया बिनु धरम्मु न सारु ।। मन ।।
जिनवर पूजा रचहु करि भाउ, आठ दव्व लेई पूजा साहु ।। मन ।।
पर परम गुरु जाय जपाहु, समिकतु निहचणु चितह धराहु ।। मन ।।
भवति जिलघु पचम गति जाहु, संसारह आवग कुलि सारु ।। मन।।
भनई चमु श्रावगु श्रीमारु, मन चेतहु हो अमुका सवई सुणहु विचार ।।

[२]

गाडी के गडवार की पइया घर कहिगे ।। इहि आयति ।।
गनधर गोतम स्वामी, सुमिरि जिणु वदहुगे ।
भव संसारु अपारु, भविक गण ऊतरहिगे ।

चौरी गवरणु निवारि, मुकति सिरी सी जैगी।
तुम्ह लईय भविक जन लेहु, कहा मब की जैगी।
श्रावग कुलि अवतारु, बहुरि णर लीजैगै।
धर्म्म दया जग सारु, सुनिहु मैको जैगे।
दस लखरिण जिन धम्मु, दिनहु किन कीजैगे।
सातो विसन नीवारि, कर्म्म क्यो की जैगे।
तिजि मिथ्यातु अपारु, सुमति जी धरि जैगी।
क्रोधु मान मदु लोभु न मया की जैगी।
यह परिहरि भव दूरि कवन सुखु पावहिगै।
परमात्मा मन ध्यानु परिवि चितु लावहिगौ।
जा ते तिरिहु तुरत संसारु मोख पद पावहिगै।
श्रावग सुणहु विचारु, चतुरु यो गावहिगै॥

[३]

माइ तिवा वावारी के जईयो॥
वावा वारी क्यो जइयो, भवियण वदहु करि जोरि।
जिनवर चलन जुहारी, बै मै भमनु निवारि।
भव ससारहु तारै, सभलि जीव अजाणा।
माया मोह भुलाना, बहु मिथ्यातु भरीई।
श्रावग कुलि कत आयो, अहलै जन्मु गवायो।
ऊतिम कुलि कत अवतरीया, सात विसन मद भरिया।
मोह महा मद राच्यो, मूलगुना नह जाणे।
ईन्द्री पाचो सुखु मानो, माई तिवा वावारी के जइयो॥
भमीयहु लाख चौरासी, बध्यो मोह की पाशि।
जिणवर चलन जुहारी, आवागमनु निवारी।
यहु त्रीय लोकु भमाई, सबै देव जुहारे।
को भव पार उतारो, जीव दया नह पारै।
सिवपुरि गमनु निवारै, माई तिवा आवारी के जईयौ।
भोजनु राति कराई, बहु ससारु भमाही।
चौविधि दानु न दीणै, सुधो भाउ न कीणे।
मिथ्या मोह भुलाणा, जिनवर धम्मु न जाण्यो।
लहियो श्रावग कुलि जन्मु करि दिन जिणवर धम्मु।
ज्यो जीय लहै सुख ठाऊ, तो धरि निहचलु भाऊ।

आत्मा ध्यानु करीजै, सहि पंचम गति लीजै।
श्रावग सुणहु विचारु, भनई चतुरु श्रीमारु ॥

क्रोध गीत [४]

क्रोध—

क्रोध न कीजै जीवरा, कछु उपसमु हो।
उपसमुहि पराकिए धरहि, क्रोध अगिनि जब पर जोरै।
तब अप्पो हो अप्पो तापई परुतवै।
परुतवै अप्पा गुननि जारेई, क्रोध हीयरा जब भरै।
सुमति करनए वीसरई, ईही सील संजमु सवु अविरया।
जव सुरिस मन संचरेई, इम जानि जिवडा गहहि उपसमु।
क्रोधु खिणमत कोई करै, क्रोध न कीजै जीवरा ॥१॥

(२)

मान—

मानु न कीजै जोईवरा।
तिसु मानहि हो मानहि जीयरा दुखु सहै।
अप्पु सराहै हो भलो, पुणि परु की हो परु की णित करई।
परु करेइ निंद्रा नित प्रानी, इसोइ मन गरवै खरो।
हउ रूप चतुर सुजानु सदरु ईसोप भनै मद भरै।
अहमेव करि करि कर्म्म बधौ, लाख चौरासी महि फिरै।
इम जानि जियरा मानु परिहरि, मानु बहु दुलह करो ॥२॥

(३)

माया—

माया परिहरि जीवडा, जीऊ सुर्णहि हो सुहि पावइ सुख घनौ।
माया कपटै जे चलहि ते पावहि हो पावहि दुख दालिदु घनौ।
दुख तनोऊ दालिदु अग्गिऊ जीवरा, कर्म्म फेरै ऊडो लई।
घर वरह भीतरि आनु प्रानी वयन अैरै बोलए।
परपंचु करि करि तवई परु कहु कपटु सवु माया तनौ।
इम जानि जीवडा तिजहि माया, जीऊ सुपावई सुख घनौ ॥३॥

(४)

लोभ—

लोभु न कीजई जीवरा, तिसु लोभहि हो लोभहि लाग्यो पापु घनो ।
तिसु पापहि हो पापहि जीयडा दुखु सहेई ।
दुखु सहइ जीउयरा लोभ काहन लोभ कहुडीउ तरकरई ।
ईहु लोभ कारन जीऊ पतिगा, देखत इदियडा परई ।
सकलप विकलप भर्‌योऊ जियडा, लोभु इछइ चित धरई ।
इम भनई वँ मनि निसुनि भवियन, लोभु खिन मत कोई करै ।।४।।

।। इति क्रोध गीत समाप्त ।।

ये सभी चारों पद शास्त्र भण्डार दि० जैन बडा मन्दिर तेरहपथियान् जयपुर के गुटके मे सग्रहीत है ।

□ □ □

४

गारवदास

गारवदास विक्रमीय १६ वी शताब्दि के चतुर्थ पाद के कवि थे। उनके सम्बन्ध मे सर्वप्रथम मिश्रबन्धु विनोद मे एक उल्लेख मिलता है जिसमे एक पक्ति में कवि का नाम, ग्रन्थ नाम, रचना काल एव रचना स्थान का नाम दिया हुआ है। लेकिन उसमे गारवदास के स्थान पर गौरवदास तथा रचना सवत् १५८१ के स्थान पर सवत् १५८० दिया हुआ है। मिश्रबन्धु के परिचय के पश्चात् भी हिन्दी विद्वानो के लिए गारवदास अज्ञात एव उपेक्षित से रहे। सन् १९४८-४९ मे जब मैंने राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ-सूची बनाने का कार्य प्रारम्भ किया तो जयपुर के ही दि० जैन बडा मन्दिर तेरह पथियान् मे इसकी एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई जिसका उल्लेख ग्रन्थ-सूची के चतुर्थ भाग मे पृष्ठ सख्या १६१ के २३१३ सख्या पर किया गया। लेकिन उस समय भी कवि के महत्व को प्रकाश मे नही लाया जा सका और इसके पश्चात् भी कवि एव उनका काव्य विद्वानो से श्रोझल ही बने रहे।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाश्य दूसरे पुष्प के सवत् १५६० से १६०० तक होने वाले कवियों के सम्बन्ध मे जब निर्णय लेने से पूर्व गारवदास एव उनकी रचना यशोधर चरित को देखा गया तो हिन्दी की महत्वपूर्ण कृति होने के कारण कविवर बूचराज के साथ गारवदास को भी सम्मिलित किया गया।

गारवदास हिन्दी कवि थे लेकिन वे प्राकृत एव सस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। यद्यपि अभी तक उनकी एक ही काव्य कृति यशोधर चरित्र उपलब्ध हो सकी है लेकिन वही एक कृति उनकी विद्वता की परख के लिए पर्याप्त है। वैसे कवि की और भी रचनाये हो सकती हैं लेकिन जब तक उत्तर प्रदेश के प्रमुख भण्डारो की खोज पूर्ण न हो जावे तब तक इस सम्बन्ध मे कुछ नही कहा जा सकता।

कवि परिचय

कविवर गारवदास उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। उनका ग्राम था फफोतूपुर

(फफोंदु) जिसमे श्रावको की अच्छी बस्ती थी। वे प्रति दिन अष्ट द्रव्य से जिन पूजा करते थे। उनके पिता का नाम राम था। कवि पर सरस्वती की पूर्ण कृपा थी। इसलिए उनका वाक्य ही काव्य बन जाता था।[1] पुराणो को सुनने में कवि को विशेष रुचि थी। एक बार कवि को नगकैलई के निवासी साहु थेघु के पास जाने का काम पडा। जब थेघु श्रावग ने गारबदास के वचनामृत का पान किया तो वह प्रसन्न हो गये और हाथ जोडकर कहने लगे कि यदि यशोधर कथा को काव्य बद्ध कर सको तो उसका जीवन सफल माना जावेगा। थेघु श्रीमन्त ने यह भी कहा कि जिस प्रकार कवि ने इस कथा को अपने गुरु से सुनी है उससे भी अधिक सुन्दर रूप से उसको वह चाहता है। कथा कवित्त बध चौपई छन्द मे होनी चाहिए। इस प्रकार प्रस्तुत काव्य रचने की प्रेरणा कवि को फफोंदु निवासी थेघु से प्राप्त हुई थी।[2]

कवि ने यशोधर चरित्र की रचना सवत् १५८१ भादवा शुक्ला १२ बृहस्पतिवार को समाप्त की थी।[3] रचना समाप्ति के समय कवि सम्भवत अपने आश्रयदाता के पास ही थे।

आश्रयदाता

उत्तर प्रदेश मे गगा और यमुना के बीच मे कैलई नाम की नगरी थी। उसको देवतागण भी सुख और शान्ति की नगरी मानते थे। वहाँ ३६ जातियाँ थी

---

१ राम सुतनु कवि गारबदासु, सरसुति भई प्रसन्नी जासु।
बसत फफोतपुर सुभ ठोर, श्रावग बहुत गुणी अहि और ॥५३२॥
बसुविह पूज जिनेस्वर एहानु, लै अभार दिन सुनहि पुरानु ॥५३३॥

२ थेघु सर्ने कवि गारबदासु, निसुनि बचनु चित भयो हुलासु।
दुँ कर जोरि भणी गुन गेहु, सफल जनम मेरो करि लेहु ॥१८॥
ललित कथा जसहर की भासि, जिम गुरु पास सुनी तुम रासि।
जो बहु आविकविसुर भए, अरथ कठोर चरित रचनए ॥१९॥

३ सवत् पन्द्रह सै इकयसी, भादौ सुकिल अवरा द्वादसि ॥५३३॥
सुर गुरुवार करणु तिथि भलो, पूरी कथा भई निरमलो।
जसहर कथा कही सब भासि, सिरवलो भाव परम गुर पासि।

जो सभी सम्पन्न थी ।[1] अभयचन्द्र[2] वहां का शासक था ,जो अतीव सुन्दर एवं पूर्ण चन्द्रमा के समान था । प्रजा मे सुख एव शान्ति व्याप्त थी तथा किसी को कोई भी दु ख नहीं था । उस नगरी मे श्रावको की घनी बस्ती थी । उसी में पद्मावती पुरवाल जाति थी जो जैन धर्मानुयायी थी । उसी मे साहु कान्हूर थे और उनके सुपुत्र थे भारग साहु । वे यशस्वी श्रावक थे । उन्होने चार गाव बसाये थे जिनके नाम थे जसरानो, गोछ, मैंतपुर और सौहारु ।[3] इनके बसाने से उसकी कीर्ति चारो ओर फैल गयी । सुलतान भी उसके कार्य से प्रसन्न था । उसकी धर्म पत्नि का नाम था देवलदे ।[4] उसके उदर से तीन सन्तान हुई जिनके नाम थे मेघु जनकु एव थेघु साहु । थेघु साहु बहुत ही स्वाध्यायी श्रावक थे । एक बार थेघु साहु ने सघ सहित पार्श्वनाथ की यात्रा भी की थी और वापिस आने पर उसने नगर मे सबको भोजन कराया । कुछ समय पश्चात् उसको पुत्र रत्न की प्राप्ति भी हुई । थेघु सेठ दानशील भी थे और लोगों को भक्तिपूर्वक दान देते थे ।[5] वे रात्रि को जागरण करवाते थे जिससे श्रावको मे जिनेन्द्र भक्ति का प्रचार हो ।

---

१ गग जमुन बिच अंतर वेलि, सुख समूह सुरमानहि केलि ।
नयरी कैलई जनु सुरपुरी, निवसै धनी छतीसौ कुरी ।।५२२।।

२ अभयचन्दु जह राउ निसकु जनु कुलु षोडस कला मयंकु ।
परजा दुखी न दीसै कोइ, घर घर बधि बधाऊ होइ ।।५२३।।

३ श्रावग बहुत बसहि जहि गाम, जनु आसिको दीनो सियराम ।
पोमावे पुरवर सुखसील, सुर समान बर मानहि कील ।।५२४।।
सा कन्हर सुतु भारग साहु, जिनि धनुष रचि लियो जसलाहु ।
जस रानी परनु सुभ ठोरु, गोछ महापुरु दूजो और ।।५२५।।
मनगरु पैतपुरु अरु सोहारु, चारयो गांव बसावन हारु ।
जासु नामु पढ़वा सुरितान, राज काज जान्यो सुरिताण ।।५२६।।

४ तासु नारि देवलदे नाम, जिम ससिहर रौहिनि रतिकाम ।
सोलु महातहि लीनो पोषि, नंदन तीनि अवतरे कोषि ।।५२७।।
मेघु मेघु परसूजस रासि, जनुकु सु सूर ससि सुक्र् प्रकासि ।
जेठौ थेघ साहु सुपहाणु, जासु नाम मे छ्यो पुराणु ।।५२८।।

५ पुत्र हेतु जानै उपगारु, जिनवर जागिन करावण हारु ।
बहुत गोठि लै चाल्यो साथ, करी जात सिरी पारसनाथ ।।५२९।।
खरचि बहुतु धनु रावन थान, घर आयौ दियो भोयण दान ।
ताकौ पुत्र रत्नु अवतरयौ, रयनायरु गुण वीसै भरयौ ।।५३०।।

यशोधर चरित की कथा को समस्त जैन समाज मे पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त है। यही कारण है कि इस कथा पर आधारित चरित्र, चरित, रास एव चौपई आदि सज्ञक काव्य कितने ही जैन कवियों ने निबद्ध किये हैं तथा हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा मे ही नही किन्तु प्राकृत, अपभ्रंश एव सस्कृत मे भी यशोधर के जीवन पर कितने ही काव्य मिलते हैं।

यशोधर के जीवन से सम्बन्धित स्वतन्त्र रचना का उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य उद्योतन सूरि (७७९ ई०) ने अपनी कुवलय माला कहा मे प्रभजन कवि के किसी यशोधर चरित का उल्लेख किया है। लेकिन उक्त कृति अभी तक अनुपलब्ध है। इसके पश्चात् महाकवि हरिषेण ने अपने बृहत्कथाकोष (९३२ ई०) मे यशोधर के जीवन से सम्बन्धित एक स्वतन्त्र आख्यान लिखा है इसलिए अभी तक उपलब्ध रचनाओ मे हम इसे यशोधर के जीवन पर आधारित प्रथम आख्यान मान सकते हैं। लेकिन १० वी ११ वी शताब्दि के साथ ही यशोधर के आख्यान ने जैन समाज मे बहुत ही लोकप्रियता प्राप्त की और एक के पश्चात् दूसरे कवि ने इस पर अपनी लेखनी चलाकर उसे और भी लोकप्रिय बनाने मे पूर्ण योग दिया।

राजस्थान के जैन भण्डारो मे यशोधर के जीवन पर आधारित निबद्ध कितने ही काव्य उपलब्ध होते है। इन काव्यो के नाम निम्न प्रकार हैं—

अपभ्रंश

१	जसहरचरिउ	महाकवि पुष्पदन्त	१० वी शताब्दि
२	,,	,, रइधू	१५ वी शताब्दि

सस्कृत

३	यशस्तिलक चम्पू	आ० सोमदेव सूरि	सवत् १०१६
४	यशोधर चरित्र	वादिराज	११ वी शताब्दि
५	यशोधर चरित्र	भट्टारक सकलकीर्ति	१५ वी शताब्दि
६	,,	आचार्य सोमकीर्ति	सवत् १५३६
७	यशोधर कथा	भट्टारक विजयकीर्ति	१५ वी शताब्दि
८	यशोधर चरित्र	वासवसेन	—
९	,,	पद्मनाभ कायस्थ	—
१०	,,	पद्मराज	—
११	,,	पूर्णदेव	—
१२	,,	ज्ञानकीर्ति	स० १६५६

१३.	यशोधर चरित्र	श्रुतसागर	१६ वीं शताब्दि
१४.	,,	क्षमाकल्याण	सं० १८३९

हिन्दी राजस्थानी

१५	यशोधर रास	ब्रह्म जिनदास	१६वीं श० (प्रथम चरण)
१६	,,	भट्टारक सोमकीर्ति	,, (चतुर्थ चरण)
१७	यशोधर चरित	देवेन्द्र	सं० १६८३
१८	,,	परिहानन्द	सं० १६७०
१९	यशोधर रास	जिनहर्ष	सं० १७४७
२०	यशोधर चौपई	खुशालचन्द	सं० १७८१
२१	,,	अजयराज	सं० १७९२
२२	यशोधर रास	लोहट	१८ वीं शताब्दि
२३	यशोधर चरित्र	मनसुखसागर	सं० १८७८
२४	यशोधर रास	सोमदत्त सूरि	—
२५	,,	पन्नालाल	सं० १९३२

इस प्रकार यशोधर के जीवन से सम्बन्धित राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में २५ कृतिया प्राप्त हो चुकी है और अभी और भी कृतिया मिलने की सम्भावना है ।

उक्त सूची के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गारवदास द्वारा यशोधर की कथा को काव्य रूप देने के पूर्व महाकवि पुष्पदन्त एव रइधू ने अपभ्रंश मे, आचार्य सोमदेव सूरि, वादिराज, भट्टारक सकलकीर्ति, भट्टारक सोमकीर्ति एव विजयकीर्ति ने सस्कृत मे तथा ब्रह्म जिनदास, भट्टारक सोमकीर्ति ने राजस्थानी भाषा मे यशोधर के जीवन पर काव्य कृतियां निबद्ध की हैं । यद्यपि कवि गारवदास ने वादिराज के यशोधर चरित्र को अपने काव्य का मुख्य आधार बनाया था लेकिन उसने यशोधर से सम्बन्धित रचनाओ को भी अवश्य देखा होगा लेकिन स्वय कवि ने इसका कोई उल्लेख नही किया है ।

गारवदास का यशोधर चरित ५३७ छन्दों का काव्य है । वह न सर्गो मे विभक्त है और न सन्धियो मे । प्रारम्भ से अन्त तक कथा बिना किसी विराम के धारा प्रवाह चलती है और समाप्त होने पर ही विराम लेती है । इससे पता चलता है कि अधिकाश जैन कवियों ने काव्य रचना की जो शैली अपनायी थी उसका गारवदास ने भी अनुसरण किया प्रस्तुत कृति यद्यपि हिन्दी भाषा की कृति है लेकिन कवि ने उसमें बीच-बीच मे सस्कृत के श्लोको एव प्राकृत गाथाओ का प्रयोग

करके न केवल अपनी भाषा विद्वता का परिचय दिया है लेकिन काव्य अध्ययन में थकने वाले पाठकों के लिए विराम तथा संस्कृत प्राकृत भाषा भाषी पाठको के लिए नयी सामग्री उपस्थित की है। १६ वीं शताब्दि मे यह भी एक काव्य रचना की पद्धति थी। भट्टारक ज्ञानभूषण (सवत् १५६०) ने भी 'आदीश्वर फाग' में इसी शैली की रचना की है जो गारवदास के ही समकालीन कवि थे।

यशोधर चरित की कथा का सार निम्न प्रकार है—

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र मे राजग्रही नगरी थी। जो सुन्दरता तथा वन उपवन एव महलो की दृष्टि से प्रसिद्ध थी। वहा के राजा का नाम मारिदत्त था। राजा मारिदत्त की युवावस्था थी इसलिए उसकी सुन्दरता देखती ही बनती थी। कला एव सगीत क वह प्रेमी था। एक दिन एक भस्म लगाया हुए योगी उसके नगर मे आया। योगी के बड़ी-बड़ी जटायें थी तथा वह भग के नशे मे धुत्त हो रहा था। गौरवर्ण था। उसका नाम था भैरवानन्द। नगर मे जब भैरवानन्द की तान्त्रिक एव मान्त्रिक की दृष्टि से चारो ओर प्रशसा होने लगी तो राजा ने भी उसे अपने महल मे मिलने के लिए बुला लिया। भैरवानन्द के महल मे आने पर राजा ने उसका विनय पूर्वक सम्मान किया। राजा की भक्ति से वह बहुत प्रसन्न हुआ और कोई भी इष्ट वस्तु मागने के लिए कहा। राजा ने अमर होने, एक छत्र राज्य चलाने तथा विमान मे चलने की इच्छा प्रकट की। भैरवानन्द ने राजा की प्रार्थना को पूर्ण करने का आश्वासन दिया लेकिन उसने चडमारि देवी के मन्दिर मे बलिदान के लिए सभी प्रकार के जीवो को लाने तथा एक मानव युगल का भी बलिदान करने के लिए कहा। राजा तो विद्या के लिए अन्धा हो चुका था इसलिए उसने तत्काल अपने अनुचरो को आदेश पालने के लिए कहा। उनके सेवक चारो ओर दौड गये तथा सभी प्रकार के पशु पक्षियो को लाकर उपस्थित कर दिया। लेकिन मानव युगल खोजने पर भी नही मिला।

कुछ ही समय पश्चात् वन मे अनेक मुनियो के साथ सुदत्त मुनि का आगमन हुआ। वह वन खिल उठा। चारो ओर पुष्पो पर भ्रमर गुञ्जार करने लगे एव कोयल कुहु कुहु करने लगी। मुनि ने उसी वन मे ठहरने का विचार कर लिया। लेकिन वह वन गधर्वों का भी निवास स्थान था जहां वे केलि किया करते थे इसलिए सुदत्ताचार्य को वह वन समाधि के उपयुक्त नही लगा। वह अपने सघ सहित श्मशान भूमि पर चले गये। आचार्य ने एक युवा मुनि एव साध्वी को नगर में आहार के लिए जाने को कहा। वे दोनो भाई बहिन थे। दोनो अत्यधिक कमनीय शरीर के थे तथा बत्तीस लक्षणो वाले थे। इतने मे ही राजा के सेवको की दृष्टि

उन दोनों पर पड़ी। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा और वे दोनों को चण्डमारि देवी के मन्दिर में ले गये।

मन्दिर का दृश्य विकराल था। चारों ओर पशु पक्षियों की मुण्डियां, अस्थियां एवं उनका रक्त बिखरा हुआ था। भयंकर दुर्गन्ध से वातावरण अत्यधिक भयानक था। भाई ने बहिन को शरीर से मोह छोड़ने तथा आत्म स्थित होने के लिए समझाया। साथ ही मे साधु संस्था के महत्व को भी समझाया। जब राजा ने अत्यधिक सुन्दर उस मानव युगल को देखा तो वह भी उनके रूप लावण्य को देखकर आश्चर्य करने लगा। उसने उन दोनों से दीक्षा लेने का कारण जानना चाहा तथा बाल्यावस्था मे ही तपस्वी बनने का कारण पूछा। राजा का वचन सुनकर अभयकुमार ने हँसकर निम्न प्रकार अपनी जीवन गाथा कही—

अवन्ती देश की उज्जयिनी राजधानी थी। वह नगर स्वर्ग के समान सुन्दर था। चारो ओर फलो से लदे वृक्ष तथा मन्दिर एव महलो से युक्त थी। वहां के नागरिक भी देवता के समान थे। नगर मे सभी जातियां रहती थी। वहा के राजा का नाम यशोधु था तथा चन्द्रमती उसकी रानी थी। वह शरीर से कोमल तथा गजगामिनि थी। न्यायपूर्वक शासन करते हुए जब उन्हे बहुत दिन बीत गए तो उन्हे एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम यशोधर रखा गया। बालक बड़ा सुन्दर एव होनहार लगता था। आठ वर्ष का होने पर उसे चटशाला मे पढने भेजा गया। विद्यालय जाने के उपलक्ष मे लड्डू बाटे गये तथा गणेश एव सरस्वती की पूजा की गयी। यशोधर ने थोड़े ही दिनो में तर्कशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थ तथा अश्व, हाथी आदि वाहनो की सवारी सीख ली। पढ़ लिखकर वह पुन माता-पिता के पास गया। इससे दोनो बड़े आनन्दित हुए। यशोधर का विवाह कर दिया गया। एक दिन राजा यशोधु सभा मे विराजमान थे कि उन्होने अपने सिर मे एक श्वेत केश देख लिया इससे उन्हे वैराग्य हो गया और अपना राज्य कार्य यशोधर को सौपकर स्वय तपस्वी बनने के लिए वन मे चल दिये।

यशोधर बड़ी कुशलता पूर्वक राज्य कार्य करने लगा। उसकी महारानी का नाम अमृता था जो देवी के समान थी। कुछ काल उपरान्त एक कुमार उत्पन्न हुआ जिसका नाम यशोमती रखा गया। यशोधर ने अपने राजकुमार को शासन का भार सौंप स्वय अपनी रानी अमृता के साथ आनन्द से रहने लगा। यशोधर को अमृता के बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। अमृता के महल के नीचे ही एक कुबड़ा रहता था जो दुर्गन्धयुक्त शरीर वाला, अत्यधिक विरूप था लेकिन वह संगीत का बहुत ही जानकार था। रानी ने जब उसका संगीत सुना तो वह उस पर

आसक्त हो गयी और उसके बिना अपना जीवन व्यर्थ समझने लगी । अर्ध रात्रि को जब राजा यशोधर उसके पास सो रहा था तो वह उसको सोता हुआ छोडकर अपनी एक सेविका के साथ उस कुबडे के पास चल दी । कवि ने रानी अमृता एव दासी की बहुत ही सुन्दर वार्ता प्रस्तुत की है साथ मे सगीत विद्या का भी राग रागनियो के साथ अच्छा वर्णन किया है ।

जाती हुई रानी के नुपुर की आवाज सुनकर राजा को चेत हो गया । जब उसने रानी को अर्ध रात्रि मे कहीं जाते हुए देखा तो एक बार तो उसे अपनी आखो पर विश्वास नही हुआ । लेकिन उसे पलग पर नही पाकर वह भी हाथ में तलवार लेकर रानी के पीछे-पीछे दवे पाव से चल दिया । रानी ने कुबडे को जाकर जगाया और उसके चरणो को छुआ । कुबडे ने उसे गारी निकाली फिर भी रानी एव उसकी दासी हँसती रही और उसकी मनुहार करती रही । रानी ने उस कुबडे के गले लग कर कहा कि वह उसके बिना नही रह सकती । लेकिन वे दोनो ऐसे लगे जैसे हस के साथ कौवा । रानी ने कुबडे के पाव दबाये तथा सभी तरह से उसकी सेवा की । यह देखकर राजा से नही रहा गया और उसने तलवार निकाल ली । लेकिन उसने विचार किया कि स्त्रियो पर तलवार चलाना कायरता कहलाती है तथा कुबडा जो दिन भर झूठन खाकर पेट भरता रहता है उसे मारने से तो उल्टा उसे अपयश ही हाथ लगेगा । यह सोचकर राजा ने तलवार वापिस रख ली ।

वहां से राजा यशोधर अपने हृदय को बज्र के समान करके पालकी मे बैठ कर चित्रशाला चला गया । रानी तो काम विह्वला थी इसलिये कुबडे के साथ काम क्रीडा करके वापिस महलों में आ गयी । अब वह राजा को जहरीली नागिन के समान लगने लगी । जिसके साथ क्रीडा करने मे राजा आनन्द की अनुभूति करता था वह अब विषवेलि लगने लगी । राजा को रानी की लीला देखकर जगत् से उदासीनता हो गयी । प्रात काल हुआ । उसकी माता चन्द्रमती भगवान की पूजा करके हाथ मे आसिका लेकर राजा के पास आयी । राजा द्वारा माता के चरण छूने पर उसने आशीर्वाद दिया । राजा ने अपनी माता से कहा कि उसने आज रात्रि को जैसा सपना देखा है उससे लगता है उसके राज्य का शीघ्र विनाश होने वाला है । इसलिए उसके वैराग्य धारण करने का भाव है । लेकिन माता ने कहा कि तपस्वी बनना कायरता है । जो राजा स्वप्न से ही डरता है वह युद्ध भूमि मे कैसे जा सकता है । इसलिए राजकाज करते हुए ही देवी देवताओ को बलि चढ़ा कर उनको प्रसन्न कर लेना चाहिए जिससे सारे विघ्न दूर हो सकें । नगर के बाहर कचाइण देवी है उसको बलि चढ़ाने से सब विघ्न दूर हो सकते हैं । लेकिन

राजा ने ऐसे किसी भी कार्य को करने का प्रतिवाद किया और हिंसा से कभी शान्ति नही मिल सकती, ऐसा अपना मन्तव्य प्रकट किया।

जीव घात जो उपजै धम्मु, तौ कौ अवर पाप को कम्मु।
जे ते लख चोरासी जाणि, ते सब कुटमु माइ तू जाणि ।।

रानी चन्द्रमती के विशेष आग्रह पर राजा यशोधर देवी के मन्दिर में गया और यह भाव रखते हुए कि वह मानों जीवित कुकुट है, आटे के कुकुट की रचना करवाकर उसी का देवी के आगे बलिदान कर दिया। इससे राजा को जीव हिंसा का दोष तो लग ही गया। देवी के मन्दिर मे से राजा अपने महल में आया और अपना सम्पूर्ण राजपाट अपने लडके को देकर स्वय वन मे तपस्या करने के लिए जाने का निश्चय किया। राजा मारदत्त ने जब यह कथा सुनी तो उसने भी कर्मगति की विचित्रता पर आश्चर्य प्रकट किया।

जब रानी अमृता ने यशोधर के तप लेने की बात सुनी तो वह भविष्य की आशका के भय से डरने लगी। इसलिए वह भी राजा के पास गयी और उसी के साथ दीक्षा लेने की बात कही। राजा ने पहले तो उसके वचनो पर विश्वास ही नही किया लेकिन रानी राजा को मनाने मे सफल हो गयी और उसने साथ-साथ तप लेने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

बालम बिनु किम भामिनी, किम भामिनी बिनु गेहु।
दान विहीनो जेम घरु, सील विहीनो देहु ।।२८८।।

राजा की स्वीकृति पाकर रानी वापिस अपने महल मे चली गई। वहा वह अपने भोजनशाला मे गयी। उसने बहुत से विषयुक्त लड्डू बनाये और उनमे से कुछ लड्डू लेकर वह वन मे गयी जहां राजा यशोधर एव चन्द्रमती बैठे हुए थे। अमृता ने दोनो को विषयुक्त लड्डू खिला दिये। लड्डू खाने के बाद पहिले चन्द्रमती मर गयी और थोडी देर बाद राजा भी वैद्य-वैद्य करता हुआ तडफने लगा। रानी अमृता को इससे बहुत डर लगा और उसने केश मु डाकर साध्वी का भेष धारण कर लिया और अपने पति को घसीट कर मार दिया। फिर वह जोर-जोर से रोने लगी। रानी का रोना सुनकर उसका लडका वहां आया और पिता को मरा हुआ देखकर मुंह फाडकर चिल्लाने लगा, साथ ही मे दूसरे लोग भी रोने लगे तथा रानी को सान्त्वना देने लगे। उन्होने ससार का विविध स्वरूप बताया और सन्तोष धारण करने की प्रार्थना की। सब लोग राजा यशोधर एव चन्द्रमती को श्मशान ले गये और उनका दाह सस्कार किया। यहीं से यशोधर एव रानी चन्द्रमती के भवो का वर्णन प्रारम्भ होता है।

राजा यशोधर मर कर उज्जैनी मे ही मोर हुआ और चन्द्रमती श्वान हुई। श्वान का अन्य जीवों के साथ स्नेह हो गया और वह मन्दिर के बाहर रहने लगा। एक दिन एक शिकारी बहुत से पक्षियो को पकड कर वहा लाया। उनमे एक मोर बहुत ही सुन्दर था। शिकारी ने उसको मन्दिर मे छोड दिया। वहा वह बहुत ही कौतुक दिखाने लगा। वह कभी कभी वहा नाचता रहता था। एक दिन घनघोर पावस का दिन था। मोर मन्दिर के शिखर पर चढ गया उसको वहां पूर्व भव का स्मरण हो आया। वह सब लोगो को जान गया। उसने अपनी चित्रशालाएँ देखी। अपनी नीली गर्दन को देखकर दुःख हुआ तो अपने आप अपनी चोच से घाव करके मर गया। चन्द्रमती मर कर कुत्ता हुई जिसको शिकारी ने महाराज को भेंट मे दिया। वह कुत्ता जो माता का जीव था, उसने मोर की गर्दन पकड कर मार डाला। उस समय राजा जो चौपड खेल रहा था, उसे छुडाने के लिए दौडा लेकिन कुत्ते ने उसे नही छोडा। राजा ने कुत्ते को मार डाला। इस प्रकार दोनो ने साथ ही प्राण त्यागे। श्वान मर कर फिर मोर हो गया और वह कुत्ता मर कर कृष्ण सर्प हुआ। मयूर एव सर्प मे स्वाभाविक वैर होता है इसलिए उसने देखते ही सर्प का काम तमाम कर दिया। इसके पश्चात् मोर मर कर बडी मछली हुआ तथा उस सर्प ने मगर की योनि प्राप्त की। उज्जैनी मे एक दिन एक सुन्दरी स्नान के लिए आयी, जब वह स्नान मे तल्लीन थी उस मगर ने उसे निगल लिया। तत्काल धीवर को बुलाया गया और उसने जाल डालकर उस मगर को पकड लिया तथा उसे लाठियो, घूसो एव लातो से मार दिया। उसके बाद वह मर कर बकरी हो गयी। कुछ दिनो बाद मछली भी पकड मे आ गयी। मरने के बाद वह भी पुन बकरा बन गयी।

एक दिन जब बकरा एव बकरी स्नेहासिक्त थे तब उनके मालिक द्वारा वह बकरा लाठियो से मार दिया गया। लेकिन उसने पुन बकरे के रूप मे जन्म लिया। कुछ समय बाद बकरी एक टाग काट दी गयी और धीरे धीरे वह मृत्यु को प्राप्त हुई। फिर वह मर कर भैसा हो गयी। और उसके पश्चात् दोनो का जीव मृत्यु को प्राप्त कर मुर्गा मुर्गी के रूप मे पैदा हुआ। एक दिन राजा को मुर्गा मुर्गी की लडाई देखने की इच्छा हुई लेकिन वह उनकी सुन्दरता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उन्हे वन मे छोड देने का आदेश दिया। वही पर जैन मुनि सुदत्त का आगमन हुआ। रानी ने उनसे धर्म कथा का श्रवण किया। सुदत्ताचार्य ने अहिंसा को जीवन मे उतारने पर बल दिया। साथ ही मे उसने यशोधर एव चन्द्रमती की कथा कही जिन्होंने आटे का मुर्गा मारने से सात जन्मों तक अनेक कष्ट सहे। राजा यशोमति ने एक दिन दोनो मुर्गा मुर्गी को मार डाला। लेकिन उन दोनों का जीव ही रानी के गर्भ में कुमार एव कुमारी के रूप मे अवतरित हुए। राजकुमार का नाम अभयरुचि

एवं राजकुमारी का नाम अभयमति रखा गया। राजा यशोमति ने जब सुदत्त को वन में तपस्या करते हुए देखा तो वह क्रोधित होकर उन्हें मारने को तैयार हुआ। लेकिन गोवर्धन सेठ ने राजा से मुनियो को न मारने की प्रार्थना की तथा उनकी महिमा के सम्बन्ध में राजा को बतलाया।

अभयरुचि एव अभयमति को अपने पूर्व भव की बात सुन वैराग्य हो गया। और उन दोनो ने सुदत्ताचार्य के पास जाकर मुनि दीक्षा धारण करने की प्रार्थना की लेकिन सुदत्ताचार्य ने दोनो की बाल अवस्था देखकर निम्न प्रकार से कहा—

> तुम दोऊ बालक सुकुमाल, कोमल जिसे पऊके नाल।
> पच महाव्रत दूसह खरे, ते तुम पासि आहि किम धरे ॥४६६॥

दोनो ने गुरु के वचन सुनकर अणुव्रत धारण कर लिये तथा कपडे उतार क्षुल्लक क्षुल्लिका की दीक्षा ले ली। उन दोनो ने राजा मारिदत्त से कहा कि सयोग-वश हम तुम्हारी नगरी मे आहार के लिए आ रहे थे कि तुम्हारे सेवको ने हमे पकड लिया और यहा ले आए। राजा मारिदत्त यशोधर के पूर्व भवो की कथा को सुनकर भयभीत हो गया तथा दोनो के पावो मे पड गया। उधर सुदत्ताचार्य ने अपने ज्ञान से अभयकुमार की बात जानकर तत्काल देवी के मन्दिर मे आ गये। राजा मारिदत्त आचार्य श्री को देखकर उनके पांवो मे पड गया। उसने देवी के मन्दिर को पूर्णत स्वच्छ करा दिया। उसने विनय पूर्वक अपने तथा दूसरों के पूर्व भवो के बारे मे पूछा। राजा मारिदत्त ने जब अपने पूर्व भवो के बारे मे जाना तो उसे वैराग्य हो गया। उसने पच मुष्ठि केश लोंच करके मुनि दीक्षा ले ली। भैरवानन्द जोगी भी उनके पांवो मे गिर गया, सब पाखण्ड भाव छोड दिये और मुनि दीक्षा देने के लिए निवेदन किया। सुदत्ताचार्य ने कहा कि उसकी आयु केवल २२ दिन है। जोगी ने यह जानकर कठोर तप साधना की और मरकर दूसरे स्वर्ग मे जन्म लिया। अभयरुचि एव अभयमति मर कर प्रथम स्वर्ग मे गये। इसी तरह मारिदत्त एव सेठ भी तपस्या के बाद स्वर्ग मे देव हुआ। आचार्य सुदत्त सम्मेद शिखर पर तपस्या करते हुए सातवें स्वर्ग में उत्पन्न हुए।

काव्य की विशेषताएँ

इस प्रकार यशोधर चौपई की कथा पूर्णत रोचक एवं धाराप्रवाह मे निबद्ध है। चौपई हिन्दी साहित्य की एक अनुपम कृति है जिसके सभी वर्णन अत्यधिक सरस एव सुन्दर हैं। कवि घटनाओ के वर्णन के साथ-साथ व्यक्ति विशेष एव स्थान विशेष का जब चित्रण करता है तो उनको भी सुन्दर एव रुचिकर शब्दो मे प्रस्तुत करता है। एक ओर वह स्थान विशेष की सुन्दरता के वर्णन करने मे सक्षम है तो

उसी के विकृत वर्णन मे भी वह अपनी योग्यता प्रस्तुत करता है। जहां एक ओर वह प्रकृति वर्णन मे पाठको का मन मोहता है तो दूसरी ओर घटना विशेष का वर्णन करके पाठकों के हृदय को द्रवित कर बैठता है।

कथा के एक प्रमुख पात्र है भैरवानन्द जिसके कारण ही सारा कथा स्रोत बहता है। उसी भैरवानन्द का जब कवि वर्णन करने लगता है तो वह स्वय भैरवानन्द बनकर लिखने लगता है। उसकी दीर्घ जटाएँ हैं। शरीर पर भस्म रमा रखी है तथा कानो मे मुद्रिका पहिन रखी है। भग चढा रखी है जिससे आखे एव मुख लाल प्रतीत होता है। रग से वह गोरे हैं और पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर लगते हैं।

भस्म चढाई मुद्राकान, अनही बूझे कहै कहान।
दीरहु जटा चढाए भग, नयन धुलावै वदन रग।
गोर वरण मनो पून्यो चदु, प्रगट्यो नाम भैरवानन्दु ॥३१॥

कवि श्मशान का वर्णन करने मे और भी चतुरता प्रकट करता है। मुनि अपने सघ के साथ श्मशान मे जाकर विराजते है। एक ओर श्मशान की भयानकता तो दूसरी ओर निर्ग्रन्थ मुनियो का वहीं ध्यानस्थ होना—कितना उत्तम सयोग है—श्मशान का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

सग सहित मुनि गयो मसान, मरे लोग डहिहि जहि थान।
मुड रुड दीसहि बहु परे, कृमि कीला लवि गधि घृण भरे ॥६०॥

जबुक स्यान गधि अरु काग, व्यतर भूत लपरिहा लाग।
डाइनि पिवहि रुधिर भरि चुरू, सूकै तरु वरि वासै उरू ॥६१॥

चिता बहुत पजलहि चौ पास, धूमानलु भमि रह्यो अकास।
नयननु देखत फटै हियो, वैवस भवनु जनकु विहि कियो ॥६२॥

इसी तरह कवि के देवी के वर्णन में वीभत्स रस के दर्शन होते है। उसके हाथ में त्रिसूल है तथा वह सिंह पर आरुढ है। गले मे मुड माला पहिने हुए है तथा उसकी जीभ बाहर निकले हुए है। आखे लाल हो रही हैं। ऐसा लगता है मानो अग्नि की ज्वाला उसके शरीर से ही निकल रही हो। उस देवी का पूरा शरीर ही रुधिर से सना हुआ था तथा पूरे शरीर मे सप डोल रहे थे।

ऐसे भयानक स्थान पर भी जब साधु आते हैं तो उन्हे देखकर सभी नत-मस्तक हो जाते हैं। राजा मारिदत्त ने जब अभयरुचि और अभयमति को वहां देखा तो वह उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गया—

को हरिहरु सकरु धरणेंपु, के दीसे विद्याधर भेसु ।
प्ररु सरूपका एह कुमारि, सुरि नरि किन्नरि को उनहारि ।।६८।।
यह रंभा कि पुरदरि सची, रौहिनि कय काजन विहि रचि ।
सीता तारकि मदोद्दरी, को दमयन्ती जोवन भरी ।।६६।।

प्रस्तुत काव्य मे कितने ही ऐसे प्रसग हैं जिनसे तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दशा का भी पता चलता है । उस समय जब बालक आठ वर्ष का हो जाता था तो उसे पढने के लिए चटशाला मे भेज दिया करते थे । राजा यशोधर को भी उसी तरह पाठशाला भेजा गया था । गुरु के पास पढने जाने पर घी गुड के लड्डू बना कर बाटा करते थे तथा सरस्वती की विनयपूर्वक पूजा की जाती थी—

पढन हेत सोप्यौ चटसार, घिय गुरा लाडू किये कसार ।
पूजि बिनायगु जिन सरस्वती जासु पसाइ होइ बहुमती ।।१३१।।
भाउ भक्ति गुरु तनी पयासि, पाटी लिखलीनी ता पासि ।
पढ्यो तरकु व्याकरण पुराण, हय गय वाहन आवध ठान ।।१३२।।

राजा वृद्धावस्था आते ही अपना राज्य अपने पुत्र को देकर स्वय आत्मा साधना मे लीन हो जाते थे । महाराजा यशोधर के पिता ने भी जब अपना एक श्वेत केश देखा तो उन्हे वैराग्य हो गया और राज्य कार्य अपने पुत्र को सौप कर स्वय तपस्या करने वन मे चले गये ।

अवर बहुत बैठे नरनाथ, पेष्यो मुहु दर्प्पनु लै हाथ ।
धवलो एकु कनेपुता केसु, मन वैराग्यो ताम नरेसु ।।१४०।।
राउ जसोधर थाप्यो राज, आपनु चल्यो परम तप काज ।
लीनो दीक्ष परम गुरु पास, तपु करि मुयो गयो सुर पास ।।१४४।।

पूरी कथा मे कितनी बार उतार-चढ़ाव आते हैं । प्रारम्भ मे भैरवानन्द के प्रवेश से नगर मे हिंसा एव बलि देने की प्रवृत्ति बढ़ती है तथा देवी देवताओं को प्रसन्न करके उनसे इच्छित वरदान मागने की प्रवृत्ति की ओर हमारी कहानी आगे बढ़ती है । यह बलि पशु पक्षी तक ही सीमित नही रहती किन्तु अपने स्वार्थपूर्ति के लिए मानव युगल की भी बलि देने मे तरस नही आता ।

लेकिन जब अभयरुचि एव अभयमति के रूप मे मानव युगल देवी के मन्दिर मे प्रवेश करते हैं तो कथा दूसरी ओर घूमने लगती है । उसका कारण बनता है राजा की उनके पूर्व जीवन को जानने की उत्सुकता । अभयरुचि बडे शान्त भाव से अपने पूर्व भवो की कहानी कहने लगते हैं । राजा यशोधर के जीवन तक

प्रस्तुत काव्य की कथा बड़े रोचक ढग से आगे बढ़ती है। पाठक बड़े धैर्य से उसे सुनते हैं। लेकिन महारानी अमिय देवी एव कोढो का प्रेमालाप उन्हें उत्सुकता एवं आश्चर्य मे डालने वाला सिद्ध होता है। नारी कहा तक गिर सकती है, धोखा दे सकती है और पति तक को विष दे सकती है, जैसी घटनाएँ एक के बाद एक घटती रहती है और पाठक आश्चर्यचकित होकर सुनता रहता है।

यशोधर एव चन्द्रमती के आगे के भवो की कहानी, उनका परस्पर का वैर विरोध ससार के स्वरूप के साथ कर्मों की विचित्रता को बतलाने वाला है। यशोधर एव चन्द्रमती सात भवों तक एक दूसरे के प्राणो को लेने वाले बनते हैं। उनके सात भवो की कहानी को पाठक मानो श्वास रोककर सुनता है और जब उसे अभयरुचि एव अभयमति के रूप मे पाता है तो उसे कुछ आश्वस्त होने का अवसर मिलता है। राजा मारिदत्त कभी भय विह्वल होता है तो कभी भयाक्रान्त होकर सभा स्थल से ही भागने का प्रयास करता है क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि मानो वह उसी के जीवन की कहानी हो।

काव्य का अन्त सुखान्त है। सैकडो जीवो की बलि करने वाला स्वय भैरवानन्द अपने पापो का प्रायश्चित करना चाहता है। और जब उसे अपनी आयु के २२ दिन ही शेष जान पड़ते हैं तो वह कठोर साधना मे लीन हो जाता है और मर कर स्वर्ग प्राप्त करता है। इसी तरह राजा मारिदत्त भी सब कुछ छोड़कर प्रायश्चित के रूप मे साधु मार्ग अपनाता है। यही नही स्वय देवी की भी प्रवृत्ति बदल जाती है और वह हिंसा के स्थान पर अहिंसा का आश्रय लेती है। पहिले उसका मन्दिर जहा रक्त एव चिल्लाहट से युक्त था वहा अहिंसा का साम्राज्य हो जाता है। अभयरुचि, अभयमति एव आचार्य सुदत्त सभी अपनी-अपनी तप साधना के अनुसार स्वर्ग लक्ष्मी प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार यशोधर चौपई एक अतीव सजीव काव्य है जिसकी प्रत्येक चौपई एव दोहा रोचकता को लिए हुए है। सचमुच १६ वी शताब्दि के अन्तिम चरण मे ऐसी सरस रचना हिन्दी साहित्य की अनुपम उपलब्धि है। क्योंकि यह वह समय था जब देश मे सामान्यजन मे भक्ति की ओर तथा अध्यात्म की ओर झुकाव हो रहा था। मुसलिम युग होने के कारण चारो ओर युद्ध एव मारकाट मची रहती थी इसलिए मनुष्य को ऐसे काव्य पढ़कर कुछ सीखने को मिलता था।

कवि ने काव्य समाप्ति पर निम्न मगल कामना की है—

सयलु सघु वदौ सुख पूरु, जब लगि गय जलधि ससि सूरु ।।५३५।।

मेघमाल बरसै असरार, घोष बजाए मगलचार ।
नि सुनि चित्तमन लावहु कोरि, हीनु अधिक सो लीजहु जोरि ॥५३६ ॥

कवि ने अन्तिम पद्य में अपनी रचना के प्रचार प्रसार पर भी जोर दिया है तथा लिखा है कि जो भी उसकी प्रतिलिपि करेगा, करवायेगा तथा उसे औरों को सुनायेगा उसे अपार सुख होगा । पुत्र जन्म एव सुख सम्पत्ति मिलेगी ।[1]

भाषा

भाषा की दृष्टि से यशोधर चौपई ब्रज भाषा की कृति है । गारवदास फफोदपुर (फफोदू) के निवासी होने के कारण ब्रज प्रदेश से उनका अधिक सम्बन्ध था । साथ ही मे वे ब्रज भाषा की मधुरता एव कोमलता से भी परिचित थे । इसलिए अपनी रचना मे सीधे सादे ब्रज शब्दो का प्रयोग किया है । नीचे दो उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(१) तोहि कहा एते सौ परी जो हौं कही सुन्दरि रावरी ।
विहिना लिख्यो न मेट्यौ जाइ, मन मौ सखी खरी पछिताहि ॥२२२॥

(२) एक नारि कौ नदनु भयो, अंसहर पास बधैया गयो ॥१४५॥

छन्द

यशोधर चौपई अपने नाम के अनुसार चौपई प्रधान रचना है । कवि के समय चौपई छन्द ब्रज भाषा का लाडला छन्द था तथा जन साधारण भी चौपई छन्द की रचनाओ को ही अधिक पसन्द करता था । चौपई छन्द के अतिरिक्त कवि ने दोहा, दोहरा, वस्तुबन्ध एव साटकु छन्द का भी प्रयोग किया है । चौपई छन्द के पश्चात् दोहा छन्द का सबसे अधिक प्रयोग हुआ है तथा दो वस्तुबन्ध एव एक साटकु छन्द का भी प्रयोग करके कवि ने अपने छन्द ज्ञान का परिचय दिया है । इन छन्दो के अतिरिक्त कवि ने अपने पाडित्य प्रदर्शन के लिए सस्कृत के श्लोकों, प्राकृत गाथाओ[2] का भी यत्र तत्र प्रयोग किया है । इससे मालूम पडता है कि उस समय जन साधारण की सस्कृत के प्रति भी अभिरुचि थी ।

अलंकार

अलकारो के प्रयोग की ओर कवि ने विशेष ध्यान नही दिया । सीधी-सादी

---

१ पढै गुनै लिखि देई लिखाइ, अरु मूरिख सौ कही सिखाइ ।
ता गुण वर्णि बहुतु कवि कही, पुत्र जनमु सुख सम्पत्ति लही ॥५३७॥

२ ८६ वीं पद्य प्राकृत गाथा का है ।

बोलचाल की भाषा मे काव्य रचना का मुख्य उद्देश्य होने के कारण उपमा एव अनुप्रास अलकारो के अतिरिक्त अन्य अलकारों का अधिक प्रयोग नही हो सका है ।

शैली

काव्य की वर्णन शैली बहुत सुन्दर एव प्रवाहक है । कवि ने कथा की प्रत्येक घटना को बहुत ही सुन्दर शब्दो मे निबद्ध किया है । कवि के वर्णन इतने सजीव होते हैं कि पाठक पढता-पढता आश्चर्यचकित होकर कवि के काव्य निर्माण की प्रशंसा करने लगता है । रानी एव दासी मे पर पुरुष के प्रसग मे जब वाद-विवाद होने लगता है तो पढने मे बड़ा आनन्द आता है । यहा उसका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

दासी—

सु दरि जोवनु राजधनु, पेषिन कीजै गव्वु ।
सवरु सीलनु छाडिये, अवसि विनसौ सव्वु ।।२०२।।
सुनि फुल्लार विंद मूढ जोति, छाडहि रयनु गहहि किम पोति ।
तजहि हसु किम सेवहि कागु, भूलौ भई खिलावहि नागु ।।

रानी—

परि जब मयनु सतावे वीर, तू न सखी जनहि पर पीर ।
मन भावतो चढै चित आणि, सोई सखी अमर वर जानि ।।२१६।।

इस प्रकार यशोधर चौपई कथानक, भाषा एव शैली की दृष्टि से १६ वीं शताब्दि का एक महत्वपूर्ण हिन्दी काव्य है । प्रस्तुत काव्य अभी तक अप्रकाशित है और उसका प्रथम बार प्रकाशन किया जा रहा है । राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों मे काव्य की एकमात्र पाण्डुलिपि जयपुर के दि० जैन बडा तेरहपंथी मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे सुरक्षित हैं । प्रस्तुत पाण्डुलिपि सवत् १६३० मर्गासिर सुदी ११ रविवार के दिन समाप्त हुई थी ऐसा उसकी लेखक-प्रशस्ति मे उल्लेख है । पाण्डुलिपि सुन्दर एव शुद्ध है लेकिन उसमे लिपि सवत् के अतिरिक्त लिपिकार का परिचय नहीं दिया गया है । पाण्डुलिपि के ४३ पृष्ठ हैं जो १०×४½ इञ्च ग्रन्थ आकार के हैं ।[1]

□ □ □

---

२ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची भाग–चतुर्थ–पृ०

यशोधर चौपई

॥ ॐ नम ॥ अथ यशोधर चौपई लिखते ॥

मंगलाचरण —

जयउ जिनवरु विमलु अरहतु सुमहतु सिव कतवरु ।
अमर णयण रणिम्यर वदिउ ।
उवसमिय फलूसरइ तिजय बधु दहधम्म णदिउ ॥

दोहा

पणविवि पच पमेठि गुरु अरकमि पुन्न पवित्त ।
णिसुणहु भव्व विचित्त कह जसहर तनउ चरित्त ॥१॥

फुनि पणवमि सामिणि भारहि, जासु पसाइ सुबुधि मइ लही ।
चद्रवदणि मृग णयणि विसाल, धवलवर वाहही मराल ॥२॥

अविरल विमल भास रस खाणि, वीणा दड सुमडिय पाणि ।
छह दरसनि माणी बहुभाइ, सरसै सामिणि होइ हाइ ॥३॥

पणविवि भाव सम्मुं गुरु सूरि, भासमि सुकह सुयण सुघु पूरि ।
गुर गूगुर चदन तिल तेल, जल चदन चरु पुष्फण एल ॥४॥

पूजमि पडिम जासु के भाल, खेत्रपाल सुमु करहु दयाल ।
लाजे दुरिजन ता कहि परछेद, बिनु कारण प्रगटहि बहु भेद ॥५॥

जे पर दुषसुखु माणहि आपु, मूढ रयणे दिनु विढवहि पापु ।
वगज्यो देनिहुराई रहै, बोलत बुरो पराई कहै ॥६॥

श्लोक

मुहपद्मजलाकार वाचासोतलसयुत ।
हृदय कर्त्तरि सयुक्त त्रिविधि दुर्ज्जनलक्षण ॥७॥

न विना परवादेसु दुर्ज्जनो रमतोजस ।
स्वान सर्व्वरस भोक्ते ममेध वितृना नप्यते ॥८॥

तिनको नाम न लीजे ओर दान पुण्य को घरे कठोर ।
ते सवहीनु दूरि परिहरौ, तिन अपतनु कोतातिन करौ ।।९।।
भलो ना कछु निपजे तिन पास, करत निहोरौ घरे उदास ।
तिनके बचन कीजहि कान, अर्थ जोवहि दोजहि जान ।।१०।।

श्लोक

नवन्ति सफला वृक्षा नवन्ति सजना जना ।
सुक्ककाष्ट च मूर्खं च न णवति भजतिज ।।११।।
जिनके वयनु न निकसै पोचा, निसि दिनु करहि दया पर रोचा ।
जे पर को चितवहि उपगारु, निर्म्मलु सुजसु भर्म्यो ससारु ।।१२।।
ते कलिमहु पचानन सीहा, तिन थुति करनि केम इक जीह ।
तिन सवहिनु सो विनौ पयासि, मो पर दया करहु गुण रासि ।।१३।।

दोहा

जे परभीर समुद्धरण, पर घर करण समत्थ ।
ते विहि पुरिसा अमरु करि, हरिस्यो जोरि विहत्थ ।।१४।।
पयडु महीयलि उत्तम बसु, निय कुल मान सरोवर हसु ।
पदमावती बस धवल जस रासि, तागुण सयल सकै को भासि ।।१५।।

आश्रयदाता का परिचय—

भारग सुतनु थेघु गुनगेहु, जिनवर पय अवुरुह दुरेहु ।
कीनै बहुत सतोष विहान, पिणिभव्व विच सचौदान ।।१६।।
निसि दिनु करै गुणी को मानु, धर्म्मु छाडि चित धरै न आनु ।
मग कैलई निवसै सोइ, जहि श्रावग निवसै बहु लोइ ।।१७।।
थेघु सनै कवि गारवदासु, निसुनि वयनु चित भयो हुलासु ।
हुँ कर जोरि भणै गुणगेहू, सफलु जन्मु मेरो करि लेहू ।।१८।।
सलिल कथा जसहर की भासि, जिम गुरु पास सुनी तुम रासि ।
जे बहु आदि कविसुर भए, अरथ कठोर वरित रचे नए ।।१९।।
तासु छाह ले मौसौ भासि, कवितु चौपही वध पयासि ।
गारमु भनै निसुनि कुल सूर, परियन विवस आस रस पूर ।।२०।।

कवि द्वारा अपनी लघुता प्रकट करना—

पढयो न मैं व्याकरण पुराण, छद नाइ अक्षर को ज्ञाता ।
जौ वुधि विनु कछु कीजे जोरि, तौ बुधजन हसि लावहि षोरि ।।२१।।

तौ कहुमि तिनके पालाणि, चाहै सम्मु जाइ तसु तालि ।
बार बार पनविवि जिनराउ, सरसै सामि तिसु गुर पसाउ ॥२२॥

गाथा पयडिय आगम सुत अंतिम तित्थयर वीर समसरण ।
गणि गोयमेण भणिय, णिसुनिय सिरिसेणि एन कह विमला ॥२३॥

वीरवानि सुनि गोयम भनी, प्रगटी कथा जसोधर तनी ।
सुनि श्रेणिक प्रगटी कलिमाह, वारव भने तासु की छाह ॥२४॥

कथा का प्रारम्भ—

जबूदीपु सुदसनु मेर, लवनोदधि वेढ्यो चहुफेर ।
भरह खेतु दाहिनि दिसि बसी, पेषत मनु सुर केरौ लसै ॥२५॥

रायगेहु पाटन सुभ ठौरु, जा सम महियलि णयरु ण मोरु ।
पच बरएा मनि दीसै पच्यौ, सोमहि तनौ तिलहु विहि रच्यौ ॥२६॥

मारिदत्त राजा—

चारि पवरि सतखने अवासा, वन उपवन सरवर चौपासा ।
तहि पुर मारिदत्त् महिपालु, सूरज तेजु दुवन रसालु ॥२७॥

जोवनवतु राजमद भर्यौ, अति प्रचडु महियलि अवतर्यौ ।
रूपिनि नाम गेह वर णारि, अति सरूप रभा उनहारि ॥२८॥

कोक कला सगीत निवास, सेवहि अगरु कुसम रसवास ।
ता समेतु मानै बहु भोगु, निसुनहु अवरु कथा को योगु ॥२९॥

भैरवानन्द का आगमन—

योगी एकु तहा अवधूतु, राज गेह पुर आइ पहूतु ।
भस्म चढाइ मुद्रा कान, अनही बूझै कहै कहान ॥३०॥

दीरह जटा चढाए अग, गगन घुलावै बदन रग ।
गौर बरएा मनौ पूर्न्यौ चदु, प्रगट्यौ नाम भैरवानदु ॥३१॥

काहू आय राइ सो कह्यौ, जोगी एकु नगर मौ रह्यौ ।
तत्र मत्र जानै बहुभाइ, जोगी गुन गरुवो सुनि राइ ॥३२॥

राजा भनै जाहू ता पासि, लै आवहु बहु विनउ पयासि ।
जो किंकर नरवे पठायो, पवन वेग जोगहु गयो ॥३३॥

पभनै स्वामी करहु पसाउ, वेगै चलहु बुलावै राउ ।
आडंबर सौ जोगी चल्यौ, कौतिग लोग नगर को मिल्यौ ॥३४॥

योगिहि पेषि राउ गहमह्यौ, ग्रासनु छाडि पाइ परि रह्यौ ।
करु उचाइ तिनि दई असीसा, हूजौ राजु तुम्हारे सीसा ।।३५।।

श्लोक

पुष्पदंतप्रभालोके यावौ सुरतरंगिनी ।
तावत् मित्रसम जीव, भरिदत्तो नराधिप ।।३६।।

आशीर्वाद—

हौ तोकौ सुनि तूठो राइ, माँगि मागि यो हियैइ समाई ।
अनै अमरुहौ महि अवतर्‌यो, जानमि सयलु महागुन भर्‌यौ ।।३७।।
व्यंतर भूत हमारे ईठ, रावनु रामु भिरत मैं दीठ ।
जब भारथु वीत्यौ कुरषेता, पेष्यौ भीमुह कारै देता ।।३८।।
जबहि कंसु नारायन हयौ, पेषत जरासिंधु क्षौ गयो ।
बरणै भुवनु जिते महि भए, मौ आगैं च्यारयौ जुग गए ।।३९।।
हूँ कर जोरि भन्यौ तब राइ, पुण्य हमारौ भयौ सहाइ ।
तौ मो तेरो दरसनु भयो, देषत पापु हमारो गयौ ।।४०।।
जौ तूसौ किमि मगमि प्राणा, करहि अमरु ग्ररु चलमि विवाना ।
एक छत्र ज्यौ ग्रविचल राजू, इतनै करमि हमारो काजू ।।४१।।
पाखडी बोलै धरि ध्यानु, साचौ जाको फुरै न ज्ञानु ।
पुजवमि राय तुमारी आसा, होहि ग्रमरु ग्ररु चलहि ग्रकासा ।।४२।।

चंडमारि देवी का वर्णन—

एकु बचनु करि मेरौ एहु, जैतो इन वार्ता नकी गेहु ।
चंडमारि देवी ग्राप पनो, बहु विधि पूजा करिता तनी ।।४३।।
जे ते जीव जुयल सब ग्रानि, नरवर ग्राषिनि सुनि गुणषाणि ।
दैवलि सब देवी कै थाना, सिद्धवमि कायु निसुनि सिध जाना ।।४४।।
तब सुनि राव मूढ मति भयौ, राजा राजु करत परिहरौ ।
योगी तनी कुमति प्रभु षुह्यौ, कुंजर उवरि राउ ग्रारुह्यौ ।।४५।।
कीयौ बहुतु योगी को मान, गयो तहा देवी को थान ।
योगी देवी ग्रगतु नरेसु, किंकर को दीनौ उपदेसु ।।४६।।

देवी के लिए जीवों को पकड़ कर लाना—

इतनी करहु हमारी काजु, देविहि बलि अब लावहु आजु ।
राव वयनु सुनि आए घरे, वन भी जीव जाय पाकरे ।।४७।।

हरिण रोझहू सूकर सिवसान, महिस्स मेस छेरे लवकाना ।
कुंजर सीह वाघ फणि नोरधा, लारी आदि गनै को औरा ।।४८।।

जेते जीव पिये सब अषि, लए सितर करि पसु पषि ।
फुनि कर योरि पयासहि सेवा, हुस नर जुबलु न पायो देवा ।।४९।।

तव नर वे अवरा मिसो कही, मनुव युवलु बिनु पूजा रही ।
मेरी कायु सवारहू एहु, मनुव जुवलु गहि देवेहि देहु ।।५०।।

निसु दिनु रहे हिंस मति भई, चव कर्म्म कक्कंश लिइ ई ।
दस दिसि गए राय उपदेस, मठ विहार वन फिरहि असेस ।।५१।।

सुवत्त मुनि का विहार—

निसुनहु भव्व कहतरु आनु, दया धर्म्म गुणसील पहानु ।
तहि अवसरि सुदत्त मुनि सूर, कर्म्म पयडिथ्यो कीनी चूरि ।।५२।।

मुद्रा नगन कमडर हाथ, बहुत रिषीश्वर ताके साथ ।
भवतु भवतु सो तीरथ तान, पेथ्यो तिवनु केवल नान ।।५३।।

तिहि नयरी आयो मुनि नाहु, जा सिवरमनि रमन को गाहु ।
भव्व कुमु पयडिवोहन चंदु, नाय नरिंद पुरन्दर वंदु ।।५४।।

श्लोक

ताम मुनिवरु पत्तु तव तत्तु गुण जुत्तु सजमतिलउ ।
कोह-लोह-मय-मोहवत्तउ, बहु मुनिवर परियउ ।
सील जलहि सिवरमनि रत्तउ, तव कम्मा सव सवरणु ।
भव्व सरोरुह मित्तु, अवरहीनु अनग हरु निम्मल सुचरित्तु ।।५५।।

जहि णदन वनु नरवे तनौ, दल फल पल्लव दीसै घनौ ।
जहि वसत फूली फुलावाइ, कोइल मधुरी सादु कराइ ।।५६।।

चुमु चुमु सति पखी सुक मोर, सुरकामिनि मोहै सुनि घोर ।
चैत्र मासु सुदि गणलु वसतु, गुजारै मधुकरु मयमतु ।।५७।।

भनै रिषीसुर वमु अवलोइ, इहि ठा मुनि थिरु ध्यानु न होइ ।
इहि वण केम जतीसुर वसै, निवसत मयनु भुजगमु डसै ।।५८।।

इक सोरण फूली फूल वादि, पेषत होइ महा तपु वाधि ।
जहि निवसत मूसें मन चारु, नासैं तपो तनौ तप चौर ।।५६।।

जहि वन घन गध्रवं निवासु, विलसहि सुर कामिनि रस वासु ।
निवसत होइ सील की हानि, मुनिवरु छाडि चल्यौ मन जानि ।।६०।।

श्मशान का दृश्य—

सग सहित मुनि गयो मसान, मरे लोग दहिहि जहि थान ।
मु ड रु ड दीसहि बहु परे, कृमि की लालचि भषि भ्रुण भरे ।।६१।।

जबुकसान गधि श्ररु काग, श्रसुर भूत अपरिहा लाव ।
डाइनि पिवहि रुधिर भरि चुरू, सूकं तरु वढि बासै उरु ।।६२।।

चिता बहुत पजलहि बौ पास, घूमानलु भमि रह्यो प्रकास ।
नयननु देषत फटै हियो, कैंवस भवनु जनकु विहि कियो ।।६३।।

तहि ठा पेषि परासगु ठानु, सघ सहित मुनि हान.........।
ग्रनुवयब्यर तासु के सग, चपत्तु सुम सम कोमल अग ।।६४।।

तिनहि सकोसल मुनिवरु जानि, पभन्यो सुगुरु सरस रस वानि ।
निसुनि अभयरुचि नाम कुमार, लेहु भोजु तुम नयरि मझार ।।६५।।

बहिन भाई द्वारा नगर मे भिक्षा के लिए जाना—

वालक तुम जौ करहू उपासु, आरति उपजि होइ तप नासु ।
सुनि गुरु वयनु वहिनि अरु वीरु, चद्र बदन सम कनक सरीरु ।।६६।।

लेकर पुत्र चले निरगथ, कुमरु कुमारि नगर को पथ ।
तहि अवसर जन राजा तने, ढूढत फिरैं जुवल बन घने ।।६७।।

देवी बलि कारण आतुरे, दोऊ दृष्टि तासु की परे ।
पभन्यो कूकि सफलु भयो काजु, ए बलि पूजा दीवे आइ ।।६८।।

लषण बत्तीस कनक सम देह, पकरि चलै देवी के गेह ।
जनौ रविचद्र राहु पाकर्यो, जनौ कुरगु केसरि वसपर्यो ।।६९।।

चिन्तन—

सजम कर शील निरमले, तिनहि पकरि जब किकर चले ।
ता मन चितै श्रमंकुमार, जीवनु मरनु जासु एक सारु ।।७०।।

पेख्यो बहिनि वदनु अवलोइ, जान्यो मत जिम डरपति होइ ।
पभन्यो निसुनि अभैमति वीर, किम सु दरि संकुचहि सरीर ।।७१।।

मुह मयंक किम होहि मलीन, ए किम करहि हमारी हीन ।
जो जिन सासन आगम कह्यौ, हम गुरु पास सुदृढ़करि गह्यौ ।।७२।।

जीव हि कोई सकै न मारि, काया थिरु न होइ संसारि ।
ताते मुनिवर करहि न लोहु, काया ऊपरि छाडहि मोहु ।।७३।।

छूटै आवन रापै कोई, तिम अनछूटै मरणु न होइ ।
बहिनु लियह ससारु असारु, एकुइ धर्म्म उतारण हारु ।।७४।।

दोहा

छिज्जउ भिज्जउ जाऊ, बहिनु लिएहु सरीरु ।
अप्पा भावहि निम्मलऊ, जे भावहि भवतीरु ।।७५।।

कम्मह केरी भाव मुनि, देहु अचेयनु दव्वु ।
जीव सहावें भिन्नु इहु, बहिनुलि बुज्झहि सव्वु ।।७६।।

अप्पा जानहि नानमऊ, अन्नु परायउ भाउ ।
सो छडेविनु भोवहि, विसावाहि अप्प सहाउ ।।७७।।

अट्ठह कम्मह बाहि रऊ, सयलह दोसह चित्तु ।
दसन नान चरित्तमऊ, भावहि बहिरिंग नित्तु ।।७८।।

अप्पैं अप्पु मुनत्तु जिउ, सम्माइट्ठि हवेइ ।
सम्माइट्ठी जीवु फुडु लहु कम्मे मुच्चेइ ।।७९।।

समिकत रयनु न दीजै छाडि, हम सो सुगुर कह्यो जो टाडि ।
बार बार किम कहिए वीर, सु दरि होइ अडोल शरीर ।।८०।।

मायर वचनु निसुनि सुकुमारि, सारद मयक वयन उनहारि ।
तुम जानी भयभीत शरीर, तो मो सिख दीनी वर वीर ।।८१।।

ताते वीर तुम्हारो न्याव, तुम जाणो आगमनि परजाउ ।
जानमि मरणु पहूच्यो आनि, डरपमि नही वीर गुरु वानि ।।८२।।

को काको ससार असारु, हिडिउ जीवे लेतु अवतारु ।
सो कुलि को जा लईन वीर, सो कुचु कोवु न सह्यौ सरीर ।।८३।।

जे हम सात भवतर फिरे, ते किम वीर वेगि वीसरे ।
जिनवर धर्म्मु सुगुरु की कह्यौ, दई दई करि सो हम लह्यौ ।।८४।।

जिनवरु जपत मरन जो होइ, याते भलो न भायर कोइ ।
सो किम भायर दीजे छाडि, हो सन्यासु रही मन माडि ।।८५।।

गाथा

मुणि भोयणेन दव्व, जस्स सरीर पिषीनु नव यरण ।
सन्नासे गय पान तन्नगय कि गय तस्स ।।८६।।

दाढग्रो धीर सिरावमह्यो, भायर वहिनि मोनु तव गह्यौ ।
गहि कर किंकर चाले धीठ, मारिदत्त कारज मन इठ ।।८७।।

चंडमारि देवी का वर्णन—

एहु चले देवी के थान, जीव जुवल जहे बधे भ्रान ।
बाजहि वाजे समिडो दुनो, नाचहि जोगी अरु जोगिनी ।।८८।।

वाजहि तूर भयान भेरि, जनो जमु त्रिभुवनु मारे घेरि ।
जहु देवी बैठी बिगराल, मड पुछ यो महिष की षाल ।।८९।।

हाथ त्रिसूलु सिंह आरुही, मुडनु को करि काठो गुही ।
वरडे दत जीह वाहिरी, वारवार मुखु वावे षरी ।।९०।।

अरुण नयन सिर सूधे वार, आनहूवर्ई अगिनिकी ज्वाल ।
रुधिरु उवटनो जाकै अग, आस पास बिढि रहे भुजग ।।९१।।

आमिषु भषे उठ लरकाइ, महू नस केलै षरी अह्याइ ।
करि कटाष जव देवी हसो, पेषत गर्भु नारि को षसे ।।९२।।

जीव भषण को अति आतुरी, जनो जम रूप आणि अवतरी ।
पेषत षरी भिहावन ठोरु, नीको कहा तासु महि ग्रोरु ।।९३।।

श्लोक

भयभीत सदा कूर्य निर्द्दयोपलभक्षिनी ।
निर्ध्विनी जीवघातिश्चेदृशी कस्य भवे प्रिया ।।९४।।

साधु साध्वी की सुन्दरता का वर्णन—

जहु योगी राजा नर ओर, गहि किंकर लाए तहि ठोरा ।
कुमरु कुमारि सकोमल अग, केसरि चप कुसुम सम रग ।।९५।।

नर वेमन पेष्यो अवलोइ, मनुव जुवलु इहि रूपन होइ ।
अमरु पुरदरु की ससि सुरु, किम मनगु मानिनि मनचूरु ।।९६।।

को हरि हरु सकरु धरणेसु, के दीसे विद्याधर भेसु ।
प्रतिसुरूप का एह कुमारि, सुरि नरि किन्नरि की उनहारि ॥९७॥

यह रभा कि पुरदरि सची, रोहिनि रूप कवन विहि रची ।
सीता तारा कि मंदोदरी, को दमयती जोवन भरी ॥९८॥

पोमावेसर सेवन देवि, नाग कुमारि रही तपु लेवि ।
कै प्रनगु जब संकर डह्यो, तब हो रति विधवा पनु लह्यो ॥९९॥

ताको विरहु न सक्यो सहारि, तौ बालक तपु लियो विचारि ।
कै यह देवी मानो होइ मैरी बलि पूजा अवलोइ ॥१००॥

सुप्रसन्न हुइ भाइ एह, भेषु फेरि करि निरमल देह ।
कुसुमावलि वहिनि मो तनो, कै यह तासु कोषि की जनो ॥१०१॥

पुत्री पुत्रु तासु हो भयो, निसुन्यो तिन बालक तपु लह्यो ।
पेषि रूपु मन बाढ्यो मोहु, राजा तनो गयो गलि कोहु ॥१०२॥

राजा द्वारा प्रश्न—

तब हसि नरवे वाचाभनो, सुदर पभरिए बात आपनी ।
देसु नयरु कुलु माता बापु, सुदरि कवन कौन तु आपु ॥१०३॥

अति सरूप तुम दीसहू कौन, कारण कवन रहे गहि मौन ।
किम वैराग भाव मन भयो, बालक वैस केम तपुलयो ॥१०४॥

अभयकुमार का उत्तर—

राय वयनु सुनि अभयकुमार, भासै विहसि दया गुणसार ।
आकुरतु बरते असमान, तह किम मेरो धर्म्म कहान ॥१०५॥

सठ पास जिम तरणि कटाय, वायस जेम कुहारि दाष ।
सोवत आगे जेम पुरानु, जिमविनु नेहहि कीजै मानु ॥१०६॥

सरस कथा जिम मूरिष पास, कीनी जैसी किरपन आस ।
जिम षल को कीनो उपगास, जिम विनु भूषहि छरस अहारु ॥१०७॥

बहिरे आगे जैसो गीउ, जिम सीतज्वुर दीनो घीउ ।
माइ पिता विनु जैसो आरि, जिम सिगार पिया विनु नारि ॥१०८॥

अधहि पास निरतु जिम कियो, जिम धनु अनथायो अनदियो ।
ऊसर खेत बए जिम धानु, जैसे भाव भक्ति विनु दानु ॥१०९॥

जिम एवि हूल जाहि प्रभु जानि, तेम हमारी धर्म्म कहानि ।
जहि आनदु करत जिय घात, तिहि किम राय हमारी बात ॥११०॥
जीव जुवल जह बधे वराक, देविहि बलि पूजा कताक ।
ताहि ठाकरै धरा हरि कौनु, ताते राय रहे गहि मौनु ॥१११॥
मारिदत्त मति निरमल भई, मानहु उतरि ठगौरी गई ।
राज पुरवुरु हवर सूर, बाजत बरजि रहाए तूर ॥११२॥
जोगी चक्कु जुस्यौ हो घनौ, बरन्यौ लोगु सयलु आपनौ ।
सयल लोक मुनिवर मुह पेषि, राषे जन कुचित्र के लेषि ॥११३॥
भनै राउ सुनि बाल जईस, जौ परि तेरौ मनह नरोस ।
तौ पयडेहि कथा आपनी, जैसी बीत्ती पंषी सुनो ॥११४॥
सुन्दर जती सयलु मह साखि, जो अनुभई सुनी गुरपासि ।
जोनि सुनो सौनि सुनो एह, जो न सुनै तसु कीजै केह ॥११५॥
आसिकु दे बोल्यो रिषि राउ, आन्यो राइ तनो सुभ भाउ ।
निसुनि देव दिढ मन थिरकान, पभणमि अपनी कथा पहान ॥११६॥

वस्तु बधु

ता अभयसुरुचि राय वयनेणा ।
आहासइ कुमर गुरु, सु हमवाणि सुकुमाल गत्तउ ।
जो सुह मग्ग पयासयरु, धम्म कह तरु एहु ।
नि सुनहू सुयज विचित्र कहा बत्त सुन तह दद्धू ॥११७॥
भासे अपनी कथा कुमारु जामन तिनु कचनु एक सारु ।
सुनि महिमा निरिण माननहार, भोग पुरदर राजकुमार ॥११८॥

अवन्ती देश एव उज्जयिनी नगरी—

देसु अवती नयरि उजैनि, भोगभूमि सम सुष की सैन ।
वन उपवन सरवर कुव वाइ, पेषत अमर बिलवहि आइ ॥११९॥
दल फल सघन कुसुम रस वास, कलप बिरष सम पुजवहि आस ।
मढ मंदिर सतषरणें अवास, एक समान बसै चौपास ॥१२०॥
सुरह रस मदार सुर समलोगा, धन कन कचन बिलसहि भोगा ।
वरण वयरि छत्तीसो कुरी, जनकु सु धनपति निज रचि धरी ॥१२१॥

जसोहु राजा एव चन्द्रमती रानी—

तहि पुरि नरवे नाम जसोहू, नियधन इद्रहि लावै षोहु ।
चद्रमती राणी ससि वयणि, मद गज गमनि एण समनयणि ॥१२२॥

कोमल तन कुच कठिन उतंग, जनु लीकू छुह किये तुरंग ।
चौना हंस वय सब जानि, अतेवर सवल हुषि पहानि ।।१२३।।

राजु करत पालत नय नीति, इहि विधि भये बहुत दिन बीति ।
पुत्र वेलि जिमि लीनी पोषि, नदनु भयो तासु की कोषि ।।१२४।।

पुत्र का जन्म—

निसुनि राय नदनु अवतरयौ, बाढ़्यो रहसभाव सुष भर्यो ।
कोलाहलु बदीजन कियो, दीनौ दानु उल्हास्यो हियो ।।१२५।।

श्लोक

पुत्रजन्मोत्सव नित्वा विवाहो शुभसंज्ञका ।
इष्ट-सजनमेलाप ससारोक-महासुख ।।१२६।।

यशोधर नाम रखना—

पाषरु ज्यारै सुजस की लागि, असहरु नामु धर्‍यौ इह आनि ।
बाल विनोद नारि मनु हरै, नितु नितु बाढे कर सबरै ।।१२७।।

आठ वरिष बीते सुष माहि, बालकु माइ पिता की छाहि ।
नयण पेषि रज्यो परिवारु, सूरतेय सम राजकुमारु ।।१२८।।

अध्ययन—

पढ़न हेत सौंप्यो चटसार, धिय गुरा लाडू किये कसार ।
पूजि विनायगु जिन सरस्वती, जासु पसाइ होइ बहुमती ।।१२९।।

भाउ भक्ति गुर तनी पयासि, पाटी लिषि लीनी ता पासि ।
पढ़्यो तरकु व्याकरण पुराण, हय गय वाहन आवधठान ।।१३०।।

पढि गुने सयलु पिता पहु गयो, सिर भु वनु करि अको लयो ।
पेषि पुत्रु सुषु उपज्यो गात, फुनि माता पहु पठयो तात ।।१३१।।

चद्रमती भेंटो पग परयो, पुत्रहि देषि हियौ सुष भरयौ ।
रूपयस विद्या गुण खानि, सफलु जनमु माता तहि मानि ।।१३२।।

खेसो माइपिता कोमाहु, पयनै जननि अमरु चित होऊ ।
पेषि तरुनु नदन नर नाहु, बंस बेलि हित ठयो विवाहु ।।१३३।।

कुमारि पचसै रायसु तनी, एक एक अछरि सममनी ।
कनकु सुमबन तनी कट कोधु, चमकत चौकुल गावति चौषु ।।१३४।।

नयन वयन जोवन सुकमारि, जनौ सोरन फूली फुलवारि ।
भयो विवाहु जसोधर तनौ, सुयन कुटम सुषु उपज्यौ घनौ ॥१३५॥

अमिय महादेवी पटराणि, पेषत रुपु अनग की हानि ।
नयन वयन कुच परी अनूप, मानहु रची पुरदरि रूप ॥१३६॥

भूल्यो कुमरु भोगत सुलग, बिछुरत डाहू परै दुहु अग ।
एक दिवस जसहर को ताउ, सभा सहित सुस्थित महिराउ ॥१३७॥

अवर बहूत बैठे नरनाथ, पेष्यौ मुहु दर्प्पनु लै हाथ ।
धवलो एकु कनपुता केसु, मन वैराग्यो ताम नरेसु ॥१३८॥

मानहु कहतु पुकारै कान, एर बुढापे केसहि दान ।
करिहै बुरौ वुढापौ हाल, दृष्टि पतनु अरु हालै खाल ॥१३९॥

श्लोक

जरामुष्टिप्रहारेण कुब्जो भवति मानव,
गत जोवन मानिक्यां निरीक्षति पदे पदे ॥१४०॥

जब लगि देह न व्यापे व्याधि, तव लगि लेमि परम पदु साधि ।
विरकत भाउ राउ मन भयो, राजु गेहु तिन जौ तजि दयो ॥१४१॥
विरक्तस्य तृणं राज्य, सूरस्य मरणं तृणं ।
ब्रह्मचारी तृणं नारी, ब्रह्मज्ञानी जगस्त्रिणं ॥१४२॥

राउ जसोधर थाप्यो राज, आपुनु चल्यो परम तप काज ।
लीनो दीक्ष परम गुरपास, तपु करि मुयो गयो सुरवास ॥१४३॥

महाराजा यशोधर का शासन—

महियलि राजु जसोधरु करे, हरि सम राजनीति अधोहरै ।
नयरि उजैनी स्वर्ग समान, करै राजु जसहरु तहि थान ॥१४४॥

पुत्र जन्म—

अमिय महादेवी सुरतिरी, बहुत दिवस मानि निवसिरी ।
एक नारिको नदनु भयो, जसहर पास वधैया गयो ॥१४५॥

तहि सबु कुटमु महासुख भर्यो, मनो जिन जननि देवु अवतर्यो ।
बाढ्यो कुमरु रूप गुण सारु, धरचौ जसोमति नाम कुमार ॥१४६॥

कियो जसोमति तनो विवाहु, सुवन अनदु दुवन उर दाहु ।
दै जुगराजु पट्ट वैसारि, मगल घोष कलस सिर ढारि ॥१४७॥

अन सेवग सब सौंपे नाहु, आपनु भोग करे वर नाहु ।
कबहू सभा बैठे थाइ, निसुदिनु पिय भोगवत बिहाइ ।।१४८।।

सुनि सपै निवास गुनरासि, नारि चरितुही कहमि प्रमासि ।
मारिदत्त सुनि देषिह कानु, जसहर राजा तनौ कहानु ।।१४६।।

तहि अवसरि सुखमो दिन एक, जसहर राउ राज की टेक ।
सभा उठी दिनयरु अथयो, रानी तनो बुलावो गयो ।।१५०।।

ता महल्यो बोले सिर नाइ, रानिहि तुम बिनु नू सुहाइ ।
चाहइ बाट तुम्हारी नाहु, जिम जलहर विनु वारि साहु ।।१५१।।

तिम तुम विनु रानो कलमलौ, जोबनु सफलु देपु अवचलौ ।
निसुनि वयनु तब नरवे हसै, रानी पुनि चित ताकै बसै ।।१५२।।

जेसौ भवरु उमाह्यो वास, गुण रति रग रवण की भ्रास ।
चल्यौ राउ रानी के गेह, जेम हसु हसिनि कै नेह ।।१५३।।

दोहा

यशोधर एवं अमृता का प्रेम—

एक हिरावै सुख नही, जौ न दोवराचति ।
मालुति मन मधुकर वसै, मधुकर न मालु ति ।।१५४।।

चौपई

चपक मला अरु शसिरेह, दोऊ सषी कनक सम देह ।
दोऊ छयल चतुर परबीन, जोवन साम कटि षीन ।।१५५।।

अमिय माहादे तनो षवासि, निसु दिनु निवसहि रानी पासि ।
राय तनोक रूप कस्यो आइ, चित्र साल ले गई चढाइ ।।१५६।।

राउ पेषि रानी विहसाइ, पालिक ते उतरि अकुलाई ।
राय विहसि कर पंचो चीर, उघर्यो रानी तनो शरीर ।।१५७।।

सावे टारि जनकु विहिगवधो, मानहु कनकु अगनि ते कढयो ।
किण्ल करीक्यौं वैनीफरो, जनुकु गरुड भै नागिनि दुरे ।।१५८।।

विहिसति दत पक्ति ऊजरी, जनो घन मो कोंधी बीजुरी ।
चचल नयन मरोरति अगु, जनु कुरगि विछोहे सगु ।।१५६।।

हाव भाव विभ्रम सविलास, रुलु घुलंति मधुकर रस वास ।
रम्यो सुरतु सुषु उपज्यो गात, सोयो राउ भई अध रात ।।१६०।।

कुबड़े द्वारा सगीत प्रदर्शन—

मारिदत्त यहु निसुनहि आन, नादु पर्‍यो रानी कैं कान ।
हरित झाल निवसै कूबरौ, व्याप्यो रोम छुवाहू वरौ ।।१६१।।

वरो सुकठी गावे गीउ, सो निसि दिनु वहरावे जीउ ।
राग छत्तीस मुनै बहु भेय, भूलहि सुर कामिनि सुनि गेय ।।१६२।।

प्रथम रागु भैरो परभात, सुदरि निसुनि उल्हासी गात ।
ललित भैरवी कीनी रागि, जनुकु विरह वन दीनी आगि ।।१६३।।

रामकरी गूजरी सुठान, निसुनत मयन हुई जनोवान ।
आसासैं धूमिलवे भाउ, सुनि गज गामिनि भयौ उमाउ ।।१६४।।

गौरी परी सुहाई नादु, चन्द्रवदनि मोही सुनि सादु ।
करि नषारु सुकोमल भाव, भामिनि भूलि गई अभिलाष ।।१६५।।

माला कोश जब निसुन्यो बाल, नियतन मयन झलाए झाल ।
मारु जैतसिरी की छाह, जो सुभटनु मीठो रण माहु ।।१६६।।

टोडि हि वैंरारी सो सगु, कामनि विरहु मरोस्यौ अगु ।
भोब परासो अवर अडान, सहिलहि परभ्यो विरहु रसु कान ।।१६७।।

करि कामोद ठकुराई रागु, वनितहि बरघो मयन पुर वागु ।
सुनि हि दोल नारि कर मरी, मक्षिस बुद्धि भ्रम जनौ परी ।।१६८।।

करि कल्यान अवरु कानरौ, मेहिनि कान सुहाई परौ ।
केदारौ कीनौ अधरात, मृगलोचनी पसीजो गात ।।१६९।।

रागु विभास अवरु वडहसु, कीनौ जब हरि मारघो कसु ।
कुविज कठूह राई गूजरी, कीनी राम सिया जब हरी ।।१७०।।

रागु विरावरु अरु वगाला, तिरियहि तई कुसम की माला ।
दीपकु वडोरागु जव करै, जासु तेज उठि दीपकु वरे ।।१७१।।

कियो वषार बघु सरुमेलि, सीचि मयन विरहु की वेलि ।
विहागरौ सूहे सौ जोरि, जनु सुजान रसु लियो निचोरि ।।१७२।।

मेघ रागु जब लियो नवाजि, वरसैं रिमिझिमि जलहरु गाजि ।
अवर मलार्वैं गौड मलार, विनुही वादर परैं फुसार ।।१७३।।

धनासिरी मार उरु जेज, रागिणिहि रह्यो न भावे सेज ।
करी मलाई मध माधई, पब मुनि सुनत मुरछि गई ।।१७४।।

धौरा सारगु सारव नाट, जनकु सुहई मयन को साट ।
जो वेसी मिल वेयहु माइ, सुनत महेरै हरिनु भुलाइ ।।१७५।।

रागु बसतु कूबरी करै, जनी मधुमास भवर गुजरै ।
लागी लात सोरठी तनी, सुनि कनकगि काम मरहनी ।।१७६।।

सिरि रागु सुनि दीनो कानु, मूरिषु नही होइ जो जानु ।
रानी मगु काम सर हयो, जसहर राजा बिसहर भयो ।।१७७।।

भुज पजर तेसो नीसरी, ज्यो घनते निकसी बीजुरी ।
सरद पटल ते जनी ससि रेह, निकरी एम सकुचिकरि देह ।।१७८।।

फुणि मरगाइ धरयौ मुह पाउ, डरपै सो जिनि जाणै राउ ।
चपक माला लीनी बोलि, द्वार कपाट दिये तहि खोलि ।।१७९।।

रानी एवं दासी की वार्ता—

रानी बात कहै अरगाइ, तो ते मेरो काजु सिराइ ।
गधर्व कला रागु जिनि करयौ, ता बिनु जीव जाइ नीकस्यो ।।१८०।।

जो तू सखी सुभागी मापु, तौ खोवहि मेरो तन तापु ।
निसुनत रागु बहुत दिन भए, ते सषि पाछै जुग बरिसए ।।१८१।।

करति निहोरी तोसो भाषि, मब लै प्राणु हमारो राषि ।
तासु चरण लै मोहि दिषाइ, सोई सिष भषिमो सिष राइ ।।१८२।।

ऐसो बचनु भन्यो तब बाल, तब तन सकुचि चपक माल ।
हा हा भनि बोली थर थू कि, सुन्दरि बचनु भन्यो किम चूकि ।।१८३।।

कूबड़े का वर्णन—

वहु कूबरी दईको हयो, फुटि मगु सबु बाको गयो ।
जैसो अस्यो दावा को डूडु, मानहु काटि बहोर्यो मूडु ।।१८४।।

पाइ खिबाई मुहु उरघो, निसि दिनु रहै लीदि महु परयो ।
कीरा परे विगधि कोमूलु, मनुदिनु माथै व्यापै सूलु ।।१८५।।

उलटि पटल अषिनु के रहे, परे कुवणे व्याधि के गहे ।
पूठी साइ रहै हर हुषु, महियलि सहे नरक को दुषु ।।१८६।।

लाठी लात मुठी का सहै, रानो कवनु बरनि घिन कहे ।
माथै कोवा मारहि चोट, सो विहि रच्यो पाप को मोट ।।१८७।।

हसै न कबहू नीको कहै, परयो हठोलै रोवतु रहो ।
षरो मलष निकु वायस दीठि, करिहा सो मिलि आई पीठि ।।१८८।।

हौ रानी किम बरनौ तासु, मुहु पेषै सिहु परै उपासु ।
जाहि सुनत दुपु उपजै कान, सु दरि कहहि तासु पहुजान ॥१८९॥
बात मु हासी छूटी मोहि, भमिनि पभनि सदो किम तोहि ।
तो पिउ रमत भई अधरात, तो न तो रति उपजी बात ॥१९०॥

रानी बचनु—

सुनि बचनु रानी कलमली, पभनै तै सिष दीनी भली ।
बयनु एकु मेरो निसु नेह, चपक माला कानु धिरु देह ॥१९१॥
गीत नाद बेधिये सुजानु, निसुनि हरिन फुनि देइ परानु ।
अरु जौ बालकु रोवतु होइ, निसुनत रहै गोद महु सोई ॥१९२॥
होइ कौविजो डस्यो भुजग, निसुनि गीतु विषु रहै न अग ।
चतुर सुजान जिते नर नारि, जे जानहि सुनि मूढ गवारि ॥१९३॥

श्लोक

सुषणिसुखनिधान दुखितानां विनोद ।
श्रवण हृदयहारो मन्मथस्याग्रदूत ।
अति चतुर सुगम्यो वल्लभो कामिनीना ।
जयति जगति नादो पचमो भाति वेद ॥१९४॥

राग तनै गुण जानहि माइ, मो मूरिष सो कहा बसाइ ।
जानहि तू न हमारी भीर, पाहनु जिम भेदिये न नीर ॥१९५॥
किमि मुहु मोरि हसै घर वसी, मेरी मरणु तुहारी हसी ।
जामि सखी तेरी वलिहारु, इतनो करि मेरो उपगारु ॥१९६॥

चपक माला का उत्तर—

चपक माल कहै विचारि, आनी निजु सत डोली नारि ।
रानी केम भइ बावरी, को सुनि सीतु कि ब्यतर छरी ॥१९७॥

दोहरा

हा सुर सु दरि सम सरिस, केम पयासहि एहु ।
सतो न वल्लहु परिहरै, अवरु करै नहि नेहू ॥१९८॥
भाजै निय सहस पुरिखवस, केम समप्पहि देह ।
सील नवल्ली वल्लरी, जालि करै किम षेह ॥१९९॥

सुंदरि जोबनु बाल ये, अरु जौ आइत आउ।
सीलु महंगों मति टरौ, आगहू जनम सहाउ ॥२००॥

सुंदरि जोबनु राजु धनु, पेखिन किज्जै गब्बु।
सबरु सीलु न छांडिये, अवसि बिनस्सै सब्ब ॥२०१॥

सुनि फुल्लार बिद भुल जोति, छाडहि रयनु गहहिं किम पोति।
तजहि हंसु किम सेवहि कागु, भूली भई खिलावहि नागु ॥२०२॥

अम्रतु तजि पीवहि विष मूतु, सुरपति छाडि रमहि किम भूतु।
छाडि ईख किम सोवहि अडु, रानी केम करहि घरु भडु ॥२०३॥

सील रयनु तिहुलोक पहानु, सीलु नारिमडन गुन ठामु।
सोभू सजम भाव करहि, फोरि दहै डीकागनु देहि ॥२०४॥

माता-पिता ससुरु अरु सासु, पेषि बिचारि बस कुलु बासु।
राउ भतारु तरुनु घर सूनु, चौक चढो चाटहि किम चूनु ॥२०५॥

अरु तू एक बिचारहि आपु, करत कुकर्म्म न दुरिहै पापु।
ता वही कान दुवन कै परै, जैसै तेलु नीर बिस्तरै ॥२०६॥

अरु जौ केम केम दुरि रहै, तौ पाछैं कर तारुण सहै।
व्यापैं रोग सोग तन रोर, फुनि नरकादि सहै दुष घोर ॥१०७॥

अर तू सामिनि पेषि बिचारि, यह अपजसु चलिहे जुग चारि।
मेरे कहत राषि मनु बंचि, तिय तुस कारण रयनु मत बेचि ॥२०८॥

तू आतुरी करहि किस एह, जाहि रमनप्पो छाडहि गेह।
काढहि जिया तस सेकी षाल, नारि मरण बुधि भई अकाल ॥२०९॥

णिसुनै पेषै करत कुपाउ, तौ महिष्पो दिगडावै राउ।
तौ सुन्दरि मरिये दुष देषि, मै सिष सामिनि दई बिशेषि ॥२१०॥

जिम माषि चदनु परिहरै, बिर्गाध अमेध जाइ रति करै।
रवहि कुबरो राजा छाडि, तेलु षाइ घो अरियै गाडि ॥२११॥

ताकै जोवन दीजै ऊक, बयण बेहु अरु औवस्त थूक।
तपत तासु अग दीजै डाहू, सा यो छाडि बरै परनाहु ॥२१२॥

रानी का उत्तर—

सषी बचनु सुनि बिलषी बाल, जरी रबि किरणि पुप्फकी माल।
कुंद दसनि बोलै यहु नारि, काज आपनो करि मनुहारि ॥२१३॥

जान मि वसु मेह कुलुठानु, जोबनु रूपु तेजु गुन मानु ।
रूपु कुरूपु हेतु मनहेतु, पोषु अपोषु किष्क मन सेतु ।।२१४।।

परि अब मयनु सतावै वीर, तू नही सषी जानहि पर पीर ।
मन भाव तौ चढै चित आणि, सोई सषी अमर वर आनि ।।२१५।।

श्लोक

वयो नव रूपमती वरम्च कुलोन्नतिश्चेति सुबुद्धि रेषा ।
यस्य प्रसन्नो भगवान्मनोभू, स एव देवो सखि सुन्दरीना ।।२१६।।

जौ तू मो भावति सुमोह, तौ तू साथ हमारै होइ ।
जब रानी पभनै कर जोरि, बोलैं सषी बहुरि मुषु मोरि ।।२१७।।

दोहरा

रानी जे अचलन चलहि, जानत प्रप जुजि ताहि ।
दिवस चारि कै पाव मो, समूले चलि जाहि ।।२१८।।

जे पर पुरिसहि राचहि धनी, ते गति पति काटहि आपनी ।
तू सिष देत न मानहि दापु, षिन सुषु जनम जनम को पापु ।।२१९।।

रानी निसुनि भई अनमनी, मोरी वात सषी अवगनी ।
मैं तू जानी सषी सुजानि, तौ मै करी तुम्हारी कानि ।।२२०।।

तो हि कहाए ते सो परी, जोहो कहो सु करि रावरी ।
विहिना लिख्यौ न मेट्यौ जाइ, मन मो सषी धरी पछिताहि ।।२२१।।

रानी एवं दासी का कूबड़े के पास प्रस्थान—

बरजैं कवनु अमारग जाति, तब उनि चली सग मुसिकाति ।
दोऊ जनी चली अरगाइ, मदे देति सुहाए पाइ ।।२२२।।

झमकति चलीजु मोही राग, जनुकु सुहरिणि विछोही वाग ।
चलत पाउ पाहन सो धग्यो, नेवर धुनि सुनि राजा जग्यो ।।२२३।।

अमिय महादे पेषी जात, चितयो कहा चली अधरात ।
बाढ्यौ कोपु राय के अग, हाथ परगु लैं चाल्यो सग ।।२२४।।

ढूकतु लुकतु पाइ थिर देतु, नारी तनो कनसुवा लेतु ।
अमिय महादे चपक माल, सोह दुसवार पहूती तहि काल ।।२२५।।

दीने जहि कपाट पर दारु, आग्यो सुनि नेवर झुनकारु ।
भनैं रिसानौ को तुम चली, तारे फिरे अर्द्ध निसि गली ।।२२६।।

उत्तर दियौ तासु सुदरि, एक ससि रेखा है दूसरी ।
ग्रौर मूढ को ग्रावै ग्रान, गढ गाढौ राजा कै ग्राण ।।२२७।।

जानि बूझि तू उठहि रिसाइ, मानौ तो लागौ बुढवाइ ।
चली नारि यहु उत्तर कीयौ, उतही खेव राय पग्गु दीयौ ।।२२८।।

कूबड़े के पास पहुंचना—

जासु रमण की राणि हि ग्रास, गेहिनि गई कूबरा पास ।
ग्राइ जगावौ चरण नु लागि, ग्रति रिस भर्यौ उठउ सो जागि ।।२२९।।

तिनि दासी मनि दीनी नारि, सुन्दरि बिहसि करी मनुहारि ।
जो जसु भावै सो तसु ईठु, सत्य पाषानौ जग यहु दीठु ।

जो जाने जस्य गुणे, सो तस्य ग्रायर कुणए ।
फलियो दषह विडवो, कावो निवाहलि चुणए ।।२३०।।

दोहा

सेजह छडिउ वालहा वा कारण निसि जग्गि ।
कठ लागि दोऊ रहे ग्रावरि बुरी व जग्गि ।।२३१।।

रानी का विनय—

रहि न सकौ तुझ विनु, सकमि न तोहि बुलाइ ।
पजरु ज्यहि राजा रह्यो, ज्यो तो उवरि पाइ ।।२३२।।

रानी गई तासु कै सग, मनो स्वान बिटारी गग ।
गरुड नारि मनु मानी नाग, हसिनि जनुकु लागई काग ।।२३३।।

जनुकु पुरदरि सेई भूत, जनु ससि रेह राहु ग्रह धूत ।
सोहिनि जनुकु लुडह को सेठ, रानी रही कूबरा हेठ ।।२३४।।

ग्रापुनु पेषि राउ पर जर्यौ, जनो ज्योगिम हुतासन पर्यौ ।
काढि षडग एहु घालै घाउ, फुणि चित चेति चमंक्यो राउ ।।२३५।।

इहु तिय निंद दुष्ट गत लाज, णीचऊ ठवुधि करै ग्रकाज ।
ग्रलितरासिणि चिण ग्रविचार, साहसु करतन लागै वार ।।२३६।।

उत्तिमु छाडि नीचु सग्रहौ, मनमहु ग्रवर ग्रवमुह कहै ।
पापिणी कै किम हरमि पराण, मारण कह्यौ न वेद पुराण ।।२३७।।

कपुरिसु एहु कूबरो राढा, दोवक बुरौ पीठि को हाडु ।
झठौ षाइ पेट विन भरै, पाइन चलहि लीढि मौ परै ।।२३८।।

श्लोक

दालिद्री च रोगिनो मूर्ख दयादान विवर्जित ।
क्षण ग्राही कलकी च जीवितोपिमृतोपि च ।।२३९।।

ताक पुरिसहि करमि किम बाउ, रह्यौ बिचारि ग्रवणि को राउ ।
दोऊ हणत परत।की हाहि, बहूर्यो राउ एह मन जाणि ।।२४०।।

राजा यशोधर का वापस आना—

चित्रसाल पालिक परिगयो, णिवडिउ जनकु वज्र को हयो ।
कारणु करै राउ मन कूरि, परिहस अगिणि दई तण पूरि ।।२४१।।

राणी काम भूत को गही, रमि कूवरौ चली गुण रही ।
हगमगाति डरपति डर लई, पेदि स्वानस्यारि बन दई ।।२४२।।

जणु गाजर विजुराई मेह, मलिण सडील पसीनी देह ।
फुणि पिय भुज पजर सचरी, नागिणि जणकु महाविष भरी ।।२४३।।

करतौ राउ सरस रस केलि, सो भवभई महाविस वेलि ।
यह दुषु बह सुषु बरणै कौनु, पापिनि दियो धाइ जनु लौनु ।।२४४।।

श्लोक

नृमत न विष किंचित्, एषा मुक्ता वरागणा ।
सैवामृतमयो रक्ता विरक्ता विषवल्लरी ।।२४५।।

चौपई

भाम'णि लागी केम णरेस, जनु रावि सिनि भिहा वण भेस ।
अपत निलज्ज पापकी पुरी, डाइणे जणकु गुदी गहि जूरी ।।२४६।।

दोहा

तहि णरवै मन चितवै, पेषिवि नारि चरित्रु ।
देहु महातरु प्रभु तणी, दुष महाघन सित्तु ।।२४७।।

हाहा एहु भणहु जगि कासु कहि अइ भासि ।
अपजस लाज पयासणी पावकु कम्मह रासि ।।२४८।।

ही कोहानलु तिय चरिउ देह बनतरि लग्गु ।
चित्तु विहगमु मुह तनो उडिवि दह दिहि भग्गु ।।२४९।।

हउं आणमि मो बाल हिय याहि बिवालहु पोउ ।
पउरु मुभु सम्मप्पि कहु, मण्ण समप्पउ बीउ ॥२५०॥

चौपई

राजा यशोधर द्वारा चिंतन—

तहि अवसर चिंतइ मन राउ, अब फुणि भयो मरण को दाउ ।
छाडिम राजु गेहु बनु भोगु, माणिणि कुटमु सरस रस भोगु ॥२५१॥

तपु करि सहमि परीसह घोर, भवभय भवनु निवारमि भोर ।
बिनु तप नही कम्मं को घातु, तारे गणत भयो परभात ॥२५२॥

तव चूल बासे रवि उयो, अवर तारागणु लुकि गयो ।
तीरणि चकवा मिले अणदि, सूर राइ मनो काटी बंदि ॥२५३॥

पच सबद बाजे दरबार, बभण पढहि वेद झुणकार ।
जसहरु सभा बैठ्यो आइ, णिसि दीठो वैरा गुण जाइ ॥२५४॥

चन्द्रमती रानी का आगमन—

तहि अवसरि चन्द्रमती राणी, पूजि किश्न आसिकु लै पाणि ।
आई जहा जसोधरु राव, मोह कम्मु सुवऊ परभाउ ॥२५५॥
आसिकु दयो राइ के हाथ, पभण्यो चिरु जीवहि नरणाथ ।
माता चरण परयौ तब राउ, आई माता कियो पसाउ ॥२५६॥

यशोधर द्वारा स्वप्न वर्णन—

भणै राउ माता णिसुणेहु, भासमि सुपिणु कानु थिरु देहु ।
जैसो सुपिणु दीठ णिसि आजु, मानहु अवसि बिनासै राजु ॥२५७॥

वितरु एकु महा परचेडु, किरूम अग कर लीनै दडु ।
चित्रसाल अवर ते परयो, सो भैभीतु पेषि हौ डर्यो ॥२५८॥

णिसियरु भणै राइ सघरौ, स्यौ परिवारण गरुभ्यो करौ ।
जो तपु करहित छाडमि आजु, ना तरु अवसि विनासै राजु ॥२५९॥

मेरौ बचन राइ प्रतिपालि, जीतव ईछु लेहु तपु कालि ।
मै भास्यो तपु करमि विहाण, तब सुरु गयो आपनै थान ॥२६०॥

हौ तपु करमि माइ ससि मती, जासु पसाइ काटमि भवपति ।
कलमलि माइ बचनु तब भन्यो, जिनवर तनो धम्मुं अवगन्यो ॥२६१॥

चन्द्रमती द्वारा शिक्षा—

ऐसो वचनु म सुव मुह काढि, याहू तेर ववमनो वाढि ।
सपिणु पेषि भैभीतु ण होहि, कुटमु मुयनु कव लाग्यो तोहि ।।२६२।।

जै सुपिणहि डरपै वरवीर, समर केम सहहि सुव भीर ।
डरपै हीनु दीनु कुवि रकु, तू कुल मडनु राउ निसकु ।।२६३।।

देविनि के दिन भारे पूत, महियलि मैं मदमाते भूत ।
भवहि रैनि जोगिनि के ठाट, मढ मदिर वश तोरणि घाट ।।२६४।।

जो सुव बूझहि साची वात, मोहु रयणि जाइ वर रात ।
कचाइणि देवी तो तनी, ताको बलि पूजा करि घनी ।।२६५।।

महिस मेस अज गडवराहु, देवी की सुव पूज कराहु ।
भास्यौ विप वर तनै पुराण, जिनवर धम्मुं ण णिसुण्यो काण ।।२६६।।

हो इकु सर सुमु राजु अषड, कचाइणि राषो सुव दड ।
णिसुणि वचनु बोलै महिराउ, हा किमि मूढ भण्यो जिय घाव ।।२६७।।

राजा द्वारा हिंसा का प्रतिरोध—

जीव घात जो उवजै धम्मुं, तोको अवर पाप को कम्मुं ।
जे ते लप चौरासी पाणि, ते सब कुटमु माइ तू जाणि ।।२६८।।

सो ण भवतरु गह्योण माइ, सो पसु घातु करण किमि जाइ ।
जीव घातु जो कोइ करै, णिहचै णरक माइ सो परै ।।२६९।।

श्लोक

नास्ति अर्हत्परो देवो, धर्म्मो नास्ति दया विना ।
तप परम निरग्रन्थो, एतत्सम्यक्त लक्षण ।।२७०।।

चन्द्रमती द्वारा अनिष्ट निवारण का उपाय—

चन्द्रमती बोली विहसि, हीरा वतपति झलकंति ।
एकु बचनु सुव मेरो पारि, देवी तनी ण पूजा टारि ।।२७१।।

जैसे कुसरा आगै तू होइ, दुषु दालिद्र ण व्यापै कोइ ।
वण कुक्कुट करवा वहि एकु, देवहि देह होइ दुष छेकु ।।२७२।।

फुणि तू तप लीजहि सुकुमार, बलि पूजा करि अबकी बार ।
मान्यौ वचनु चन्द्रमति तनौ, माता भाउ पयास्यो घनौ ।।२७३।।

वरण कूकुरु कीनौ सुति टारि, पेषि रहसु मान्यौ परिवार ।
करत कुभाउ या राजा अरयो, लै करि दीपु कुवामहु पस्यो ।।२७४।।

जाणि बूझि कीजै जिय घात, कवरण निवारै णर कहि जात ।
गयो राव देवी कै गेह, परमेसुरी अपनी बलि लेय ।।२७५।।

हुयौ अचेतु रहसु मन माणि, जनु कुसु सची महा दुषाणि ।
चन्द्रमती बोली तहि वाणि, थोरैं भलो हमारो माणि ।।२७६।।

तू कुलदेवी कुल की वारि, रण रावर तू लेहु उवारि ।
बहुत भगति करि रहसी देह, फुणि नदरणस्यौ चाली गेह ।।२७७।।

जसहर जस मैं कुमरु हकारि, कलस ढारि आसन वैसारी ।
दीनौ राजु पटु दलु देसु, आपुनु वण तप चल्यौ नरेसु ।।२७८।।

तहि ठा मारदत्त सुवि राइ, कर्म तनी गति कहण न जाइ ।
अमिय महादेवी ससि वयणि, सरस कजदल दीरह णयणि ।।२७९।।

भूलीही न कुवि जकें हेत, जसहरु राउ सुन्यौ तपु लेतु ।
अकुलानी विह लघल गई, जिम णव वेलि पवन की हुई ।।२८०।।

जो ण होइ थिरु एको घरी, दिनु अथव तप रै कर मरी ।
सुनी न पेषी जो अनवधी, कतहि लैन वेम तपु सदी ।।२८१।।

यह फुणि मानौ कछु विचारु, जिहि ते दीक्षा लेइ भतारु ।
जाणमि राजा भया उदास, देषी रयणि कूवरे पास ।।२८२।।

रानी अमृता की प्रार्थना—

पेषत मानु राइ को मल्यौ, ताते कतु लैन तपु चल्यौ ।
जो राजा फिरि माडै राजु, मेरी सकल विनासै काजु ।।२८३।।

ऐसी जानि डिभ मनभरी, चवल आइ राइ पग परी ।
नयन कमल भरि छाड्यौ नीरु, विरहु बाण घन घुम्यौ सरीर ।।२८४।।

भणै नाह हो तेरी दासि, साई मोहि तजहि का पासि ।
मो तजि किम तप लेहु भतार, तो विनु प्राण जाहि सुपियार ।।२८५।।

दोहरा

वालम जोवनु कुसुम वनु, केम चलै दवलाइ ।
सरस वचन विनु जलह रहि, ता विनु केम बुझाइ ।।२८६।।

बालम तुम महूबाल हुउ, तो बिनु एहु श्रकछु ।
कै जरि बरि माटी भली, कैर तुमारै सछु ।।२८७।।

बालम तुम विनु रूबरी, लहियलि भारी होइ ।
सोता किझइ जणहू जरा धीरी धरै रा कोइ ।।२८८।।

बालम विनु किम भामिनि किम भामिनि विनु गेहु ।
दान विहीनो जेम धरु, सील विहीनो देहु ।।२८९।।

चौपई

रानी भनै जोरि द्वै हाथ, हौ तपु करमि तुमारै साथ ।
परि मो वचनु एकु प्रभु देह, भोजनु करहि हमारै गेह ।।२९०।।

दियवर भराहि वेद की आदि, वलि विधानु भोजन विनु बादि ।
तातै एहु वचनु प्रतिपालि, फुरिए तुम हम तपु लीवौ कालि ।।२९१।।

रानी वचनु मोहि प्रभु रह्यौ, मानहु मोहु निसाचर गह्यौ ।
जनु पडि ठउना मेले सीस, भूली सवै पाछिली रीस ।।२९२।।

रानी चरितु रयणि जो रयौ, भाई मो सुपिनु हो भयो ।
भरम भुलानो ठगि सो लयो, माग्यौ वचनु नारि कहू दयौ ।।२९३।।

रूपरिए रवण कथा णिसुरोह, मेंटै कवनु कर्म की रेह ।
मानी राइ नारि की बात, भामिनि रोम हुलासी गात ।।२९४।।

रानी द्वारा जहर के लड्डू बनाना एव राजा को खिलाना—

तब राणी अपनै घर गई, बोली सखी रसोइ ठई ।
लडू किये बहुत बिसु घालि, कछूकु तै बन दीनो चालि ।।२९५।।

हीन बात किम बरणमि और, लोपि सोधि करि दीनो ठौर ।
जसहरु चन्द्रमती सु पहारिग, दोऊ जैव न बैठे आरिग ।।२९६।।

लाडू आनि परोसे चापि, भोजन करत उठौ तनु कापि ।
ताकी उपमा दीजै कौन, भूमि चालु सौ लाग्यो हौन ।।२९७।।

जुर जाडे जहू धूम्यौ अगु, भयो नयन कारानि कौ भगु ।
नसणी टूटि जीभ लठराण, चन्द्रमती के विकसे प्राण ।।२९८।।

वैदु वैदु करि राजा पर्यौ, अमिय महा दे कौ ज्यौ डस्यो ।
जौ राजा को जीवन होइ, तौ प्रभु मारै मोहि विगोइ ।।२९९।।

पापिणि भई आपनै भेस, सिर मुंकराइ दिये तिणि केस ।
पकरि जरक सौ दीनो दंत, णिविण हूयो आपनो कंतु ।।३००।।

जसवै मदनु धायो घाइ, पितहि पेषि रहयौ मुहु वाइ ।
विवस लोग समुझावहि तासु, आणि राइ जम मो को कासु ।।३०१।।

आदि अनादि भए अरु गए, आनै कवणु कितिक निरमए ।
पाप पुण्य द्वै चलहि सघात, ऊरण काहू दीसै जात ।।३०२।।

सुपुरिसु किम रोवे मुहु वाइ, लघुता होइ दुवनु विहसाइ ।
लाग्यौ तोहि धरणि घर बधु, जस मै राज धुरा धरि कंधु ।।३०३।।

अमिय महादे मोको घाह, मोकाकी करि चाले नाह ।
सो फुणि प्रभु समुझाइ राषि, जस मै राइ स कोयलु भाषि ।।३०४।।

माता जाणि न थिरु ससारु, वरजि रहायो सबु परिवारु ।
जसहरु राउ चन्द्रमति आए, अरथी करि ले गए मसान ।।३०५।।

श्लोक

अर्थी गृहान्निवर्त्तते, मसानेषु च बाधव ।
सरीराग्निसजुक्त च पुन्न-पाप सम व्रजेत् ।।३०६।।

चौपई

किरिया करि नैन्हाइ सरीर, कुसुलै दियौ चूरु भरि नीरु ।
कीनी सयल मरे की रीति, भासो कथा गई जिम बीति ।।३०७।।

वस्तुबधु

देस जयवरु अभयरुहु णाम, आहासई गुण गहिरु मारिदत्त पहु ।
सुनि भवतरि कम्माह विचित्र पाव पुन्न फल निसुनि ।
अतर जानतहु जसहर णिवइ कूकुरु भयो अचेउ ।
ससार बुहि हिडियउ आहासमि भव भेउ ।।३०८।।

चौपई

पभणइ कवि पणविवि परमेस आरंभ सुतरण येव उपदेस ।
णिसुणहु भव्व सुदिढु करि काणु, जसहर राजा तनो कहानु ।।३०९।।

जस मै राउ उज्जैनी करै, उपमा आपु इन्द्र की धरै ।
कुसुमावलि कुसम सर बेलि, ता समान मानै सुष केलि ।।३१०।।

यशोधर का मोर एवं चन्द्रमती का कुत्ता होना—

कूकुरु हुयौ अवेयनु प्रापु, जसहर जानत कीनौ पापु ।
बरणौं कवनु महा ममु घोरु, जसहरु राव भयौ मरि मोरु ।।३११।।

चन्द्रमती मरि कूकरु भइ, परमति रमति प्रापुनु रई ।
एक दिवस विहि सर मभुआरिण, जस वैढोवउ दीनौ आणि ।।३१२।।

स्वानु पेषि मन उपज्यौ भाउ, जो लायौ तहू कीयौ पसाउ ।
णिसि दिनु बध्यौ मदिर रहै, पारधि जात बहूत मृग गहे ।।३१३।।

फुणि जस मैं प्रवलोयौ मोरु, प्रति सुरुपु गुणु कहत न ऊरु ।
सोलै मेल्यौ मदिर माह कौतिगु बहूत करै सो ताहू ।।३१४।।

नेवर धुनि सुनि चित्त कराइ, राणिनु षेलत धिवसु विहाइ ।
एक दिवस पावस घनघोरु, मदिर सिषिर गयौ चढि मोरु ।।३१५।।

तहि भव सुमरि नुणि मन जाणि, सयलु लोग पेष्यौ पहिचाणि ।
चित्रसाल पेषी प्रापनी, प्रवलोइ कुविज कस्यौ धनी ।।३१६।।

लो लगीव यन उपज्यौ षोहु, तिनहू परणि वड्यौ करि कोहू ।
कियौ चरण चचू कौ धाउ, तहि पापिनि गहि तोस्यौ पाउ ।।३१७।।

मारिदत्त लै भग्यो परानु गयौ तहा बध्योहो स्वानु ।
तहि कूकर माता कै जीव, पकरि स्वानु मुहु तोरी गीव ।।३१८।।

सारि पास षेलतु हो राउ, धायौ तिनहि छुडावन प्राउ ।
छाडै नही स्वानु रिस लयो, राइ स्वान सिरु मदिर रह्यौ ।।३१६।।

काला सर्प एवं मोर होना—

निकस्यौ साथ दुहू कौ जीव, मुयौ स्वानु दूजौ हरि गीव ।
सिहिस्यौ बैरु स्वानु करि मर्‍यौ, किश्नु भुजगु छाइ प्रवतर्‍यौ ।।३२०।।

जाहौ भयौ सोजि मरि मोरु, पाव कर्म्मभव भव तन ऊरु ।
तिणि फुणि बैरु पुराणौ सरचौ, देषत दीठि नागु सघरचौ ।।३२१।।

दोऊ परे तछ की भेट, ते भषि दोऊ दीनै पेट ।
गौहिन परघौ विधाता रुसि, मरि भुजगु जल उपनौ मूसि ।।३२२।।

नृत्यांगना—

प्रधम कर्म सो कीनौ षीनु, सो जाहौ मरि उपज्यौ मीनु ।
णयरे उजैनी जस मैं तनी, नाचणि रूर तिलोतम बनी ।।३२३।।

कणक बरण ससिहर मुष जोति, पेषत मुनि रति पति तण होति ।
चचल डोल बिलोल बिसाल, कोमल जनुकु पुष्प की माल ॥३२४॥

कुच कचुकी बनी कसि अंग, फाटै तर कि अमत बहू अग ।
कटनि मेषला बधी तानि, जनकु सुगढी बिधाता आणि ॥३२५॥

बहुत कुसुम सौ बैनी गुही, जनु चदन नागिनि आरुही ।
ताल पषावज बीना बंस, नेवर धुनि सुनि भुलहिं हंस ॥३२६॥

अगनित जानै कला बिनाना, अवसरु करि जल आइ न्हान ।
कोला करै सषिनुस्यौ मिली, षिणमौ सु सुयार सो गिली ॥३२७॥

हाहा वादु नगर मौ भयौ, सु सुमारु नायनि गिलि गयौ ।
सुनि राउ आयौ नदि तीर, जावि जोग दुहू भयौ सरीर ॥३२८॥

धीवर बोलि बलायौ जारु, पकर्यौ सूसि मेल मुहणारु ।
लाए पकरि बाहिरी सूसि, मारी लात लठा मुह घूसि ॥३२९॥

वरणै कवनु महादुष षाणि, दुष दिषराये नरक समानि ।
सहिए सोजि सहावै दई, तिस पुरि मो मरि छेरी भई ॥३३०॥

मारिदत्त सुनि भव भयभीति, कछू दिवस जब गए बितीत ।
जीव न लहै कर्म्म पहू ठालि, मीनु गह्यो मुष गारौ चालि ॥३३१॥

आवध लात मुठी कनु हन्यौ, सुर गुर पहू दुष जाइ न गन्यौ ।
रोहौ भणि तिनि दीनो ठोउ, जस मै ताकौ कियौ बिगोउ ॥३३२॥

पिता मरिबि जो उपज्यौ मीनु, सोइ माइ पिता कै दीनु ।
ऐसे दीवर भासहि बेद, मूढण लहहि धर्म्म कौ भेदु ॥३३३॥

जीवण जाइ कर्म वस परयौ, छेरी तनै गर्भु अवतर्यौ ।
जब लिरजव वडरी भयौ, मातहि रवत अज हुण्यौ ॥३३४॥

आपु वाज सो उपन्यौ आपु मारिदत्त को मेटै पापु ।
पूरे दिवस भए जब पेट, एक दिवस प्रभु गयो अषेट ॥३३५॥

तिहि दिन राजहि भई न घात, वाण हणी छेरी वरजात ।
पेष्यौ उदर वो करावालु, ताकौ काढि कियौ प्रतिपालु ॥३३६॥

दिय बाह्मण वर भन्यौ अजौनी जातु, बडौ भयौ डोलै वरु घातु ।
तिहि अवसरि सुणहु धरि भाउ, गयौ अहेरै जस मै राउ ॥३३७॥

हरिण रोझ सूकर हरि ससे, मारे जीव बहुत बण बसे ।
दियवर भणहि सुणि प्रभु माधु, जसहर राजा तनो सराधु ॥३३८॥

आजि मिता तनो दिनु एहु, तासु नाम बहु भोजनु देहु ।
कूठी बहुतु अमिय की रासि, सोर सुधा बहु छेरे पासि ।।३३९।।

निरमलु बोकु अजौनी जातु, लहै सुरगु सुष आजि तात ।
तिनकैं कहत अजाघर आणि, दिढु करि मदिर बाध्यौ तानि ।।३४०।।

अमिय महादेवी को गेह, बोकु सुधा तृस ब्याप्यौ देह ।
तालू बेल पयासी बनी, तहि अजाभव सुमरी आपनी ।।३४१।।

देष्यौ कुटमु दासि अरु दासु, मारिदत्त दुषु कहियै कासु ।
सबु मदिरु पेष्यो अवलोइ, तब पछितानें कछू न होइ ।।३४२।।

हौ तिरजचु पुकारौ कासु, कोइ देइ नपान्यौ वासु ।
रूपिनि खाहनि अनिल धरी, अमीव महादे दीठित परी ।।३४३।।

तहि अवसरि रावर की हासि, पापिनि रानी तनी पवासि ।
जोवन तरुण कनक समगात, कहति चली आपु समहु बात ।।३४४।।

दासि एक पभनें तनु मेरि, करि कटाषु मुहु नाक सकोरि ।
रावर विगधि कहा रमि रही, अवर भनै तुम बात न लही ।।३४५।।

मरमु न जानहि कछू गवारी, राजा स्याव जलयौ मारि ।
जसहर चन्द्रमती विनु आजु, होइ बहुत भोजन कौ साजु ।।३४६।।

सरधौ मासु गधि साची एहा, अमिय महादेवी कै गेहा ।
अवर दासी बोली अरगाई, कहमि बात परि कहण न जाइ ।।३४७।।

निसि दिनु सेवा जाकी कीज, सषी तासु किमि बुरी कहीज ।
पाछै तुम्ह देहौ मारि, सुनैत सामि निडारै मारि ।।३४८।।

तऊ कहमि जो कहण न जोगु, अमिय महादे वाढ्यौ रोगु ।
विसु दै भोजण मारधौ नाहु, फुनि कूबरौ रयौ करि माहु ।।३४९।।

थाइ अमिषु डाइनि अवतरि, पापिनि कुष्ट ब्याधि सरि परी ।
दुष्ट कर्म्म सो मारी चूरि, ताकी बिगधि रही भरि पूरि ।।३५०।।

दासी तनौ वयनु सुनि कान, मैं बरतन पेष्यौ तहि थान ।
तब बैठी देषी सोनारि, कोढिणी विधना करी विचारि ।।३५१।।

पायौ बेगि आपनो कियौ, जैसो बयो तिसो लुनि लयो ।
मो सुषु भयौ नारि अवलोई, जिमि निर्धन धनु पाए होइ ।।३५२।।

मारिदत्त निसुनिहि धरि भाव, काटिउ एकु अभाकौ पाउ ।
तीनि पाइसो बपुरा रह्यौ, छूटै नही कर्म्म दिढु गह्यौ ।।३५३।।

कथा सुयोजित निसुनहु आए, छेरी जो प्रभु मारी बाण ।
सो मरि देस महिषु अवतरयौ, अति प्रचंडु बल बीसै भयौ ॥३५४॥

ता परि वणिकु कछारी चालि, लादि चलायौ अघुरी चालि ।
आयौ सो उजैणि नदि तीर, चलत पथ की गई उसीर ॥३५५॥

सो तहि महिषु पैठि जल गयौ, राजा तनौ तुरग महणयौ ।
सब चन वारणु कीनौ सोरु, पकरयौ महिषु बालि गल डोरु ॥३५६॥

राजा आगैं विणइ लेव, हण्यौ तुरग तुमारो देव ।
सुणि रिसाइ बोल्यौ महिराउ, याकौ करहु कुहेलौ भाउ ॥३५७॥

पाइ बांधित रसऊ आणि, तिम मारहु जिम जाइ न भागि ।
छेरे सहुलै मारहु एहु, णाइ पिता मा जोकै देहु ॥३५८॥

फोरै काण एहु पग तीनि, देऊ पितर जिम पावहि पाणि ।
छेरौ महिषु अगिनि तहि मरो, तब चूल दोऊ अवतरे ॥३५९॥

तहि अवसरि कर लाठी धारु, जस वै राय तनो फुटवारु ।
दोऊ लए अणुपम जाणि, तिणि राजहि दिषराए आणि ॥३६०॥

कुक्कट जुगलु अनुपम पेषि, राख्यौ राव रग मनु मेषि ।
बहुत मोहु सुष उपनौ दीठि, निज कर तरसी तिनकी पीठि ॥३६१॥

कोटवाल पभणै सुनि राइ, जूभू पेषि मनु वरौ सिहाइ ।
भनै राउ तल वर प्रतिपालि, देहु कूरु पजर लै चालि ॥३६२॥

नदन बन मेरै बर तीर, लै चलि ताव चूल बलबीर ।
गज गामिनि भामिनि मो तनी, ता सहु कील करमि बन घनी ॥३६३॥

तहि कोतिगु पेषमि बन माह, सुफल कुसुम तपवर उन छाह ।
निसुनि बचनु तलबरु सिर खाइ, कुक्कुट लैवण पहुच्यौ जाइ ॥३६४॥

साटकु

अवनि बकयं व चंदनघनं क किलि वल्लीहुरं ।
दरकाणलि लवग पूग कदली सेवि गुजर कामर ॥
जाती चंपक मालती व कुसुम झु करांडि देरं ।
गायती झुणि वीए किणरिउ लप भवरां साणर ॥३६५॥

कोटवालु धनु बनु अवलोइ, मन मोहनु सोहनु फिरि सोइ ।
तहि अवसरि णिव मदिर पास, अहि असोय तरुवरु घन सा ॥३६६॥

णगिनु दिगवर दीठै भनु, सुहड दीठु तरुवरु तरहानु ।
कोटवार मन चितयो तहा, इह मिलज्जु वन आयो कहा ।।३६७।।

पेषि राउ मन कोपु करेइ, याकी रिस मेरैं सिर देइ ।
मुनिवरु वातनु लेमिउ वाटि, यावन ते कइमि निरघाटि ।।३६८।।

डिम भरयो आयो मुनि तीर, नमसि कालु कीनौ बरवीर ।
मुनिवरु ति जग सरोरुह सूर, धम्मं बुद्धि दीनो गुण पूर ।।३६९।।

सुनि मुनि बचनु सुहडु भनि कहै, कहियै धम्मुं कवनु को लहौ ।
धम्मं धनुषु सिव सूबे बाण, यहू भासिउ दीवर परवाण ।।३७०।।

मुनिवरु भनैं नि सुनि कुटवार, पभणमि धम्मं तनैं विवहार ।
कहियै मुकति अमर पद थान, सुखु अनतु को कहण समानु ।।३७१।।

कहियै धम्मुं अहिंसा आदि, जा विनु हिंडिउ आदि अनादि ।
मुनिवर बचन सुह दुह सि परचौ, मुनिवर वादि वध महू परचौ ।।३७२।।

कवनु जीव को दुखु सहाइ, मूढ देह माटिहि मिलि जाइ ।
पवन हि पवनु मिलैं मन जाणि, किम मुनि भासहि झूठु बषाणि ।।३७३।।

कवन काज दुषु सहहि सरीरा, हाह अगतन पहिरहि चीरा ।
वहूनिरण जीव लेह अवतारु, विनु कण कूटहि काइ पियारु ।।३७४।।

फुणि रिसि वोल्यौ भडणिसु सुणेहा, भिन्न जीव करि जाणहि देहा ।
तातैं तपु करि काटहि पापु, जान्यौ देव जीव गुनु आपु ।।३७५।।

जौ परि पवनु गयौ मिलि यौनु, दुष सुष मूढ सही तौ कौनु ।
भलौ बुरौ तौ कीजइ काइ, तलवरही णाव कहि किम वाइ ।।३७६।।

जो गुण मुनि वरु भासी पेषि, सो गुणु तलवरु मेटइ दोषि ।
भणैं सुभटु दरसण अगु, मुनिवरु भासि करैं तिण भगु ।।३७७।।

तलवर झूठु भणै सबु जोरि, सो ससौ मुनि घालैं तोरि ।
जितौ वादु मुनि तलवर कीणु तेतौ किमि भासमि बुधि हीनु ।।३७८।।

तलवर तनौ रह्यौ मनु माणि, पादु नुपरौ सु दिढु मुणि जाणि ।
उपमा बहुत कैमकरि भनौ, किम षटाइ मुस कौ लौपनौ ।।३७९।।

तलवरु भणैं निसुनि गुरदेव, दैं आइ सुकरमि किम सेव ।
भासैं स वनु सुभट करि एह, आठ मूल गुण दिढु करि लेह ।।३८०।।

जेसा वयवय भासहि वीरा, जासु पसाइ तरहि भव तीरा।
ए प्रतिपालि धर्म्म की रासि, आगम कह्यौ जिनेसुर भासि ॥३८१॥

फुणि भडु भणै जु तुम मुणि वयौ, सो मन वचन काय मैं लयौ।
परि मेरै कुल मारग एक, मुनिवर निसुनि धर्म्म की टेक ॥३८२॥

पिता प्रजायौ जो घर तासु, आयो चल्यौ वस जीव घातु।
जसमै राय तनौ कुटवारु, मार मि चोर जारु वट पारु ॥३८३॥

मास मि देव वयनु परिहाडि, पालमि सयलु अहिंसा छाडि।
निसुनि वयनु मुनिवर हसि परयौ, जान्यौ अबहु मूढमति भरयौ ॥३८४॥

निसुनि मूढ जिम सिर विनु देह, लवन विनु भोजनु नारि बिनु गेह।
जिम मुहु हीण नयण अरु एक, जिम वहु सुन एक विनु अंक ॥३८५॥

धर्म्मु अहिंस धर्म्म की आदि, ता बिनु मूढ धर्म्मु सवु बादि।
अरु तू कहहि मूढ निरभस, आइ चली हमारे वस ॥३८६॥

ताको उत्तर पभनौ भाषि, चलै कोटु जौ सातौ साखि।
कोइ बैदु मिलै लै मूरी, परि सो काढु करै सब दूरी ॥३८७॥

कहि कहि मूढ आपु गुण साधी, तूं भलो किस हियै व्याधी।
तव चूल कोणि सुणहि बाता, जिम ए फिरे भवतर साता ॥३८८॥

सहे महा दुष नरक समाना, तिम तू सहि है मूढ अयाना।
तव चित चेति बात भड भनी, कहि कहि सुगुरु कथा इण तनी ॥३८९॥

जय धर भनै अमोघ रस वाणि, मुनि वर वीर कथा चिरकाणि।
जसहरु एक अचेयण घात, भवगति फिरयौ भवतर सात ॥३९०॥

श्लोक

श्रीमयेह उज्जैनिनामनगरे सुरोजसोधो नृप ।
पत्नी चन्द्रमती सुतो जसधर., नारी चरित्रे मृता ।
क्षपत्तो सिहि स्वान जावह फणी जुम्भोपि अभचर. ।
छेली छागु स्ववीर्य छेल महिषो एव पुन कुक्कुंट ॥३९१॥

इनके कहे भवतर वीरा, तव चूल पजर तो तीरा।
अव नर जनमु तनौ अवतारु, दोऊ लहहि काटि दुहू मारु ॥३९२॥

तलवर चेति आपु ततु लयो, जनु रवि किरण पेषि तुम गयौ।
निसुनी कथा मुनीसुर भनी, कुक्कुट भव सुमरी आपनी ॥३९३॥

जान्यौ सयलु पाछिलौ कियौ, तब पछिताइ विसूरयौ हियौ ।
पायौ दुलहु महा गुण बोहु, जीव भवण कौ कियौ निरोधु ।।३९४।।

आई काल-लबधि सुभ घरी, भव भय वेलि कटी दुष भरी ।
तव चूल पंजर वन माहु, कीनो सव दुसुरुहु रीसाहू ।।३९५।।

जस वैराउ रयणि वण गयो, राणि हि सहितु सुरतु सुषु लयौ ।
कोक भाव रमि खणि सुजाणि, पषि सवद सर मारे ताणि ।।३९६।।

तव चूल मारति तजि मरे, कुसुमावली गर्भ औतरे ।
पायो धम्मु सुगुरु उपदेस, पोतै परी सु किल सुभ लेस ।।३९७।।

गुरु भव सायर तारण हारु, भव तरुवर कप्परण कुठारु ।
कीजहु भव्व सुगुरु कौ कह्यौ, जासु पसाई उत्तिम कुल लयौ ।।३९८।।

सिसु सारग नयणि ससि वयणि, पिय सौमानि सुरत सुषु रयणि ।
कुसुमावली सहितु घरणाहु, गयौ णयरि मन भयौ उछाहु ।।३९९।।

पयडु असा पति तण सहि दारु, दिन दिन गर्भ जु णवै भारु ।
जिनवर तनौ धर्म परभाउ, पुन्न दोहलौ पुरै राउ ।।४००।।

कुंजर चालि सुहाई मंद, पडरु वयनु सरद जनु चंद ।
घुलहि णयण जनु जागी राति, मोरति अगु वयण अरसाति ।।४०१।।

कररुह भारी परी जहाई, कोमल जघ जुयलु थहराइ ।
चदन चदु कुसुम रस वासु, सीयल सेज र वैठ्यो तासु ।।४०२।।

विरीवडि डारै अघषाइ, सुनै कहानी सखिनु बुलाइ ।
अनुकमेण पूजे दस मास, भयौ जु पलु पूरी मन आस ।।४०३।।

अभयरुचि का जन्म—

मगलु भयौ राय कौ गेह, सुहू वेली सीची सुष मेह ।
हीरा दीण पूरै दै दानु, सुयण लोग कौ कीनौ मानु ।।४०४।।

इकु राजा सुन जनम्यौ आनु, ताको सुषु को कहूण समानु ।
कीनौ अभौ कुटमु रुचि भरयौ, तातै नामु अभैरुचि धरयौ ।।४०५।।

सुतर अभैमति कचन देहा, अति सरूप जनु ससि की रेहा ।
मारिदत्त सुनि कथा पहाणि, दुसह खरी कर्म गति जानि ।।४०६।।

वलि जो जानि सवनुत दई, बहू हुती सो माता भई ।
नदनु हुतो जसोमति राउ, सो फिरी भयौ हमारो ताउ ।।४०७।।

सबु ससारु विडबनु आणि, राजा चेति धर्म्म पहिचाणि ।
बालक बढे पिता कै गेह, निर्मल अग सकोमल देह ।।४०८।।

लषण वतीस कणक सम अंगु, अनहु अग सहू भयौ अनगु ।
खेलत बाल कु देष्यौ तात, मुद्रा पेषि भयौ सुषु गात ।।४०९।।

फुणि सुन्दरि देषी सुकुमाल, सब दल सदल नयण सुविसाल ।
णावकाकेलि वेलि सम अगु, चितवत जनु भयभीत कुरगु ।।४१०।।

दुहु पेषि पभणै नरणाहु, देमि राजु अरु करमि विवाहु ।
मारिदत्त सुनि ग्रह् धरि भाउ, पारधि चल्यौ हमारो ताउ ।।४११।।

स्वान पचहै लीने साथ, कणक डोरु गहि अपनै हाथ ।
पेषहु धरितु दई को आनि, डाहिणि दिसि तवर तरहाणु ।।४१२।।

मुनि दर्शन—

बिरकत भाव मुक्ति मन इठु, दीनै ध्यानु मुनी सुदीठु ।
पभणै राउ कोप आतुरयौ, नगिनु दीठु किम मेरी परयौ ।।४१३।।

निर्धनु मलिनु अमगलु एहु, दीयवर्णिवु सदूवर देहु ।
सनमुख णगिन रह्यौ दै ध्यानु, या सम मो असगुणु नहि आनु ।।४१४।।

याको मुषु देषत सबु जाइ, भरण चीतीउ किम देष्यौ आइ ।
अरु मै वात पत्याई आण, मैंट बुरेस्यौ होइ अचाण ।।४१५।।

सव कूकर मेले मुणि तीर, ध्याए धण जिम लए समीर ।
मुनिवर नीरे मडल जाइ, समहुइ रहे सीसु धरि लाइ ।।४१६।।

गोवर्द्धन सेठ—

तब मन को पुन सक्यो सहारी, धायौ राउ काढि तरवारि ।
तहि अवसर गोवरधनु सेठि, जामन अटल पच परमेठि ।।४१७।।

वनिवरु अतरु कीनौ आणि, अस मै तनौ परम हितु जानि ।
पभनै तू जि अवनि को राउ, मुनिवर उवरि करहि किम घाउ ।।४१८।।

पणवहि चरण वेगि तजि गाहु, मुनिवरु तेज पुज गनाहु ।
वनिवर वयणु निसुनि महिपालु, भनै मित्र किम जपहि आलु ।।४१९।।

मुनि को आहिण आजु उठाउ, यासिर करमि पलय की मानु ।
तू मो सहू पास मया कहही, मानहु मेरी मरमु ण लहहि ।।४२०।।

लियो मुणि दिय वरह पुराण, इनके बचन न सुनियहि काण ।
मेरे कूकुर राषे कीलि, अवय करज्यौ कणकु सो लील ।।४२१।।

ऐसो बचनु राइ जब भन्यौ, हा हा पभणि वनिक सिर धुन्यौ ।
नरवै मूढ राज मद भरे, भूली बात कहहि बावरे ।।४२२।।

मुनि के गुणों का वर्णन—

मुनिवर सम को अवरु पहाण, वाकौ गुणनि सुणिहि दै कानि ।
मलिन देह अतर मल हीनु, सिय ण सगु सिव भामिनि लीनु ।।४२३।।

निर्धनुहै परि धनहि न अतु, तीन रयण गही रह्यौ महतु ।
रोस हीनु परिहर्यो अनगु, जो रवि परै तम रहै न अगु ।।४२४।।

षीण सरीर अतुल बल जाणि, को तप तेज कहै परवाणि ।
वयनु पेषि सुष उपजै गात, अस गुण करै नरक अनु जात ।।४२५।।

यह कलिग नरवै सुपहानु, या समान राउ न होतउ आनु ।
तसकर कारण छाडिउ राजु, तजि आरमु कियौ तप काजु ।।४२६।।

अरु जे ते सावज वणवास, लगते रहहि सदा मुनि पास ।
ता ऊपर किम घालहि घाउ, किम ते काज वढावहि पाउ ।।४२७।।

सुर नर खयर फनीसुर जिते, इणकी सेव करहि सब तितै ।
माया मोहु ण व्यापै सोकु, नान नयण सूझै तिर लोकु ।।४२८।।

जिन विनु काज बढावहि पापु, पणवहि चरण छाडि मन वापु ।
वनिवर तनी राव सुनि वात, चेत्यो धरी सकुचि करि गात ।।४२९।।

राजा द्वारा मुनि भक्ति—

मन बिचार करि उपसम भाउ, मुनिवर चरण परयौ महिराउ ।
रागु रोसु अरु जिन वसि कियौ, धर्म्म बृद्धि भनि आसिषु दियौ ।।४३०।।

दूजो धर्म्मु पापु वै जाउ, यह मेरौ आसिक कौ भाउ ।
मुनिवर बचनु राउ सुनि काण, तव नरवै लाग्यौ पछितान ।।४३१।।

इण षितु एकु न कीनी रोस, करु उचाइ मो दई असीस ।
वा सम महियलि साधु न आनु, इणि परु जान्यौ आपु समानु ।।४३२।।

मेरौ जेम पराछितु जाइ, सीसु काटि लै पर समि पाइ ।
मुनिवरु भन्यौ निसुनि महिपाल, किम मन चितै मरनु अकाल ।।४३३।।

काटहिं वीर केम सिव घातु, घातु घात कहि जाइ न घातु ।
जिम परघातु घातु तिम जाणि, बयनु जसोधु हमारो मानि ॥४३४॥

जब यहु बयनु मुनीश्वर कह्यौ, नरवै चेति धर्मकि चित रह्यौ ।
सुनि कल्याण मित्र गुण खाणि, मन महु बात लई जिय जाणि ॥४३५॥

वणिवरु भणी राय जिसुक्खेहु, किसिक बात जो जाणी एहु ।
भई होइगी बरतति अहै, मुनिवरु तिहु लोक की कहै ॥४३६॥

माता पिता पितर तो तनै, जो बूझै सो पुनि कह भनै ।
राजा तनो गर्व गलि गयो, बूझै बयनु आतुरो भयो ॥४३७॥

राजा द्वारा पूर्व भव जानने की इच्छा—

राउ जसोधु पिता ससिमति, कहि मुनिवर तिनकी भवगती ।
जसहरु अमिय महादे राणि, भए केम तिम कसौ भाणि ॥४३८॥

मुनि द्वारा कथन—

सुनि मुनि बयण नारि मन चूरु, भासै सुयण सरोरुह सूरु ।
ब्यौरौ कह्यौ भई जिम बात, जैसे फिरे भवतर सात ॥४३९॥

चन्द्रमती अरु तेरो ताउ, कियो अचेयण कुक्कुट घाउ ।
हीडैं तासु पाप के लए, अभैकुमार अभैमति भए ॥४४०॥

सिरस कुसुम सम कोमल देह, ते दोऊ वैलहिं तुव गेह ।
भण्यो अमियु सेयौ परदारु, अरु विसु दै मारयौ भरतारु ॥४४१॥

कोढिनि भई महा दुषभरी, पचम नरक जाइ अवतरी ।
सो तू अमिय महादे जाणि, तेरी माय पाप की खाणि ॥४४२॥

तो सौ भवण भवति गति कही, जिम जिनि करी तेम तिणि लही ।
यहु ससारु जीव करि भरयौ, कर्म कुलाल कमठ बस परयौ ॥४४३॥

भानै गढै गढै फुनि भानि, नर वै जलद पटल अगु आणि ।
पुरिस सीहु सुनि जस मै राइ, बिनु जिन धर्महिं सुपु ण लहाइ ॥४४४॥

भव ब्यौरौ निसुन्यौ बरवीर, हा हा भनि धर हुत्यौ सरीर ।
चेतु लागि मुनिवर पग परयौ, मन बिलखाइ हियो गहु बरयौ ॥४४५॥

असू टूटहिं कंपइ देहु, जनु भर भादौ बरसै मेहु ।
जो जहु पापुण घालै बाइ, तब लगि तपु दै तिहु बणराइ ॥४४६॥

तब पत्र परहि पुरदर देव, अरु चक्के स पयहि सेव ।
कहि कल्यान मित्र गुण गेह, सूरि मुक्त केगि तपु देहु ।।४४७।।

तहि अवसरि प्रभु तनौं पवासु, बूभयौ जाइ जहु रणवासु ।
किम सिगारु करहु बरनारि, यौवन वयौ मयौ तप धारि ।।४४८।।

किम कसि कचुकि पहिरहु अग, बहुरिस नाहु मिलै रति रग ।
किम तण पहिरहु दखिण चीर, किम मडहु आभरण सरीर ।।४४९।।

कु कुम रेह करहु किम आनि, केम कसनि कटि बधहु तानि ।
अरु किम चलहु समोरति देह, फिरिण नाहु आवइ सगेह ।।४५०।।

अजहु नयण केम सुहिणाल, वास सुगध कुसुम को माल ।
अरु किम नेवर चलहु बजाइ, करि कटाषु किम मिल बहु भाइ ।।४५१।।

किम रचि वैनी बधहु फूल, सेज रचहु किम कोमल तूल ।
किम कर बीन बजावहु नारि, अरु किम विहसहु वयनु पसारि ।।४५२।।

अरु किम चदन चरचऊ अगु, कंत कियौ सजम सिरि सगु ।
स कहुत जाइ वरो रहु णाऊ, सोतलु करहु बिरह तन दाऊ ।।४५३।।

जौ कछु ण्याऊ करै करतारु, तौ अव कीव मिलै भरतारु ।
चरण रतनौ वयनु सुनि काण, सब रानी लागी अकुलाण ।।४५४।।

अतेवर बहू कीनौ सोरु, जनु निसिव तकरणु पेष्यौ चोरु ।
मधुकर मिले पवरण सुष वास, विरजति तिनहि चली पिय पास ।।४५५।।

जिहि वन सवरण पास, सुपियरु, तपु मामत देष्यौ भरतार ।
बहुत भाति समुभायौ नाहु, परि तप ऊपर तजै ण गाहु ।।४५६।।

जौ अतिअसहै वहै बयारि, सकै होनु किम परवतु टारि ।
तोरयौ मोहु कर्म को हेतु, हम कुणि सुण्यौ पिता तपु लेतु ।।४५७।।

रथ चढि वीरु वहिरिण वन गए, किंकर बहुत साथ करि लए ।
दरसनु पेषि मुनिसर तनौ, तब हम भौ सुमरयौ आपणौ ।।४५८।।

कुसुमावली हमारी माइ, ताकी छोरि परे मुरझाइ ।
सीचि पवण जल चेयण लही, अपनै मुहु अरनी मव कही ।।४५९।।

वस्तुबन्ध

हउ जि जसहरु चद मै अम्हे पुरणु गेह रहे ।
मितहि मरिबिदोबिसिहि साण पसइ ।

सझावबए बिसुहु जाही कपि मइ किन्ह मलइ ।
जलयर झेली झागु पडु महि सुसटु कुर मत ।
तव चूख तनु छडि तहि, हम ए रहोइ विपत ।।४६०।।

दो विहि कुक्कुंटु हयौ प्रचेतु, हिंडिज झाल, भवतर लेतु ।
पुनु माइ दुष देषत फिरैं, ते हम बीर बहिनि अवतरे ।।४६१।।

अब तपु दोऊ करहि अलेउ, मनचरि एकु जिनेस्वर देउ ।
धरिणवइ भनै सकोमल भास, जिसुनि कमार वयनु मो पास ।।४६२।।

लेह महातप तेरौ ताउ, तू कुमार कीनौ महिराउ ।
बालक वयनु पिता कौ पालि, तौ निवहे कुल केरी चालि ।।४६३।।

पुत्र ण करहि पिता की आण, तौ ण काजु सीझै परवाण ।
लक्ष्मनु रामु भयौ परचंड, पिता वचनु सेयौ बन खंडु ।।४६४।।

ताते राजु करहु दिन चारि, फुनि तपु लीजहु काजु बिचारि ।
राजु सकति करिमो कहू दयौ, जस वे वनिक दुहु तपु लयौ ।।४६५।।

कुसुमावली अरजिका भई, बहुत नारि सहू दिष्या लई ।
भै दिन चारि राजु घर करयौ फुनि दै माइ हि सो परिहरयौ ।।४६६।।

गए सुदत्त सूरि मुनि पास, जो तप तेज सरु बनवास ।
णमसिकारु करि मागी दीषि, तब सुदत्त गुरु दीणी सीष ।।४६७।।

तुम दोऊ बालक सुकुमाल, कोमल जिसे पऊ के नाल ।
पचम महाव्रत दूमह धरे, ते तुम पास जाहि किम धरे ।।४६८।।

जोग त्रिकाल देहि किम धीर, केम परीसह सहहि सरीर ।
पाष मास किम सहहिउ पास, सहि कुमार किम सहहि पिवास ।।४६९।

जब लगि दोऊ समरथ होऊ, अनुव्रत धरहु कुमर दलि कोहु ।
स गुर बचन सुनि कुमरु कुमारि, लीनौ तपु आभरण उतारि ।।४७०।।

कोऊ लाहु जील्यौ मौ मानु, सुष दुष तिणहु भु एक समान ।
थोषहि आगमु बारह अग, निसि दिनु रहहि गुरु कै सग ।।४७१।।

जिनवर वदत तीरथ थान, संजम रावत पच पराण ।
करत विहार कम्मुं सुनि राइ, नयरि तुमारी पहुचे आइ ।।४७२।।

गुरु उपदेस चले निरगंथ, भोजन निमित नगर कै पंथ ।
तुव किंकर लैते वरी प्राण, गहिलाए देवी कै थाण ।।४७३।।

हय तु बैठो देख्यो राइ, जनु ससि अवरु उयो कराइ।
तुम अलिगहु करि बूझी बात, मैं सब कही भयौ सुक गात ॥४७४॥

ऐसी सुनि तई गुरु वाणि, मारिदत्त तिन पकडी आसि।
को काको सगु आपहि बधु, मानसु मूढ ण चेतई अधु ॥४७५॥

कबहु जियहि ण लाग्यो वेसु, को गति फिरयौ भवतर लेसु।
मारिदत्त राजा सुमहाणु, निसुण्यौ जसहर तनौ पुराणु ॥४७६॥

मारिदत्त का पापों से भयभीत होना—

चिमक्यौ राव पाप डर लयौ, खिसु सौ उतरि स वनु को भयौ।
पाइ परयौ जोगी अरु राइ, देवी बहुत विमन पछिताइ ॥४७७॥

मारिदत्तु न सेवर वीरु, लयौ उसास नयण भरि नीर।
निंदि अपनीओ आसै बात, राखि राखि जय वर जगतात ॥४७८॥

नरक परत राखहि परचंड, भवगति सायर तरण तरंड।
दै तपु मोहि ग्रिषी सुर काल, बार बार विनवौ महिपाल ॥४७९॥

दोहरा

तहि मुनि सूरि सुदत्त गुरु, जान्यो अवधि प्रमाण।
नर वैं अभय कुमार लहु, संबोहिउ तहि थान ॥४८०॥

सुदत्त मुनि का देवी के मन्दिर में आगमन—

निसुनहु कथा अपूरब आण, मुनि आयौ देवी को थान।
मुद्रा पेषि अकम्प्यो राउ, आसनु छांडि करयौ पसाबाउ ॥४८१॥

पाइनु अभैरुचि परयौ, अमसि कालु जोगी तुर करयौ।
देवी तनौ गवुं गलि गयौ, अपनो थानु सुहाउठयौ ॥४८२॥

मुंड रुंड सब कीनौ दूरि, कीनौ गेहु कनको पूरि।
अगनु चदन राख्यौ लीपि, चोया कुं कुह पूरी सींपि ॥४८३॥

बहुत कुसुम तरु वंदन वार, भवर बास गुंजरहि अपार।
फेरि रूपु तन अति सुन्दरि, रोहिणि जनकु सुयं ते फरि ॥४८४॥

जीव जुगल सब दे नै मेलि, मगलु घोसिउ माडे केलि।
मारिदत्तु पभणै गुण राषि, मो सहु देव भवंत भासि ॥४८५॥

पभनहु स्वामि भव आपनौ, गोवरधन अरु जोगी तनौ।
राउ जसोधु चन्द्रमति राणि, देवी की भव कहहु बखाणि ॥४८६॥

पूर्व भवों के बारे में प्रश्न—

कुसुमावलि भरु कस मैं राउ, मेरी अरु जिम जननी ताउ ।
अरु जिम महिष तुरंग मुहयौ, अमिय महादे कुबज कुरयौ ॥४८७॥

सरमघकी काकी अवतरयो, भासि सुदत्त बोल रस भरयो ।
मारिदत्त मुनि आसी सूरि, सखी हुरमि चित्त की धूरि ॥४८८॥

सुदत्त मुनि द्वारा वर्णन—

गंधर्व देसु अरु पुरु गंधर्व, पेषत हरै अमर को गर्व ।
तहि वैधर्व राउ परचडु, एक छत्र भुजै महिमंड ॥४८९॥

विभ्रसिरी भामिनि गुण रेह, रामचन्द्र घरि सीता जेह ।
गधर्व सेनु पुत्रु तिन जन्यौ, अति सुरुपु जनु सुरपति बन्यौ ॥४९०॥

गधर्वा पुत्री मृग नयनि अति मुख जोति चदु जनु रयणि ।
मत्री रामु नामु प्रभु तनौ, राज मत्रु जो जानै घनौ ॥४९१॥

अवला तासु कणक सम देह, बालक हरिण नयण ससि लेह ।
नदन वेवि पयंड सरीर, नामु जितारि भीउ बर वीर ॥४९२॥

गधर्वा सुव राजा तनी, सो जितारि ब्याही तन बनी ।
सो देवर रमि चूरी पाप, दुसह जाणि मयन की ताप ॥४९३॥

गधर्व राजा पारधि गयौ, तहि वैराग भाव मन भयौ ।
सुव वैधर्वहि दीनो राजु, आपुनु किय़ौ परम ताप काजु ॥४९४॥

अतकाल करि सुव पर मोह, सो मरिण रवै भयौ जसोहू ।
तहि जित सत्र पेषि रतनारि, करि वैरागु महा धुपारि ॥४९५॥

जिनवर धर्म्म पालि गुन षाणि, राउ जसोधर उपन्यौ आनि ।
गधर्व वहिणि तनी सुनि वात, तपु करि सही परीषह घात ॥४९६॥

करि सन्यासु काटि भव पापु, मारिदत्त सो जाणहि आपु ।
गधर्बा जिनि देवरु रयौ, समझी अन्त काल तपु लयौ ॥४९७॥

सो मारि अमिय महादे भई, रमि कूबरो नरक सो गई ।
सीवरमी बायर की तिरी, कुब कसकु कीनौ अति फिरी ॥४९८॥

सीलु मु जि अपजसु संग्रह्यौ, पापी जन्मु कुबिज को लह्यौ ।
मत्री रामु रवन ससि लेह, तपु करि सीजन सो सी देह ॥४९९॥

पयर पयरि दोऊ अवतरे, वर्णी कहा महागुण भरे ।
जिनवरु पुजि धर्म्मु पहिचानि, सो अर्भ कुसुमावलि जाणि ॥५००॥

जो ही सवति चन्द्रमति तनी, मरिवि तुरंगु जाय अपनी ।
सो सखिरै महिषको भयो, सो मिरगुण पूरि सलको भयो ॥५०१॥

अत काल आयर सुनि काल, तिनि आको फजि लियो तदाल ।
रुपि निखनि तुमारी हाइ, ताके उदर अवतर्यो आइ ॥५०२॥

राज कुसुमदत परिहि सोइ, पुण्य पूरितु तेरे भर होइ ।
तेरो पिता कर्म्म को लयो, चन्द्रमारि देवी सो भयो ॥५०३॥

सील निहाण तुमारी माइ, सो सदि जोगी उपन्यो आइ ।
असवंधुर अवनी को राउ, राइ जसोध तनो जो ताउ ॥५०४॥

सो सुहभाणा चयो तजि मोह, जिनवर धर्म्म तनो कहि बोहू ।
देसु कलिग राउ भगदतु, कुद लता भामिनि को कतु ॥५०५॥

भरण कण कचण दीसै भन्यो, जसवधुर तनजु अवतन्यो ।
नामु सुदत्त राउ गुण गेह, सो मुनिवर हौ भयो एहु ॥५०६॥

राय जसोध तनो सुपहासु, मभी राज देह पकवासु ।
भायु अव सुमिरि परमेष्ठि, सा जानै गोवरधन सेठि ॥५०७॥

मारिदत्त जो वूझो मोहि, सब समुझाई पकासो तोहि ।
अवधि णयण जान्यो परमानु, मैं भासको भव भमण कहाणु ॥५०८॥

तुव पुर पच वार फिरि गयो, तौ सौ राइण दरसनु भयो ।
काल लवधि जब आवै राइ, तब ही सुभ गति जीउ लहाइ ॥५०९॥

मारिदत्त द्वारा दीक्षा—

मारिदत्त तपु लयो विचारि, पच मूठि सिर केस उपारि ।
जोगी सु गुर तनै पग परयो, सब पाषंड भाउ परिहरयो ॥५१०॥
भनै दिगंबर मो तपु देहु, दया नेह मत विरमु करेहू ।
चवे सुगुरु मुनि संजमवत, कैलाणम रयणायर सत ॥५११॥

सुदत्त का भैरवानन्द को उपदेश—

दिन बाईस तुमारी आयु, वेगि धर्म्म को करहि उपाउ ।
तब जोगी मन लाग्यो चेतु, चित थी आपु जीव को हेतु ॥५१२॥
परिहरि पानु पानु सबु भोगु, लै सन्यासु दियो जिन जोगु ।
बारह अनुपेखा मन भाइ, सुर्ग तृतीय सुर उपज्यौ जाइ ॥५१३॥
ठाडी भई देवि कर जोडि, सा सि नरक मो काढ़ बहोरि ।
मो वीराधि जीर तपु देहु, भव सायर बूडत गहि लेहु ॥५१४॥

कुसुमवान मारिवि मन भूरु, भावैं सुरग अंतरहू सूरु ।
तो कहु तपुरा जोगु सुर नारि, समिकत रयणु लेहु हिउ धारि ॥५१५॥

स्वय देवी द्वारा अहिंसा धर्म स्वीकार करना—

जीव घात को छाडहि भाव, जे पूजहि तिन बरजि रहाइ ।
तजहि आपनी पहिली चालि, जिनवर तनौ धम्मु प्रतिपालि ॥५१६॥
जीव घातु तव देवी छाडि, आपुनु फिरी नगर मह टाडि ।
जो मेरै मडंफ बलि देइ, ताके घर किनु देवी लेइ ॥५१७॥
नि सुनहु सबै नगर नर णारि, मो पूजत घर बैसि जुआरि ।
जो कहि है देवी बलि लेइ, कुसरणि करिहौ ताकै गेह ॥५१८॥
मेरै नाम बजावै तूरु, ताकै पेट उठै दिन सूरु ।
समिकत रयनु देवि ले रही, परिहरि कुगति सुगति सुरि गई ॥५१९॥
लयौ महाव्रतु अभय कुमार, भए बहुत नर समिकत धीर ।
पढम सुग्र भगिनी अरु बीरु, भए अमर सो सुद्ध सरीर ॥५२०॥
मारिदत्तु जस मै बहु कीठि, ध्याइ ध्याइनु मन करि परमेठि ।
करि तपु दुद्धर उपनो देव, सुकिल लेस सुर हर जौ लेव ॥५२१॥
सूरि सुदत्तु नाम सुकहाणु, चाढि समेदि सिहिरि दै ध्यानु ।
निद्दलि कम्मं खीणि भवसति, सप्तम सुग्र भयौ सुर पति ॥५२२॥
अनुकमेण पावहि सिव ठानु, सुष समूह को कहण समानु ।
जसहर चरितु वलि सबु कह्यौ, दया धम्मु फुणि सुव नर मह्यौ ॥५२३॥
मगलु करौ जिनेसरु वीरु, तिसुकत निम्मल होइ सरीरु ।
निसुनहु नामु जासु सुभ थानु, जिहि निवसते मै ठयौ पुरानु ॥५२४॥

ग्रथ प्रशस्ति—

गग जमुन विच अंतर वेलि, सुष समूह सुर मानहि केलि ।
नयरि कैलई जनु सुर पुरी, निवसै बनी छतीसो कुरी ॥५२५॥
अभयचदु तहं राउ निसकु, जनुकु सुषोडस कला मयकु ।
परजा दुषी न दीसै कोइ, घर घर बीध बधाऊ होइ ॥५२६॥
श्रावग बहुत बसहि जहि गाम, जनु आसि को दीनो सियराम ।
पौमावै पुर वर सुष सील, सुर समान घर मानहि कील ॥५२७॥
सा कन्हर सुतु भारग साहू, जिनि धनुष रचि लियो जसलाहू ।
जस रानी पटनु सुभ ठौरु, गौड महापुरु दूजौ ग्रोरु ॥५२८॥
अनगरु अंतपुरु अरु सोहारु, च्यारयौ गाव बसावन हारु ।
जासु नामु पडुवा सुरि तान, राज काज जाण्यो सुरिताण ॥५२९॥

तासु नारि देवश्री नाम, जिम ससि हर रोहिणि रति काम ।
सोलु महा तहि लीनो पोषि, बंधन तीनि प्रकतरे कोषि ।।५३०।।
मेघु मेघुवर सुजस रासि, अनु कुसु सूर ससि सुकु प्रकासि ।
जेठौ मेघु साहू सुपहाणु, जासु नाम मै ठयौ पुराणु ।।५३१।।
पुत्र हेतु आनै उपगारु, जिनवर जगिन करावण हारु ।
बहुत गोठि लै चाल्यौ साथ, करी जात सिरी पारस साथ ।।५३२।।
परचि बहुतु धनु राव न यान, घर आयौ दियौ भोजण दाण ।
ताको पुत्र रत्नु अवतर्‌यौ, रयनायरु गुण दीसैं भर्‌यौ ।।५३३।।
भाव भगति करि दीजै दानु कीजैं भवन गुणी कौ मानु ।
जौ कुटवु बरणौ विस्तरी, बाढै कथा अवर दूसरी ।।५३४।।
राम सुतनु कवि गारवदासु, सरसुति भई प्रसन्नी जासु ।
वसत फफोतू पुर सुभ ठौर, श्रावग बहुत गुणी अहि और ।।५३५।।

रचना काल—

वसुविहू पूजिजिनि नेस्वर एह्वानु, लै प्रभारु दिन सुनहि पुरानु ।
सवतु पन्द्रहसै इकयसी, भादौ सुकिल श्रवण द्वादसी ।।५३६।।
सुर गुरुवारु करणु तिथि भली, पूरी कथा भई निरमली ।
जसहर कथा कही सब भासि, सिष लै भाव परम गुरपासि ।।५३७।।
वादिराज भासी गुर सूरि, तासु छाह पभनी भरि पूरि ।
सवलु सघु नवौ सुष पूरु, जब लगि गग जलधि ससि सुरु ।।५३८।।
मेघ माल बरसैं असरार, बोष बधाए मगलवार ।
निसुनिवि व सम तला बहू षोरि, हीनु अधिक सो लीजहु जोरि ।।५३९।।
पढै गुणै लिषि देई लिषाइ, अरु मूरिष सौ कह्रौ सिषाइ ।
ता गुण वणि बहुतु कवि कहै, पुत्र जनमु सुष सपति लहै ।।५४०।।

इति जसोधर चौपई समाप्त ।। संवत् १६३० मागसर सुदि ११ वार दीतवार ।।

□□□

५

कविवर ठक्कुरसी

भक्ति कालीन कवियों मे कविवर ठक्कुरसी का नाम उल्लेखनीय है। उनकी पञ्चेन्द्रिय वेलि एवं कृपण छन्द बहु चर्चित कृतिया रही हैं। इनका परिचय प्राय सभी विद्वानो ने अपने ग्रन्थों मे देने का प्रयास किया है। लेकिन फिर भी जो स्थान इन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास मे मिलना चाहिए था वह अभी तक नहीं मिल सका है। इसके कई कारण हो सकते हैं। सर्वप्रथम पं० नाथूराम जी प्रेमी ने अपने "जैन हिन्दी साहित्य के इतिहास" मे इनकी एक कृति कृपण चरित्र का परिचय दिया था। इसके पश्चात् डा० कामता प्रसाद जैन ने "हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" नामक पुस्तक मे कवि की कृपण चरित्र के अतिरिक्त पञ्चेन्द्रिय वेलि का भी परिचय उपलब्ध कराया था।

सन् १९४७ से ही राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूचियो का कार्य प्रारम्भ होने से गुटको से अन्य कवियो के साथ-साथ ठक्कुरसी की रचनाओ की भी उपलब्धि होने लगी और प्रथम भाग से लेकर पञ्चम भाग तक इनकी कृतियो का नामोल्लेख होता रहा इससे विद्वानो को कवि की रचनाओ का नामोल्लेख ही नही किन्तु परिचय भी प्राप्त होता रहा। पं० परमानन्द जी शास्त्री देहली का पहिले अनेकान्त में और फिर "तीर्थंकर महावीर स्मृति ग्रन्थ" में कवि पर एक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ है जिसमे उसकी ७ रचनाओ का विस्तृत परिचय भी दिया गया है। इससे कवि की ओर विद्वानो का ध्यान विशेष रूप से जाने लगा। इसी तरह और भी जैन विद्वान कवि के सम्बन्ध मे लिखते रहे हैं। इतिहास में स्थान देने वालो मे डा० प्रेमसागर जैन का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने 'हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि' में कवि के सम्बन्ध में सामान्य रूप से मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।

जैन विद्वानो के अतिरिक्त जैनेतर विद्वानों में डा० शिवप्रसाद सिंह का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने "सूर पूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य" मे कवि की तीन

रचनाओं का परिचय देते हुए कवि की इन कृतियो को राजस्थानी एव ब्रज भाषा से प्रभावित कृतियां बतलायी।

लेकिन इतना होने पर भी कवि को जो स्थान एव सम्मान मिलना चाहिए था वह उसे प्राप्त नहीं हो सका। इसका प्रमुख कारण भी वही है जो अन्य कवियो के सम्बन्ध मे कहा जाता है।

ठक्कुरसी राजस्थान के ढूंढाहड क्षेत्र के कवि थे। इन्होंने स्वय ने अपनी कृति "मेघमाला कहा" मे ढूंढाहड शब्द का उल्लेख किया है और चम्पावती (चाटसू) को उस प्रदेश का नगर लिखा है।[1] कवि चम्पावती के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम घेल्ह था। वे स्वयं भी कवि थे जिसका उल्लेख कवि ने अपनी कितनी ही रचनाओं में किया है। घेल्ह कवि की अभी तक की रचनाएँ 'बुद्धि प्रकाश एवं विशाल कीर्ति गीत" उपलब्ध हो सकी हैं। दोनों ही रचनाएँ लघु रचनाएँ हैं। ठक्कुरसी को कवित्व वंश परम्परा से प्राप्त था। ये जाति से खण्डेलवाल दि० जैन थे। इनका गोत्र पहाड्या था। स्वयं कवि ने अपने आपको पहाडिया वंश शिरोमणि लिखा है।[2] कवि की माता भी बडी धर्मात्मा थी। इसलिए पूरे घर के संस्कार धार्मिक विचारधारा वाले थे।

ठक्कुरसी संभवत व्यापार करते थे तथा राज्य सेवा मे वे नहीं थे। यद्यपि कवि ने चम्पावती के शासक 'रामचन्द्र' के नाम का उल्लेख किया है लेकिन उससे ऐसा प्रतीत नही होता कि वे राज्य मे किसी ऊंचे पद पर काम करते हो। कवि का जन्म कब हुआ, उसकी बाल्यावस्था एव युवावस्था कैसे बीती, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है और न कवि ने स्वय ने ही अपने जीवन के बारे मे कुछ लिखा है। कवि का वैवाहिक जीवन कैसे रहा तथा कितनी सन्तानों का उन्हे सुख मिला ये सब प्रश्न भी अभी तक अनुत्तर ही हैं।

लेकिन इतना अवश्य है कि इनके जमाने मे चम्पावती पूर्णत धन्य-धान्य पूर्ण थी। महाराजा रामचन्द्र का शासन था। तक्षकगढ (टोडारायसिंह) के शासक

---

१ इह लोकइ ढूंढाहड देस मज्झि, णायरी चम्पावइ अत्थि तत्थि।
तहिं अत्थि पास जिणवर निकेउ, जो भव कम्मिह नासण हेउ।।

मेघमाला कहा

२ पवड पहाडिहि वंस सिरोमणि, घेल्हा गुरु तसु तियवर धरमिणि।
ताह तणइ कवि ठाकुरि सुन्दरि, यह कह किय संभव जिण मन्दरि।।

ही चम्पावती के शासक थे। महाराजा रामचन्द्र के शासन काल में लिखी हुई पचासों हस्तलिखित प्रतियां राजस्थान के विभिन्न जैन शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत हैं। ठक्कुरसी स्वयं [illegible] कवि के समय [illegible] विशेष प्रसिद्धि प्राप्त [illegible] कृति से [illegible] कविवर के विशेष [illegible] की ओर कितनी ही रचनाएं [illegible] लिखने में [illegible] का विशेष आग्रह रहा था। लेकिन इसी चम्पावती में कुछ ऐसे [illegible] भी थे जो [illegible] थे और [illegible] भी [illegible] धर्म कार्य में खर्च नही करते थे। कवि को इसीलिए 'कृपण छन्द' लिखना पड़ा जिसमें एक कृपण की एव उसके कृपण मित्र की कहानी दी हुई है।

तत्कालीन समाज—कवि के समय के समाज को हम सम्पत्ति-शाली एव ऐश्वर्य [illegible] समाज कह सकते हैं। कविवर ठक्कुरसी ने 'पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी' से तत्कालीन प्रदेश एव विशेषतः चम्पावती नगरी का [illegible] वर्णन मिलता है उसके अनुसार चम्पावती व्यापार का केन्द्र थी तथा इसमे कोई भी व्यक्ति दुःखी नही दिखाई देता था। जैन समाज को कृपण समझा [illegible]। जहा समय-समय पर महोत्सव होते रहते थे। उस नगर में रहने वाले सभी भाग्यशाली होते थे ऐसी लोगो की धारणा थी।[1] कृपण छन्द मे भी एक स्थान पर वर्णन आया है कि जब श्रावक गण यात्रा से लौटते थे तो वापिस आने की खुशी में बड़े लम्बे-लम्बे भोज होते थे। लोगो का खान पान रहन-सहन अच्छा था। पान खाने की लोगों में रुचि थी। लेकिन सम्पन्न समाज होने पर भी लोग व्यसनों मे फसे रहते थे। यही कारण है कि कवि को सप्त व्यसन पर दो कृतिया लिखनी पड़ी थी।

साधु गण—चम्पावती उस समय भट्टारको का केन्द्र था और वहीं उनकी गादी था। प्रभाचन्द्र उस समय वहा भट्टारक थे। कवि ने उन्हे मुनि लिखा है और जब वे प्रवचन करते थे तो ऐसा लगता था कि मानो स्वयं गौतम गणधर ही प्रवचन कर रहे हो।[2] इन्ही के शिष्य थे मुनि धर्मचन्द्र जो बाद मे मण्डलाचार्य कहलाने लगे थे। कवि ठक्कुरसी ने धर्मचन्द मुनि के उपदेश से 'व्यसन प्रबन्ध' की लघु कृति की रचना की थी।[3]

---

१ जहा न को जणु वसइ दुखिउ. जैन महोछा [illegible]।
जहि दिनि दिनि दीसन्ति, तहा वसहि जे धण्णु [illegible] कहति।

२ तसु मज्झि पहासणि वर मुणीसु, सह सठिउ ण गोयमु मुणीसु।
मेघमाला कहा

३ मुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यौ, कवि ठाकुरि विसन प्रबंध कह्यौ।
व्यसन प्रबन्ध

खण्डेलवाल समाज—कवि के समय मे चम्पावती मे खण्डेलवाल दि० जैन समाज का अच्छा थोक था। अजमेरा, काकलीवाल, पहाड़िया, साह आदि गोत्रों के श्रावक परिवार प्रमुख रूप से थे। सभी श्रावक धन सम्पन्न थे। भगवान पार्श्वनाथ की मूर्त्ति विशेष श्रद्धा एवं भक्ति का केन्द्र थी। मूर्ति अतिशय युक्त थी। बादशाह इब्राहीम लोदी के आक्रमण का भी उसी की भक्ति एवं स्तवन से रक्षा की थी। स्वय कवि श्री भगवान पार्श्वनाथ के पूरे भक्त थे इसलिए जब कभी अवसर मिला कवि पार्श्वनाथ के गीत गाने लगते थे।

काव्य रचना

कवि की अभी तक कोई बड़ी कृति देखने में नहीं आयी। मेघमाल कहा मे अवश्य २१५ कडवक छन्द तथा २११ अन्य छन्द हैं। कवि की ७ रचनाओ का परिचय प० परमानन्द जी ने दिया था लेकिन शास्त्र भण्डारो की ओर खोज करने पर अब तक कवि की १५ रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१	पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी	रचना संवत् १५७८
२.	कृपण छन्द	,, ,, १५८०
३.	मेघमाला कहा	,, ,,
४	पञ्चेन्द्रिय वेलि	,, ,, १५८५
५	सीमधर स्तवन	
६.	नेमिराजमति वेलि	
७	चिन्तामणि जयमाल	
८.	जैन चउवीसी	
९	शील गीत	
१०	पार्श्वनाथ स्तवन	
११	सप्त व्यसन षट पद	
१२	व्यसन प्रबन्ध	
१३	पार्श्वनाथ स्तवन	
१४	ऋषभनाथ गीत	
१५.	कवित्त	

उक्त १५ रचनाओ मे प्रथम ४ रचनाओं में रचना संवत् का उल्लेख किया गया है शेष सब रचना काल से शून्य है। उक्त रचनाओं के आधार पर कवि का

साहित्यिक जीवन संवत् १५७५ से प्रारम्भ होकर संवत् १५९० तक चलता है। इन १५ वर्षों मे कवि साहित्य निर्माण में लगे रहे और अपने पाठको को नयी-नयी कृतियो से रसास्वादन कराते रहे। कवि के पूरे जीवन के सम्बन्ध मे निश्चित तो कुछ नही कहा जा सकता है लेकिन ७० वर्ष की आयु भी यदि मान ली जावे तो कवि का समय संवत् १५२० से १५९० तक का माना जा सकता है।

पञ्चेन्द्रिय वेलि में इन्होने अपने आपको जति शब्द से सम्बोधित किया है इसका अर्थ यह है कि इन्होने अपने अन्तिम वर्षों मे साधु जीवन अपना लिया था। तथा भट्टारको के संघ में ही अपना जीवन व्यतीत करने लगे थे।

उक्त १५ रचनाओ मे "मेघमाला कहा" के अतिरिक्त सभी लघु रचनायें हैं इसलिए मेरी तो ऐसी धारणा है कि कवि की अभी और भी बड़ी रचनायें मिलनी चाहिए क्योंकि बड़े कवि को छोटी-छोटी रचनाओ से ही सन्तोष नही होता उसे तो अपनी काव्य प्रतिभा बड़ी रचना निबद्ध करने मे ही दिखाने का अवसर मिलता है। 'मेघमाला कहा' एक मात्र अपभ्रंश रचना है शेष सब रचनाये राजस्थानी भाषा की रचनाये कही जा सकती है। जिन पर ब्रज भाषा का भी प्रभाव दिखाई देता है।

उक्त रचनाओ का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१. सीमधर स्तवन

इसमे विदेह क्षेत्र मे शाश्वत विराजमान सीमधर स्वामी का ३ छप्पय छन्दो मे वर्णन किया गया है। रचना के अन्त मे 'लिखित ठाकुरसी' इस प्रकार उल्लेख किया हुआ है। भाषा एव भावो की दृष्टि से स्तवन अच्छी कृति है। इसकी एक प्रति शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर गोधान जयपूर के ८१ सख्या वाले गुटके मे ४८–४९ पृष्ठ पर अकित है

२ नेमिराजमति बेलि

जैन कवियो ने वेलि सज्ञक रचनायें लिखने मे खूब रुचि ली है। हमारे स्वय कवि ने एक साथ दो वेलिया लिखी हैं जिनमें राजमति वेलि प्रथम बेलि है। इसका दूसरा नाम नेमीश्वर बेलि भी है। इसमे नेमिनाथ और राजुल के विवाह प्रसग से लेकर वैराग्य धारण करने एव अन्त मे निर्वाण प्राप्त करने तक की सक्षिप्त कथा दी हुई है।

बसन्त ऋतु आती है और सब यादव वन विहार के लिए चले जाते हैं। इस अवसर पर नेमिनाथ के अपूर्व पौरुष का सब को पता चल जाता है और उसके

पीछे विवाह को लेकर अन्य घटनाएँ घटती हैं। नेमिकुमार जल क्रीड़ा करके सरोवर से निकलते हैं और गीले कपड़े निचोड़ने के लिए रुक्मिणी से प्रार्थना करते हैं। लेकिन रुक्मिणी तो उनके बड़े भाई नारायण श्रीकृष्ण की पत्नी थी इसलिए वह कैसे कपड़े निचोड़ती। उसने इतना कह दिया कि जो सारग धनुष चढ़ा देगा, पाञ्चजन्य शख पूर देगा तथा नाग शैय्या पर चढ़ जावेगा, उसी के रुक्मिणी कपड़े धो सकती है। रुक्मिणी का इतना कहना था कि नेमिकुमार चल दिये अपना पौरुष दिखलाने आयुध शाला मे। वहां जाकर पल भर मे उन्होंने तीनो ही कार्य कर डाले। शख पूरते ही यादवों मे खलबली मच गई और स्वय नारायण वहां आ पहुँचे। नेमिनाथ का बल एव पौरुष देखकर सभी आश्चर्य चकित हो गये। अन्त मे नेमिनाथ को वैराग्य दिलाने की युक्ति निकाली गयी। विवाह का प्रस्ताव रखा गया। बारात चढ़ी। तोरण द्वार के पास ही अनेक पशुओ को दिखलाया गया। नेमिनाथ के पूछने पर जब उन्हे मालूम चला कि ये सब बरातियो के लिए लाये गये हैं तो उन्हें ससार से विरक्ति हो गयी और तत्काल रथ से उतर कर ककण तोड़ कर गिरनार पर जा चढ़े और मुनि दीक्षा धारण कर ली। राजुल के विलाप का क्या कहना। उसने नेमिनाथ को समझाया, प्रार्थना की, रोना रोया, आसू बरसाये लेकिन सब व्यर्थ गया। अन्त मे राजुल ने भी जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

प्रस्तुत कृति पद्धडिया छन्द के आधार पर लिखी गयी है। प्रारम्भ मे २ दोहे हैं और फिर कडवक छन्द हैं। इस प्रकार पूरी वेलि मे १० दोहे तथा ५ पद्धडिया छन्द हैं। सभी वर्णन रोचक एव प्रभावोत्पादक हैं। भाषा ब्रज है जिस पर राजस्थानी का प्रभाव है। जब राजुल के समक्ष दूसरे राजकुमार के साथ विवाह करने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया तो राजुल ने दृढ़तापूर्वक निम्न शब्दो में विरोध किया—

जपइ रजमतीय अणेरा, जिण विणु वर बधव मेरा ।।११।।
कै वरउ नेमिवरु भारी, सखि कै तपु लेउ कुमारी।
चढि गैवरि को खरि वैसे, तजि सरगि नरगि को पैसै ।।१३।।
तजि तीणि भवन को राई, किम अवरनु वरौ बस माई ।।

नेमिकुमार की अपूर्व सुन्दरता, कमनीयता एव रूप पर सभी मुग्ध थे। जब वे बसन्त क्रीड़ा के लिए जाने लगे तो उस समय की सुन्दरता का कवि के शब्दो मे वर्णन देखिये—

कवि कहइ सुनिय बणु घणु, जसु परणइ एहु मदणु।
इणि परितिय अणेक्क पयारा, बहु करिहिति काम विकारा।
जिणु तव इण दिठि वे बोलै, नाउ मेरु पवन भै डोलै ।।५।।

कवि ने रचना के अन्त में अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

कवि घेल्ह सुतनु ठाकुरसी, किये नेमि सु अति मति सरसी।
नर नारि अको मिल गावै, जो चितै सो फलु पावै ॥२०॥

नेमिराजमति वेलि की पाण्डुलिपिया राजस्थान के कितने ही भण्डारों में उपलब्ध होती है। जिनमे जयपुर, अजमेर के ग्रन्थागार भी हैं।

३. पञ्चेन्द्रिय वेलि

पञ्चेन्द्रिय वेलि कवि की बहुत ही चर्चित कृति है। इसमें पांच इन्द्रियो की वासना एव उनमे होने वाली विकृतियों पर अच्छा प्रकाश डाला है। और अन्त में इन्द्रियो पर विजय पाने की कामना की गयी है। जिसने इन इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की वह अमर हो गया, निर्वाण पथ का पथिक बन गया लेकिन जो जीव इन्ही इन्द्रियो की पूर्ति मे लगा रहा उसका जीवन ही निकम्मा एव निन्दनीय बन गया। इन्द्रिया पाच होती हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु एव श्रोत्र। और इन पाच इन्द्रियो से पाच काम अर्थात् अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं और वे हैं, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द। इन्द्रियो के इन पाच काम गुणो के वशीभूत होकर मन सासारिक भोगो मे उलझ जाता है और अपने सच्चे स्वरूप को भूला बैठता है। इसलिए सच्चा वीर वही है जिसने इन काम गुणों पर विजय प्राप्त की हो। कबीर ने भी सूरमा की यही परिभाषा की है—

कबीर सोइ सूरमा, मन सो माडे जूझ।
पांचो इन्द्री पकडि कै, दूर करे सब दूझ ॥

कबीर ने फिर कहा कि जो मन रूपी मृग को नही मार सका वह जीवन मे अभ्युदय एव श्रेयस का भागी कदापि नहीं हो सकता

काया कसो कमान ज्यो, पाच तत्व कर बान।
मारो तो मन मिट गया, नहीं तो मिथ्या जान ॥

पञ्चेन्द्रिय वेलि कवि की सवतोल्लेख वाली अन्तिम कृति है अर्थात् इसके पश्चात् उसकी कोई अन्य कृति नहीं मिलती जिसमे उसने रचना सवत दिया हो। इसलिए प्रस्तुत कृति उसके परिपक्व जीवन की अनुभूति का निष्कर्ष रूप है। कवि द्वारा यह सवत् १५८५ कार्तिक शुक्ला १३ को समाप्त की गयी थी।[1]

---

१ सवत पन्द्रहसैर पिच्यासे तेरसि सुदी कातिग मासे।
जिहि मनु इ द्री वसि कीया, तिहि हुर तरपत जग जीया ॥

ठक्कुरसी ने वेलि के अन्त में अपने और अपने पिता के नाम का भी उल्लेख किया है तथा अपने आपको 'गुणवाम' विशेषण से सम्बोधित किया है। जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि ठक्कुरसी की कीर्ति उस समय आकाश को छू रही थी।[1]

विषय प्रतिपादन

कवि ने एक-एक इन्द्रिय का स्वरूप उदाहरण देकर समझाया है। सबसे पहले वह स्पर्शन इन्द्रिय के लिए कहता है कि वन मे स्वतन्त्र रहते हुए वृक्षों के पत्ते एव फल खाते हुए स्पर्शन इन्द्रिय के वश मे होकर ही हाथी जैसा जीव मनुष्य के वश में हो जाता है और फिर अकुशो की मार खाता रहता है। कामातुर होकर हाथी कागज की हथिनी के पीछे सब कुछ भूल जाता है।

> वन तरुवर फल खातु, फिरि पय पीवतो सुछद।
> परसण इन्द्री प्रेरियो, बहु दुख सहै गयन्द।
> बहु दुख सहो गयदो, तसु होइ गई मति मदो।
> कागज के कुजर काजे, पडि खाडन सक्यो न भाजे।

कीचड मे फसने के पश्चात् मदोन्मत हाथी की जो दशा होती है उस पर कवि मानो आसू बहाते हुए कहता है—

> तहि सहीय घणी तिस भूखो, कवि कौन कहत स दूखो।
> रखवाला बलगउ जाण्यो, बेसासि राय घरि आण्यो।
> वध्यो पगि सकुलि घाले, तिउ कियउन सक्कइ चाले।
> परसण प्रेरे दुख पायो, निति अकुस घावा घायौ॥

कवि ने स्पर्शन इन्द्रिय के वशीभूत होने के कारण जिन-जिन महापुरुषों ने अपने जीवन को नष्ट कर दिया है उनके भी कुछ उदाहरण देकर इस इन्द्री की भयकरता को समझाया है। मैथुन के वशीभूत होने पर ही कीचक को जीवन से हाथ धोना पडा। रावण की सारी प्रतिष्ठा एव रावणत्व धूल धूसरित हो गया। इसलिए जिस प्राणी ने स्पर्शन इन्द्रीय पर विजय प्राप्त की है उसी ने जीवन का असली फल चखा है।

> परसण रस कीचक पूरयो, गहि भीम सिला तलि चूरयो।
> परसण रस रावण नामैं, मारियउ लकेसुर रामैं।

---

१. कवि घेल्ह सुतनु गुणधामु, जगि प्रगट ठकुरसी नामु।

परसण रस सकट राख्यौ, तिह आपं नट ज्यो नाख्यौ ।
इहि परसरण रस जे पूता, ते नर सुर घणा विगूता । १॥

दूसरी इन्द्रिय रसना है । मानव सुस्वादु बन जाता है और अपना हिताहित भुला बैठता है । अपनी मृत्यु का कारण वह स्वय बन जाता है । जल मे स्वच्छन्द विचरने वाली मछली भी रसनेन्द्रिय के कारण ही जाल मे फँस कर अपने प्राण गवा बैठती है—

केलि करतो जनम जलि, गाल्यो लोभ दिखालि ।
मीन मुनिष ससारि सरि, काढ्यो धीवर कालि ।
सो काढ्यो धीवरि काले, तिणि गाल्यो लोभ दिखाले ।
मछु नीर गहीर पइट्ठौ, दिठि जाइ नही जहि दीठौ ।

कवि ने मानव रूपी मछली के रूपक द्वारा रसनेन्द्रिय के दुष्प्रभाव की विशद व्याख्या की है । उसके शब्दो मे जन्म को जल, मनुष्य को मछली, संसार को सरिता और काल को धीवर के रूप में देखने में कितनी यथार्थता है । इसके पश्चात् कवि ने रसनेन्द्रिय के प्रभाव की जो सत्य तस्वीर प्रस्तुत की है वह कितनी सुन्दर है—

इह रसणा रस कउ धाल्यो, चलि आइ मुवै दुख साल्यो ।
इह रसना रस के ताई, नर मुसै बाप गुरु भाई ।
घर फोडै पाडै वाटां, निति करै कपट घण घाटा ।
मुख झूठ साच सहिहि बोलै, घरि छोड दिसावर डोलै ।

कवि के कथन मे अनुभूति है और जीवन की जागती तस्वीर । रात दिन सुनते, देखते, पढते है "इह रसना रस के ताई, नर मुसै बाप गुरु भाई ।" इस रसना इन्द्रिय के चक्कर में पडकर इस मानव को झूठ कपट करना पडता है । अपने लहलहाते घर को उजाडना पड़ता है । झूठ का सहारा लेना पडता है तथा घरबार को छोड देश देशान्तर भटकना पडता है । यही नहीं छोटा-बडा, ऊँच-नीच, सब की मर्यादाओ को वह समाप्त कर देता है । यह सब रसना इन्द्रिय का चक्कर है । कवि के शब्दो में कितनी सच्ची अनुभूति है । अन्त में कवि ने यही अभिलाषा प्रकट की है कि यदि मानव जीवन को सफल बनाना है तो फिर रसना इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है—

रसना रस विणै अकारो, वसि होइ न औगण गारो ।
जिहि इहुर विवै वसि कीयो, तिहि मुनिष जनम फल लीयो ।

हिन्दी के अन्य कवियो ने रसना इन्द्रिय का कार्य केवल हरि भजन माना है। सूरदास ने 'सोई रसना सो हरि गुण गावै' लिख कर रसना इन्द्रिय के प्रमुख कर्त्तव्य की ओर सकेत किया है। कबीर ने अपनी पीडा यो व्यक्त की है —जी भडिया छाला परयां राम पुकारि पुकारि।

तीसरी इन्द्रिय है घ्राण। इस घ्राण इन्द्रिय के वश में होकर भी प्राणी कभी-कभी अपने प्राण गवा बैठता है। घ्राण इन्द्रिय की शक्ति बडी प्रबल है। चिउटी को शक्कर का ज्ञान हो जाता है तथा भौरे कमल को खोज निकालते हैं हम स्वयं भी अच्छी गन्ध मिलने पर प्रसन्न चित्त होकर आनन्द का अनुभव करने लगते हैं तथा दूषित गध मिलने पर नाक पर रुमाल लगा लेते हैं, नाक भो सिकोडने लगते हैं तथा वहा से भागने का प्रयास करते हैं। कवि ने भ्रमर का बहुत सुन्दर उदाहरण दिया है। जिस तरह गध लोलुपी भ्रमर कमल पराग का रस पान करता रहता है और वह कलि मे से निकलना भी भूल जाता है। बन्द कमल मे भी वह रगीन स्वप्न लेने लगता है—"रात भर खूब रस पीऊगा, और प्रात काल होते ही स्वच्छ सरोवर मे कमल की कलियां विकसित होगी मैं उसमे से निकल जाऊगा।" एक ओर वह भ्रमर सुनहरे स्वप्न ले रहा है तो दूसरी ओर एक हाथी जल पीने सरोवर मे आता है और जल पीकर उस कमल को उखाड लेता है और पूरे कमल को ही खा जाता है। बेचारा भौरा अपने प्राणो से हाथ धो बैठता है।

कमल पइठो भ्रमर दिनि, घ्राण गधि रस रूढ।
रैणि पडी सो सकुच्यौ, नीसरि सक्या न मूढ॥

अति घ्राण गधि रस रूढो, सो नीसर सक्यो न मूढो।
मनि चिंतै रयणि सबायो, रस लेस्यौं अजि अघायो।
जब उगैलो रवि विमलो, सरवर विकसै लो कमलो।
नीसरि स्यो तब इह छोडै, रस लेस्यौं आइ बहुडे।
चितवतै ही गज आयो, दिनकर उगवा न पायो।
जलि पैसि सरवर पीयो, नीसरत कमल खुडि लीयो।
गहि सु डि पाव तलि चप्यौ, अलि मारथो थर हर कप्यौ।
इहु गध विषै छै भारी, मनि देखहु क्यौ न विचारि।
इहु गध विषै वसि हुवो, अलि अहलु अखूटी मूवो।
अलि मरण करण दिठि दीजे, तउ गध लोभ नहि कीजे॥३॥

अन्त मे कवि ने मानव को भ्रमर की मृत्यु से शिक्षा लेने को कहा है कि जो प्राणी इस ससार की गन्ध लेने मे ही अपने आपको उसमे समर्पित कर देता है

उसकी भी भ्रमर के समान दशा होती है। आखो का काम देखना है। इन नेत्रों द्वारा रूप सौंदर्य को देखा जाता है और यह मानव अपनी आखो से रूप सौंदर्य को देखने का इतना आदि हो जाता है कि वह उसी देखने मे अपना आपा खो बैठता है। यह मानव रूप पर कितना मरता है, आखो की चोरी करता है और दूसरो की स्त्री की ओर झांकता रहता है। कवि ने अहिल्या और तिलोत्तमा का उदाहरण देकर अपने कथन की पुष्टि की है। यही नहीं "लोयण लपट झूठा, वाज्या नहि होइ अपूठा" कह कर चक्षु इन्द्रिय पर करारी चोट की है। यही नहीं आगे कहा है कि मना करने पर भी वह नही मानता है। लेकिन पांचो इन्द्रियो का स्वामी तो मन हैं जब तक मन वश में नही होता तब तक बेचारी ये इन्द्रियां भी क्या करें।[1] इसलिए इसी के आगे कवि ने कहा है कि—

लोयणे दोस को नाहीं, मन मेरे देखन जाही।

श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है शब्द, उसकी मधुरता, कोमलता और प्रियता पर प्राण निछावर करना जीव का स्वभाव है। हरिण वधिक का गीत सुनकर प्राण घातक तीर से व्यथित हो प्राण को छोड देता है। सर्प जैसा विषैला जन्तु सगीत की मीठी ध्वनि सुनकर बिल से निकल कर मनुष्य के अधीन हो जाता है। इसलिए कवि ने मानव को सचेत किया है कि वह हिरण की तरह मधुर नाद के वशवर्ती होकर अपने प्राणों का परित्याग न करे।

इस तरह ठक्कुरसी ने पञ्चेन्द्रिय वेलि मे पाचो इन्द्रियों के विषयासक्त पांच प्रतीको द्वारा मानव को सचेत रहने को कहा है। जो मानव इन पाचो इन्द्रियो के वशीभूत हो जाता है वह जल्दी ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर बैठता है।

अलि गज मीन पतग मृग एके कहि दुख दीघ।
जाइति भी भौ दुख सहै, जिहि वसि पच न किद्ध।

ठक्कुरसी कवि को अपनी कृति पर स्वाभिमान है इसलिए वह लिखता है—

करि वेलि सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष समझाया।
मन मूरिख सक उपाई, तिहि तणइ चित्ति न सुहाई॥

इस वेलि का दूसरा नाम गुण वेलि भी है।[2]

---

१ नेहु अवग्गलु तैल तसु बाती वचन सुरग।
रूप जोति परतिय विखै, पडहिति पुरुष पतग॥

२ देखिए राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग-२।

४ चिन्तामणि जयमाल

प्रस्तुत जयमाल ११ पद्यो की लघु कृति है जिसमे पार्श्वनाथ का स्तवन एव उनकी भक्ति के प्रभाव से घटित घटनाओ का उल्लेख किया गया है। जिनेन्द्र स्वामी की भक्ति से मानव अथाह समुद्र को तैर कर पार कर सकता है, सूली फूलो की माला बन सकती है और न जाने क्या क्या विपत्तियो से वह बच सकता है। जयमाल की भाषा अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी है। कवि ने अन्त मे अपना नामोल्लेख निम्न प्रकार किया है—

> इह वर जयमाल गुणह विसाला, थेल्ह सतनु ठाकुर कहए।
> जो णरु सिरिणि सिरक्कइ दिणि दिणि अक्खइ सो सुहमण वछिउ लहए।

प्रस्तुत जयमाल की प्रति जयपुर के गोधो के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के ८१ वे गुटके मे पृष्ठ २० से २२ तक सग्रहीत है।

५. कृपण छन्द

कविवर ठक्कुरसी का कृपण छन्द लौकिक जीवन के आधार पर निबद्ध कृति है। छीहल कवि ने पच सहेली गीत लिखकर जहाँ एक ओर पति वियोग एव पति मिलन मे नवयुवतियो की मनोदशा का चित्रण किया था वहाँ कवि ठक्कुरसी ने कृपण छन्द लिखकर उस व्यक्ति का चित्रण किया है जो उसके सचय मे ही विश्वास करता है और उसका उपयोग जीवन के अन्तिम क्षण तक नहीं करता।

कृपण छन्द का नाम कही कृपण चरित्र भी मिलता है। यह कवि की सवत् १५८० के पोष मास मे निबद्ध रचना है। रचना एकदम सरस, रुचिकर एव प्रसाद गुण से भरपूर है। इसमे ३५ पद्य हैं। जो षट्पद छन्द मे निबद्ध है। इस कृति की एक पाण्डुलिपि जयपुर और एक भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर मे सग्रहीत है। अजमेर वाली पाण्डुलिपि मे तो कृति का ही नाम कृपण षट्पद दिया हुआ है। कृति की सक्षिप्त कथा निम्न प्रकार है—

एक प्रसिद्ध कृपण व्यक्ति उसी नगर में अर्थात् चम्पावती में ही रहता था और वही कविवर ठक्कुरसी भी रहते थे। वह जितना अधिक कृपण था उसकी धर्मपत्नी उतनी ही अधिक उदार एव विदुषी थी।

> क्रिपण एक परसिद्ध नयरि निवसति निलक्षणु।
> कही करम संजोग तासु घरि नारि विचक्खण।

सारे नगर के निवासी इस जोडी को देखकर आश्चर्य में भर जाते थे क्योंकि स्त्री जितनी दानी, धर्मात्मा एव विनयी थी उसका पति उतना ही कजूस था। न स्वय खर्च करता था और न अपनी पत्नी को खर्च करने देता था। इसी को लेकर दोनो मे कलह होता रहता था। वह कृपण न गोठ करता, न मन्दिर जाता, यदि कोई उससे उधार मागने आता तो वह गाली से बात करता, यही नहीं अपनी बहन, भुवा एव भाणजियों को भी अपने घर पर नहीं बुलाता था। यदि कोई घर मे बिना बुलाये ही आ जाता तो मुह छिपा कर बैठ जाता था।

घर मे आंगण पर ही सो जाता। खटिया तो उसके घर पर थी ही नहीं तथा जो थी उसे भी बेच दी। घर पर छान बाध ली। जब आधी चलती तो उसकी बडी दुर्दशा होती। वह सबसे पहिले उठता और दस कोस तक नगे पाव ही घूम आता। न स्वय खाता और न अपने परिवार वालो को खाने देता। दिन भर झूठ बोलता रहता और झूठ लिखता, पढता और झूठी कमाई करता। अपनी इस आदत के कारण वह नगर मे प्रसिद्ध था। नगर का राजा भी उसकी आदतो को जानता था।

वह पान कभी नही खाता और न ही किसी को खिलाता था। न कभी सरस भोजन करता। न कभी नवीन कपडे पहन कर शरीर को सँवारता था। वह कभी सिर मे तेल भी नही डालता और न मल-मल कर नहाता था। खेल तमाशे मे तो कभी जाता ही नही था।

> कदे न खाइ तबोलु, सरसु भोजन नही भक्खे।
> कदे न कपडा नवा पहिरि, काया सुख रक्खे।
> कदे न सिर मे तेल घालि, मल मल कर न्हावै।
> कदे न चन्दन चरचै, अग अबीरु लगावै।
> पेषणो कदे देखे नही, श्रवणु न सुहाई गीत-रसु ॥६॥

उसकी पत्नी जब नगर की दूसरी स्त्रियो को अच्छा खाते-पीते, अच्छे वस्त्र पहिनते तथा पूजा-पाठ करते देखती तो वह अपने पति से भी वैसा ही करने को कहती। इस पर दोनो मे कलह हो जाती। इस पर वह अपने भाग्य को कोसती और पूर्व जन्म मे किये हुए पापों को याद करती जिसके कारण उसे ऐसा कृपण पति मिला। वह याद करती कि क्या उसने कुदेव की पूजा की, अथवा गुरु एव साधुओं की निन्दा की, क्या झूठ बोली या रात्रि मे भोजन किया अथवा दया धर्म का पालन नहीं किया जो ऐसे कृपण पति से पाला पडा। जो न स्वय खरचे और न उसे ही खरचने दे।

ज्यो देखैं देहुरै त्याह की वर नारी ।
तलि पहरचा पटकूला सव्व सोवन सिगारी ।
एकि करावै पूज एकि उभी गुण गावै ।
एक देहि तिय दाणु एक शुभ भावन भावै ।
तिहि देखि भणं हीयो हणें कवणु पापु दीयो दई ।
अहि पाप किए हौ पापीयी कृपणु कत धरि घण हुई ॥१३॥

एक दिन कृपण की पत्नी ने सुना कि गिरनार की यात्रा करने सघ जा रहा है तो उसने रात्रि मे हाथ जोडकर हँसते हुए पति से यात्रा सघ का उल्लेख किया और कहा कि लोग उसी गिरनार की यात्रा करने जा रहे हैं जहाँ नेमिनाथ ने राजुल को छोड दिया था और तपस्या की थी। वहाँ पर्वत चढ़ेंगे, पूजा-पाठ करेंगे तथा पशु एव नरक गति के बध से मुक्त होगे। इसलिए हम दोनो को भी चलना चाहिए। इतना सुनते ही कृपण के ललाट पर सलवटे पड गयी और वह बोला कि क्या तू बावली हो गई है जो धन खरचने की तेरी बुद्धि हुई है। मैने अपना धन न चोरी से कमाया है और न मुझे पडा हुआ मिला है। दिन रात भूखा प्यासा मर कर उसे प्राप्त किया है। इसलिए भविष्य मे उसे खरचने की कभी बात मत करना।

नारि वचन सुणि कृपणि, सीसि सलवटि घण घल्ली ।
कि तू हुई धण बावली, कि धण थारी मति चल्ली ।
मै धणु लद्ध न पडयो, मै र धणु लियो न चोरी ।
मै धणु राजु कमाइ, आपु आणियो ना जोरी ।
दिन राति नीद विरु भूख सहि, मैर उपायो दुख घणो ।
खरचि नां तणो वाहुडि, वचनु धण तू आगै मत भणो ॥१४॥

कृपण की पत्नी भी बडी विदुषी थी इसलिए उसने कहा कि नाथ, लक्ष्मी तो बिजली के समान चंचल है। जिसके पास अटूट धन एव नवनिधि थी वह भी साथ नही गयी। जिन्होने केवल उसका सचय ही किया वे तो हार गये और जिन्होने उसको खर्च किया उनका जीवन सफल हो गया। इसलिए यह यात्रा का अवसर नही चूकना चाहिए और कठोर मन करके यात्रा करनी चाहिए। क्योकि न जाने किन शुभ परिणामो से अनन्त धन मिल जावे। इसके बाद पति पत्नी मे खूब वाद-विवाद छिड जाता है। पत्नी कहती है कि सूम का कोई नाम ही नहीं लेता जब कि राजा कर्ण, भोज एव विक्रमादित्य के सभी नाम लेते हैं। वह फिर कहने लगी कि वह नर धन्य है जिसने अपने धन का सदुपयोग किया है। पाप की होड न करके पुण्य कार्यों की तो अवश्य होड़ करनी चाहिए। पुण्य कार्य मे धन लगाना अच्छी

बात है। जिसने केवल धन का संचय ही किया और उसे स्व पर उपकार में नहीं लगाया वह तो अचेतन के समान है तथा सर्प के डसे हुए के समान है।

पत्नी की बात सुनकर कृपण गुस्से में भर गया और उठ कर बाहर चला गया। बाहर जाने पर उसे उसका एक कृपण ही साथी मिल गया। साथी ने जब उसकी उदासी का कारण पूछा और कहने लगा कि क्या तुम्हारा धन राजा ने छीन लिया या घर मे कोई चोर आ गया अथवा घर मे कोई पाहुना आ गया या पत्नी ने सरस भोजन बनाया है। किस कारण से तुम्हारा मुख म्लान दिखता है।

> तबहि कृपण करि रोस, रुसि घर बाहिरि चलीयो।
> ताम एकु सामहो मतु पूरवलो मिलियो।
> कृपणु कहै रे कृपण आजि तू दूमण दिठो।
> किं तु रावलि गह्यो केम घरि चोर पइट्ठा।
> आईयउ कि को घरि पाहुणो कीयो नर भोजन सरसि।
> किणि काजि मीत रे आजिउ तु, मुख विलाण दीठो।

कृपण ने कहा कि मित्र मुझे घर मे पत्नी सताती है। यात्रा जाने के लिए धन खरचने के लिए कहती है जो मुझे अच्छी नहीं लगती। इसी कारण वह दुर्बल हो गया है और रात दिन भूख भी नहीं लगती। मेरा तो मरण आ गया। तुम्हारे सामने सब कुछ भेद की बात रख दी।

उस दूसरे कृपण मित्र ने कहा कि हे कृपण तू मन मे दुख न कर। पापिनी को पीहर भेज दे जिससे तुझे कुछ सुख मिले।

> कृपणु कहै रे मत मुझ घरि नारी सतावै।
> जाति चालि धन खरीचु कहै जो मोहि न भावै।
> तिह कारणि दुब्बलै रयण दिण भषण ण लगाइ।
> मतु मरण चाइयो गुह्य अख्यो तू आगै।
> ता कृपणु कहै रे कृपण सुणी मीत मरण न आहि दुखु।
> पीहरि पठाइ दे पापिणी ज्यौ को दिण तू होइ सुख ॥२०॥

इसके पश्चात् उस कृपण ने एक आदमी को बुलाया तथा एक झूठा पत्र लिख दिया कि तेरे जेठे भाई के पुत्र हुआ है अत उसे बुलाया है। पत्नी पति के प्रपच को जानते हुए भी पीहर चली गयी।

कुछ महीनो पश्चात् यात्रा सघ वापिस लौट आया। इस खुशी मे जगह-जगह ज्योनारे दी गयी, महोत्सव किये गये। जगह-जगह पूजा पाठ होने लगे। विविध

दान दिये गये । बाजे बजे तथा लोगों ने खूब पैसा कमाया । कृपण ने यह सब सुना तो उसे बहुत दुःख हुआ ।

कुछ समय पश्चात् वह बीमार पड़ गया । उसका अन्त समय समझ कर उसके परिवार वालों ने उसे दान पुण्य करने के लिए बहुत समझाया लेकिन उसके कुछ भी समझ मे नहीं आया । उसने कहा कि चाहे वह मरे या जीये ज्योनार कभी नहीं देगा । उसका धन कौन ले सकता है । उसने बड़े यत्न से उसे कमाया है । अब वह मृत्यु के सन्मुख है इसलिए हे लक्ष्मी तू उसके साथ चल । लक्ष्मी ने इसका उत्तर निम्न प्रकार दिया—

लच्छि कहै रे कृपण झूठ हो कदे न बोलो ।
जु को चलण दुइ देह गलत मारगी तसु चालों ।
प्रथम चलण मुझ एहु देव देहुरे ठविज्जे ।
दूजे जात पतिट्ठ दाणु चउसघहि दिज्जै ।
ये चलण दुवै तै भजिया ताहि बिहूणी क्यो चलो ।
भूख मारि जाय तू हो रही बहुडि न सगि थारे चलो ।।२८।।

लक्ष्मी ने कहा कि उसकी दो बातें हैं । एक तो वह देव मन्दिरो मे रहती है । दूसरे यात्रा, प्रतिष्ठा, दान और चतुर्विध सघ के पोषणादि कार्य हैं उनमे तूने एक भी नहीं किया । अत वह कृपण के साथ नहीं जा सकती ।

कुछ समय पश्चात् कृपण मर गया और मर कर नरक मे गया । वहा उसे अनेक प्रकार के दु ख सहन करने पडे । इसलिए कवि ने निम्न निष्कर्ष के साथ कृपण छन्द की समाप्ति की है—

इसौ जाणि सहु कोइ, मरइण पूरिष धमु सच्यो ।
दान पुण्य उपगार दित धनु कि वै न खचो ।
दान पुजै वह रासो असो पीव पाचै जगि जाणै ।
जिसउ कपणु इकु दानु तिसउ गुणु कसु बखाण्यो ।
कवि कहै ठकुरसी घेल्ह तणु, मै परमत्थु विचार्यो ।
धरगियो त्याह उपज्यौ जनमु ज्या पाच्यो तिह हारियो ।।३५।।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि में ३५ छन्द हैं ।

६. पार्श्वनाथ शकुन सत्तावीसी

कवि की सर्वतोल्लेख यह प्रथम कृति है जिसकी रचना संवत १५७८ माघ शुक्ला २ के शुभ दिन चम्पावती मे हुई थी ।[1] उस समय देहली पर बादशाह इब्राहीम लोदी का शासन था तथा चम्पावती महाराजा रामचन्द्र के अधीन थी। सत्तावीसी एक स्तवनात्मक कृति है जिसमे चाकसू (चम्पावती) के पार्श्वनाथ के मन्दिर मे विराजमान पार्श्वनाथ की ही स्तुति की गयी है। इसमे २७ पद्य हैं। रचना साधारण होते हुए भी सुन्दर एव प्रवाह युक्त है और सोलहवीं शती के अन्तिम चरण मे हिन्दी भाषा के विकास को बतलाने वाली है। सत्तावीसी स्तवन परक कृति होने पर भी इतिहास के पुट को लिये हुए है। प्रस्तुत कृति में इब्राहीम लोदी के रणथम्भोर आक्रमण का उल्लेख है तथा यह कहा गया है कि बादशाह ने अपने प्रबल सैन्य के साथ रणथम्भोर किले पर जब आक्रमण कर दिया तो उसकी सेना आस पास के क्षेत्र मे भी उपद्रव मचाने लगी और वह चम्पावती तक आ पहुँची। लोग गावो को छोडकर भागने लगे ।[2]

चम्पावती के निवासी भी भय से कांपने लगे तथा मना करने भी चारों ओर भागने लगे। लेकिन कुछ लोग नगर मे ही रह गये और भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति करने लगे। ऐसे नागरिको मे प० मल्लिदास, कविवर ठक्कुरसी आदि प्रमुख थे ।[3] सभी नागरिक पार्श्वनाथ की स्तुति, पूजा-पाठ करने लगे तथा विपत्ति से बचाने के लिए प्रार्थना करने लगे। भगवान पार्श्वनाथ की कृपा से शीघ्र ही भयकर विपत्ति टल गयी। लोगो को अभय मिला। नगर मे शान्ति हो गयी। चारो ओर पार्श्वनाथ

---

१ घेल्ह नवणु ठकुरसी नामु, जिण पाय पकय भसलु ।
तेण पास थुय किय सचो जवि, पचरासय अट्ठतरइ ।
माह मासि सिय पखू पुर जवि, पढहि गुणहि जे नारि नर ।

२ जवहि लिद्धउ राणि सग्रामि, रणथभुवि दुग्ग गढु ।
जब इब्राहिमु साहि कोधिउ, चलु चौली मो कलिउ ।
चोलु फौलु सवु तेण लोपिउ, जिव लग उच्छलि हाइसिउ ।
मेछु भूढु भय बज्जि, विगु चपावती देस सहि गया बहुइ दिसि भज्जि ।

३ तेण तुहु सिउं कहहि जगनाथ, तिहुयण सिद्धि सुंदरि रयण ।
इहि निमित कउ किसउ कारणु, भूत भविषित जाण तुहु ।
तुहु समथु जणि तरण तारण, उच्चावता उचवहु ।
आइ भव देखइ गांइ, आइनि देखहि पास प्रभु होइ रहहु थिरुठाइ ।।२३।।

की जय बोली जाने लगी। जो लोग नगर छोडकर चले गये थे वे अधिक दु:खी हुए और जो नगर मे ही रहे वे शान्तिपूर्वक रहे।

एम जपिय करिवि थुय पूज, मल्लिदास पंडिय पमुह।
सह हुया सामी उच्चायउ, तुच्छ मूरतिउ चनि तिलु।
हूवो जाणि सुरगिरि सवायउ, इणि विधि परतिउ बारतिहु।
पूरि विहुरी भराति जयवतउ जगि पास तुहु, जेव करी सुख सगति ।।२४।।
तासु पर ते जिके णर मज्वनी भग्गा दिह रह्या।
हूवा सुखी ते वरा वासँ, जे भगा भति करि।
दुख पाया श्ररु रहुया तासँ, अवरइ परत्या वह इसा।

प्रभु पूरिवा समयु, भजउन जिसु पतिसाइ मनु, सो नरु निगुणु निरथु ।।२५।।

पार्श्वनाथ 'सकुन सत्तावीसी' प० मल्लिदास के श्राग्रह से रची गयी थी।[1] मल्लिदास ने ठक्कुरसी से पार्श्वनाथ के मन्दिर मे ही इस प्रकार के स्तवन लिखने की प्रार्थना की थी। कवि ने अपनी सर्वप्रथम अल्पज्ञता प्रकट की क्योकि कहा भगवान पार्श्वनाथ के अनन्त गुण और कहा कवि का अल्पज्ञान। फिर भी कवि अपने मित्र के आग्रह को नही टाल सके और उन्होने सत्तावीसी की रचना कर डाली। और अन्त मे भी मल्लिदास से सत्तावीसी पढ़ने के लिए आग्रह किया है।

प्रस्तुत सत्तावीसी की पाण्डुलिपि दि० जैन मन्दिर प० लूणकरण जी पाड्या के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सग्रहीत है। लेकिन गुटके मे एक पत्र कम होने से ५ से १४ वे पद्य तक नही है। सत्तावीसी की एक प्रति अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार मे भी सग्रहीत है।

७ जैन चउवीसी

जैन चउवीसी का उल्लेख प० परमानन्द जी शास्त्री ने अपने लेख में किया है। यह स्तुति परक कृति है जिसमे २४ तीर्थंकरो का स्तवन है। राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे जैन चउवीसी की कोई पाण्डुलिपि नही मिलती।

---

१ एक दिवसह पास जिण गेह मल्लिदास पंडिय कहइ।
ठक्कुरसीह सुणि कवि गुणग्गल गाहा गीय कवित्त कह।
तइ किय्मय जिसुणी सयग्गल।
इव श्रीपास जिणद गुण करहि न किंतु हु भव्व।
जहि कीया थे पाविए मन वछिउ सुख सव्व ।।२।।

८ मेघमाला कहा

मेघमाला कहा की एक मात्र पाण्डुलिपि भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर के एक गुटके में संग्रहीत है। इसकी उपलब्धि का श्रेय पं० परमानन्द जी शास्त्री देहली को है।

मेघमाला व्रत करने का उस समय चम्पावती मे बहुत प्रचार था। ठक्कुरसी ने अपने मित्र मल्लिदास हाथुव साहू नामक श्रेष्ठि के आग्रह एव भ० प्रभाचन्द्र के उपदेश से इस कहा की अपभ्रंश में रचना की थी। उस समय चम्पावती नगरी खण्डेलवाल दि० जैन समाज का केन्द्र थी तथा अजमेरा, पहाडिया, बाकलीवाल आदि गोत्रो के श्रावको का प्रमुख रूप से निवास था। सभी श्रावकों में जैनाचार के प्रति आस्था थी। कवि ने उस समय के कितने ही श्रावको के नाम गिनाये हैं जिनमे जीणा, तोल्हा, पारस, नेमिदास, नाथूसि, मुल्लण आदि के नाम उल्लेखनीय है। कवि तोषा पडित का और नाम गिनाया है।

मेघमाला व्रत भाद्रपद मास की प्रथम प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है। इस दिन उपवास एव दिन भर पूजन करनी चाहिए। यह व्रत पाच वर्ष तक किया जाता है। इसके पश्चात् व्रत का उद्यापन करना चाहिए। यदि उद्यापन न कर सके तो इतने ही वर्ष व्रत का और पालन करना चाहिए।

मेघमाला कहा की समाप्ति सावन शुक्ला ६ मगलवार सवत १५८० के शुभ दिन हुई थी। पूरी कहा मे ११५ कडवक तथा २११ पद्य है। रचना अपभ्रंश भाषा मे निबद्ध है।

मेघमाला कहा का आदि एव अन्त भाग निम्न प्रकार है—

आदि भाग—

णय चरिम जिणिंदु वि दय कदु वि सुव सिद्धत्थ वि सिद्धयरो।
कहु कहमि रसाला वयघणमाला णर णिसुणहु करिकण्णथिरो॥
दिण्णोक हु ढाहड देस मज्झि, णयरी चपावइ अरिय सत्थि।
तहिं अत्थि पास जिणवरणिकेउ, जो भव कण्णिहि तारणहसेउ।
तसु मज्झि पहासमि वर मुणीसु, सह सठिउ ण गोयमु मुणीसु।
तहु पुरउ णिविट्ठिय लोय भव्व, णिसुणत धम्मु मणि गलिय-गव्व।
तह मल्लिदास वणि तणु स्नेहेण सेवइ सुवुत्त णिणय सहेण।
भो बेल्हणव ! सुणि ठकुरसीह, कइ कुलह मज्झि तुहु लहणु लीह।

तहु मेहमालवय कहु पयासि, इण कियइ केण फलु लद्ध भासि ।
इह कहु किय चिरु किण सहसकित्त, तुहु करि पद्धडिया बंध मित्त ।
ता विहसि वि जपइ घेल्हसाहु, जो धम्म कहा कहणि अमंदु ।
भो मित्त ! पढमि बुज्झिउ हियत्थु, कह कहमि केम बुज्झउ ण सत्थु ।
वायरणु न मइ गुणियउं गुणालु, कोवइम दीठउ रसु रसालु ।
जो हरइ जड तण तणउ दोसु, सो सवणि सुणियउ तिय सकोसु ।
कह कहणि बुहयण हसहि मज्झु, किहकरि रजावमि चित्त तुज्झ ।।

अन्तिम भाग—

सुप्रभयकी चिरु लेवि सुत्तयं, करी कहा एह महा पवित्तय ।
उणग्गल जंपय मत्त जपिया, खमेउ त देवी भारही मया ।।
ता माल्हा कुल-कमलु दिवायरु, अजमेराह धसि मय सायरु ।
विणय सउजण अणमण रजणु, दाणि दुहियणह उल-म जणु ।।
रूवे मयरद्ध य सम सरिसु वि, परयण पुरह मज्झि मह पुरि सु वि ।
जिण गुण णिग्गयहु पयमत्त वि तोसण पडिय कवियण चित्त वि ।
बुज्झिय वयण सयल परिपालणु, बधव तिय सहयर सुयलालणु ।
एलीतिय भण रुहडल सोहणु, मल्लिदास यालहु मणु मोहणु ।
तिणि सेवइ सुन्दरि यह कह सुणि, सरिसु बउलीमउ सु दिठु मणि ।
पुणु तोल्हा तणेण परमत्थें, कह सुणि वउली योसिर हत्थें ?
पुणुवि पहाडियाह वरवसवि, लद्धीसयल णयरि सुपसंसवि ।
जीणा नवणेण जिणभत्तें, ताल्हू वउली यो विहसतें ।
पुणु पारस तणेण गुहधीरें, गहिउ सुबउ जइ तइजस धीरें ।
पुणु बाकुलीयवाल सुविसालुवि, वालू वउली यो घणमालुवि ।
पुणु कह सुणिवि ठकुरसी णवणि, णेमिदास भावण भाईय मणि ।
पुणु णाथूसी नगरि भुल्लणि, लीयउ वउ जीउ रिय मय डुल्लणि ।
पुणु कह सुणिवि मणोहर णारिहि, पवरहि भव्वगण वर णर-णारहि ।
मेघमालावउ चगउ महियउ, इ छिउ फलु लहि सहि कवि करियउ ।
चपावतीव णयरि णिवसते, रामचन्दपहु रज्जु करते ।
हाथुवसाहु महत्ति महत्ते, पहाचन्द गुरु उवएसते ।
पणवह सइजि असीवे धम्मल सावण मासि जट सिय मगल ।
पयउ पहाडिए वससिरोमणि, घेल्हा गरु तसु तिय वर घर मिणि ।
तह तणइ कवि ठाकुरि सुंदरि, यहु कहि किय सभव जिन मंदिरि ।

घत्ता—जो पढइ पढावइ णियमणि भावइ लेहाइ विसई करि लिहिये।
तसु वय की यह फलु होइ विणिम्मलु राम सुमरिण मोयमु कहिये।
वस्तुबंध—जेण सुंदरि विणवइ वयणेण करावियं एह कह।
मेहमालवय विहि रवण्णिम पुणु पुवि वह लिहावि करि।
पयउ कज्जि पडियह दिण्णिय मल्लाणहु सु महियलह सेवउ सेवउ गुणह गहीरु।
नंदउ तव लगु जउलह, वहइ गंगनदि नीरु ॥११५॥

९ शील गीत

यह एक छोटा-सा गीत है जिसमें ब्रह्मचर्य की महिमा बतलायी गयी है। प्रारम्भ मे कुछ उदाहरण दिये गये हैं जिनमे विश्वामित्र एवं पाराशर ऋषियो के नाम विशेष रूप से गिनाये गये हैं जो ब्रह्मचर्य के परिपालन में खरे नहीं उतर सके। अन्त में इन्द्रियो पर विजय पाने पर जोर दिया गया है। गीत का दूसरा एवं अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

सिंघु वसइ बन मज्झि मस आहारि बली अति।
बार एक वरस मैं करइ सिंघणी सरि सुरति।
पेषि परे वो पापु आसु मन मुहइ न मासुर।
खाइ खड पाषाण कामु सेवइ निसि वासर।
भोयणि बसेवु नहु ठकुरसी इहु विकार सब मन तणौ।
सील रहहि ते स्यघ नर नहि यति पारापति गिणौ ॥२॥

१० पार्श्वनाथ स्तवन

प्रस्तुत स्तवन प० मल्लिदास के आग्रह पर निबद्ध किया गया था। इसमें चपावती (चाकसू) के पार्श्वनाथ प्रभु की स्तुति की गयी है। पूरा स्तवन १५ पद्यो मे पूर्ण होता है। स्तवन प्रभावक ऐव सुरुचिपूर्ण है। इसका अन्तिम छन्द निम्न प्रकार है—

पास तणी सुपसाइ, पाइ पणमंति आइ अरि।
पास तणै सुपसाइ थाइ, चक्कवइ रिद्धि घरि।
पास तणी सुपसाइ सग्ग सिव सुख लहिजे।
पास तासु पणमति अगि आलस कुण किजै।
ठकुरसी कहै मलिदास सुणि हमि इहु पायो भेवु इव।
जगि ज ज संदरु संपजै, स तं पास पसाउ सब ॥१२॥

११ सप्त व्यसन षट्पद

कविवर ठक्कुरसी की जिन ६ कृतियों की प्रथम बार उपलब्धि हुई है उनमें "सप्त व्यसन षट्पद" प्रमुख कृति है। जिस प्रकार कवि ने पञ्चेन्द्रिय वेलि मे पाच इन्द्रियो की प्रबलता, तथा उनके दमन पर जोर दिया गया है उसी प्रकार सप्त व्यसनो मे पड़कर यह मानव किस प्रकार अपना अहित स्वयं ही कर बैठता है। व्यसन सात प्रकार के हैं—जुवा खेलना, मांस खाना, मदिरा पीना, वेश्यागमन करना, शिकार खेलना, चोरी करना और परस्त्री सेवन करना। ये सातो ही व्यसन हेय है, त्याज्य हैं तथा मानव जीवन का विनाश करने वाले हैं।

पार्श्व वन्दना के साथ षट्पद को प्रारम्भ किया है। कवि ने कहा है कि पार्श्व प्रभु के गुणो का तो स्वयं इन्द्र भी वर्णन करने मे जब समर्थ नहीं हैं तो वह अल्प बुद्धि उनके गुणो का कैसे वर्णन कर सकता है। कवि ने बड़ी ओजपूर्ण भाषा मे अपनी लघुता प्रकट की है—

पुहमि पट्टि मसि मेरु होहि भायरण खर सागर।
अबस अनोपम लेखि साख सुरतर गुण आगर।
आपु इदु करि लिहै, कहै फणिराउ सहसमुख।
लिहइ देवि सरसत्ति लिहत पुणु रहइ नही चुप।
लेखरिण मसि मही न उव्वरइ, थक्कइ सरसइ इद पुणि।
आयो नवोडु कहि ठकुरसी तवइ जिणेसर पास गुणि ॥१॥

जुआ खेलना प्रथम व्यसन है। जुआ खेलने मे किञ्चित् भी लाभ नहीं है। ससार जानता है कि पाचों पाण्डवो एव नल राजा को जुआ खेलने के क्या फल भुगतने पडे थे। उन्हे राज्य सम्पदा छोडने के साथ-साथ युद्ध का भी सामना करना पडा था। द्यूत क्रीडा करने से अनेक दुःख सहन करने पडते हैं। इसलिए जो मनुष्य द्यूत क्रीडा के अवगुण जानते हुए भी इसे खेलता है वह तो बिना सींग के पशु है।

जूव जुवाख्यो धणी लाभु गुण किवइ न दीसइ।
मतिहीणा मानइ खेलि मति चित्ति जगीसइ।
जगु जाणइ दुखु सह्यो पच पडव नरवइ नलि।
राज रिधि परहरी रणु सेविउ जूवा फलि।
इह विसन लगि कहि ठकुरसी, कवणु न कवणु विगुत्त वसु।
इव जाणि जके जूवा रमै ते नर गिणिवि ण सीगु पसु ॥१॥

दूसरा व्यसन है मांस खाना। जीभ के स्वाद के लिए जीवों की हत्या करना एव करवाना दोनो ही महा पाप के कारण हैं। मास मे अनन्तानन्त जीवो की प्रतिक्षण उत्पत्ति होती रहती है इसलिए मास खाना सर्वथा वर्जनीय है।

मद्य पान तीसरा व्यसन है। मद्य पान से मनुष्य के गुण स्वत ही समाप्त हो जाते हैं। शराब के नशे में वह अपनी मां को भी स्त्री समझ लेता है। मद्य पान से वह दुःखो को भी सुख मान बैठता है। यादवों की द्वारिका मद्य पान से ही जल गयी थी। यह व्यसन कलह का मूल है तथा धर्म और धन दोनो को ही हानि पहुँचाने वाला है एव बुद्धि का विनाशक है। वर्तमान में मद्य पान के विरुद्ध जिस वातावरण की कल्पना की जा रही है, जैन धर्म प्रारम्भ से ही मद्य पान का विरोधी रहा है।

मज्ज पिये गुण गलहि जीव जोगै ज्वाख्यो भणि।
मज्जु पिये सम सरिस माइ महिला मण्णहि मणि।
मज्जु पिये बहु दुखु सुखु सुणहा मैथुन इव।
मज्ज पिये जा जादव नरिंद सकुटब बिगय खिव।
धण धम्म हारिण नर यह गमणु कलह मूल प्रवजस उतपति।
हारति जनमु हेलइ मुगध मज्ज पियें जे विकलमति।।३।।

वेश्या गमन चतुर्थ व्यसन है जो प्रत्येक मानव के लिए वर्जनीय है। यह व्यसन धन, सपत्ति, प्रतिष्ठा एव स्वास्थ्य सबको नष्ट करने वाला है। सेठ चारुदत्त की बर्बादी वेश्यागमन के कारण ही हुई थी। कालिदास जैसे महाकवि को वेश्या-गमन के कारण मृत्यु का शिकार होना पड़ा था। इसलिए वेश्यागमन पूर्णत वर्जनीय है।

इसी तरह शिकार खेलना, चोरी करना एव पर-स्त्री गमन करना वर्जनीय है तथा इन तीनो को व्यसनो मे गिनाया है। ये तीनो ही व्यसन मनुष्य के विनाश के कारण हैं। शिकार खेलना महा पाप है। जिस कार्य में दूसरे की जान जाती हो वह कितना बड़ा पाप है इसे सभी जानते हैं। किसी के मनोविनोद के लिए अथवा जीभ की लालसा को शान्त करने के लिए दूसरे जीव का घात करना कितना निन्दनीय है? इन तीनो ही व्यसनो से कुल की कीर्ति नष्ट हो जाती है और केवल अपयश ही हाथ लगता है। रावण जैसे महाबली को सीता को चुराकर ले जाने के कारण कितना अपयश हाथ लगा जिसकी कोई समानता नही है। इसलिए ये तीनो व्यसन ही निन्दनीय है वर्जनीय हैं एव अनेको कष्टो का कारण है।

कवि ने अन्तिम पद्य मे सभी सातो व्यसनो को त्याग करने का उपदेश देते हुए उनके अवगुणों को उदाहरण देकर बतलाया है ।

जूव विसनि वन वासि भमिय पंडव नरवइ नलु ।
मसि गयो बगराउ सुरा खोयो आदम कुलु ।
वेसा वणियर चारिदत्तु पारधि सव उनिउ ।
चोरी मउ सिउभूति विपु परती लंकाहिउ ।
इक्के विसनि कहि ठकुरसी, नरइ नीचु नव दुह सहइ ।
जइ भणि अधिक अच्छहि विसन, ताह तणी गति को कहइ ।।८।।

रचना की एकमात्र पाण्डुलिपि शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दि पाडे लूणकरण जी, जयपुर के गुटके मे संग्रहीत है ।

१२. व्यसन प्रबन्ध

कवि की यह दूसरी कृति है जिसमे सात व्यसनों की चर्चा की गयी है । उनके अवगुन बताये गये हैं और उन्हे छोड़ने का आग्रह किया गया है । प्रस्तुत प्रबन्ध मुनि धर्मचन्द्र के उपदेश से लिखी गयी थी । मुनि धर्मचन्द्र भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य थे और बाद में मण्डलाचार्य बन गये थे । इन्होने राजस्थान मे प्रतिष्ठा महोत्सवों के आयोजन मे विशेष रुचि ली थी ।

मुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यो, कवि ठकुरि विस्न प्रबध कह्यो ।
पर हरई जको ए जाणि गुण, सो लहइ सरव सुख वछित घण ।।८।।
सुणि सीख सयाणी मूढ मन तजि विस्न बुरा देहि दुख घण ।।

प्रबन्ध मे केवल आठ पद्य हैं तथा उनमे सक्षिप्त रूप से एक-एक व्यसन के अवगुणो का वर्णन किया गया है ।

सप्त व्यसनो के सम्बन्ध मे दो-दो कृतिया निबद्ध करने का अर्थ यह भी निकाला जा सकता है कि कवि के युग में समाज मे अथवा नगर मे सात व्यसनो मे से कुछ व्यसनो का अधिक प्रचार हो । और उनको दूर करने के लिए कवि को पुन प्रबन्ध लिखने की आवश्यकता पड़ी हो ।

मद्य पान के सम्बन्ध मे कवि ने लिखा है कि मद्य पीने से आठ प्रकार के अनर्थ होते है । शराब पीने के पश्चात् वह माता एव पत्नी का भेद भूल जाता है । मद्य पान से पता नहीं कौन-सा सुख मिलता है । मद्य पान से ही सारा यादव वंश समाप्त हुआ था ।

जहि पीये पाठ अनर्थ करै, अननी महिला न विचारु फुरै।
तहि मज्ज पिये मणु कवणु सुखो, जहि आवम वसइ विण्णु दुखो ॥३॥

१३ पार्श्वनाथ जयमाला

यह जयमाला भी स्तवन के रूप में है। चम्पावती में पार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर था और उसमें जो पार्श्वनाथ की प्रतिमा है उसी के स्तवन में प्रस्तुत जयमाला लिखी गयी है। जयमाला में ग्यारह पद्य हैं। अन्तिम पद्य में कवि ने अपना और अपने पिता का नामोल्लेख किया है। जयमाला का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

इह वर जइमाला, पास जिण गुण विसाला।
पढहि जिणर णारी, तिण्णि सभा विचारी।
कहइ करि अनदो, ठकुरसी वेल्ह नन्दो।
लहहिति सुख सार, वछिय बहु पयार ॥

१४ ऋषभदेव स्तवन

यह भी लघु स्तवन है जिसमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की स्तुति की गयी है। स्तवन मे केवल दो अन्तरे हैं। दूसरा अन्तरा निम्न प्रकार है—

इक्ष्वाक वस श्री रिसह जिणु, नाभि तणु भम भव हरणु।
सव अहल अवरु कहि ठकुरसी, तुहु समथ तारण तरणु ॥

१५ कवित्त

कविवर ठक्कुरसी ने सभी प्रकार के काव्य लिखे हैं और वे सभी विषयो से ओतप्रोत हैं। प्रस्तुत कवित्त भी विविध विषय परक है और सम्भवत कवि के अन्तिम जीवन की रचना है। कवित्त का अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—

जइरु वहिरइ सुण्यो नहु गीतु, जइ न दीठु ससि धवलइ।
जइ न तरुणि रसु सठि जाण्यो, जइ न भवरु चपइ रम्यो।
जइ न धणकु कर हीणि ताण्यों, जइ किणि नि गुणिनि लखणो।
कवित्त न कीयो मणगु, कहि ठाकुर तउ गुणी गुण नाउ जासी सुणु ॥६॥

इस प्रकार अभी तक ठक्कुरसी की १५ कृतियो की खोज की जा सकी है लेकिन नागौर, अजमेर, एव अन्य स्थानो के गुटको की विस्तृत छानबीन एव खोज होने पर कवि की और भी रचनाओं की उपलब्धि की सम्भावना है। ठक्कुरसी प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा सम्पन्न कवि थे इसलिए सम्भव है कोई महाकाव्य भी हाथ लग जावे।

कविवर ठक्कुरसी १६ वीं शताब्दि के ढूंढाड प्रदेश के प्रमुख कवि थे। उनकी रचनाओं के अध्ययन से ज्ञात होता कि कवि ने या तो भक्ति परक रचनाये लिखी हैं या फिर समाज मे से बुराइयो को मिटाने के लिए काव्य लिखे हैं। कवि का कृपण छन्द उन लोगों पर करारी चोट है जो केवल सम्पत्ति का सचय करना ही जानते हैं। उसका उपयोग करना अथवा त्याग करना नही जानते। कृपण छन्द जैसी रचना सारे हिन्दी साहित्य मे बहुत कम मिलती हैं। इसी तरह पञ्चेन्द्रिय वेलि एव 'सप्त व्यसन षट्पद' भी शिक्षाप्रद रचनायें है जिनको पढ़ने के पश्चात् कोई भी पाठक आत्म चिन्तन करने की ओर बढ़ता है। ठक्कुरसी का समय मुसलिम शासको की धर्मान्धता का समय था लेकिन कवि ने समाज का अपनी रचनाओं के माध्यम से जिस प्रकार पथ प्रदर्शन किया वह सर्वथा प्रशसनीय है।

ठक्कुरसी की रचनाये भाव, भाषा एव शैली तीनो ही दृष्टियो से उत्तम रचनाये हैं उन्हे हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उचित स्थान मिलना चाहिये।

□ □ □

सीमंधर स्तवन

श्री सीमधर जिन पय बदौ, भवि नेत्र चकोरभिनदौ।
पु डरीकणी पूर्व विदेहो, अतिशयवत तहा प्रभु रे हो।
रे है ज परमातमय जुत प्रभु, समवसुर्ति महिमडणो।
तिहुलोक विजयी मोह रिपु, बलु काम दल सहु भजणो।
परमेठि परमारथ प्रकाशक, पाप नाश दिमवरो।
भव जलधि पोतक पास मोचक, नमहु जिन सीमधरो ।।१।।

तह युग्मधर जिनराजै, साकेता मडण छाजै।
तिहुलोक जनाधिप बदौ, मोहारि विजय अभिनदो।
अभिनदियौ जगदेक स्वामी, मोक्ष गामी नीर जो।
पचसै धनुष प्रमाण देहो, मान माय विहडणो।
तत्वादि वेदी क्रोध भेदी, भव्य पूज्य परपरो।
दिन नाथ कोटि प्रमाधि शोभी, जयउ जिन युग्मधरो ।।२।।

पछिम दिशि बाहु मुनीशो, विजयार्ध पुरी शिरि सीसो।
निमितामर नर फणि लोको, विनि वारि तज न भय शोको।
जन शोक वारण सौख्य कारण, जनम मरण जरा हरो।
परमारथ रत्नत्रय विराजित, सुध चेयण गुणधरो।
चर अचर लोक अतीत नागत, वर्त्तमान सु गोचरो।
उत्पादन ध्रौव्य यैक ग्याता, जयहु बाहु जिनेस्वरो ।।३।।

।। लीखत ठाकुरसी ।।

नेमिराजमति वेलि

सरसय सामिणि पय जुयल, नमी जोडि कर दोइ।
नेमिकुमार राजमती जती कहूउ, सुणहु सब कोइ ॥१॥

आइ मास बसत रुति, जन मन भयौ अनदु।
सव्वइ वन कीला चल्या, मिलि द्वारिका नरिंद।
मिलि द्वारिका नरिंदो, वसुदेवो बलिभद्दु गोविंदो।
समदविजै दस दसारा, सिवदेस्यो नेमिकुवारा।
सतिभामा रुपिणि राही, जववती सरिसउ माही।
ले सोलह सहस मगिवाणी, चाल्यौ वाली पटराणी।

चाल्या दल वल रूप निधानो, पद्दवण जुभानु सुभानो।
परधान परोहित मन्त्री, मिलि चल्या सयल भड खित्री।
हय गय रथ जाण जंपाणा, मिलि चाल्या आदम राणा।
मुखि कहै किता इक जोडे, मिलि चलिया छप्पण कोडे।
हल रज पसरी चौपासा, नहु सूझै सूर प्रगासा।
गवि सुण छोडि सहु देसो, जन मिसि मति मारै केसो।
सिरि छत्र चमर दुइ पासा, सोहइ सिरि पडी पभाषा।
बाजा बाजै बहु भते, बदियण विरुद पभणते।
मनि आनदु अधिकु वहता, हरि विदु बनिहि सपत्ता ॥२॥

दोहडा

गीत नाद रस पेषणा, परिमल सुख सजोग।
तरु छाया वल्लीभवण, फिरि फिरि भुंज्या भोग ॥३॥

जहि जहि केलि करतु, बनिह्रीडो नेमिकुवारु।
तहि तिय वाही क्वाममहि, लागी फिरैति लार ॥४॥

लागी फिरहिति लारा, भरि जोवन रूप अपारा।
कातीय जिणु दीठो चाहैं, तलि वपु खिस्योरि न साहैं।
कवि रूप रवणरसि घाली, चखि एक आजि उठ चाली।
कवि कहै कुवर मा जाहे, तुझ रूपु मिलो पिउ थाहे।

किकि दिढि देखण को भाऊ, लियु तबि बे चलिबु विलाऊ।
कवि कहइ सुलिय वणु वणु, वसु वरणइ एहु भवणु।
इणि परितिय पणेकक पयारा, बहु करिहिति काम विकारा।
जिणु तब इन दिठि वे बोलैं, नाउं मेक पवन मैं डोलैं।
सब रेयणु नर नारे, रंगि रमाहिति बनह मझारे।
बनि रमत हुवो श्रमु काया, बलि न्हाणि सरोवर आया।
जल माहि केलि कीइं जैसी, कवि सकइ कवणु कहि तैसी।

दोहडा

जल विनोद करि नीसरया, मन हरषी नरनारि।
पहिरि वस्त्र आभरण अगि, आवहि नयर मझारि ॥५॥

सिवदे रुपिणिस्यो कहीं कहा रही मुह मोडि।
नेमि कुवर रूपहरणी, देने बहु निचोडि ॥६॥

देनै बहु निचोडे, तिन उत्तर दियौ बहोडे।
जो सारगु धणकु चढावै, लै सधु पंचाइणु वावै।
चढि नाग सेज जो सोवै, रुपिणि तसु वस्त्र निचोवै।
सुणि सतिभामा कर जोडे, ले दोनो वस्तु निचोडे।
तब सिवदे तणइ कुमारे, मनि निमष चढ्यो अहकारे।
वरजता सहि रखवाला, प्रभु पैठौं आइधु साला।
मनि गिणइ न क्यो रगि रुतो, चढि नाग सेज शिरि सूतो।
चरणांगुलि धणकु चढायौ, नासिका सखु धरि वायौ।
सुणि सबदु सखु जण कंप्यो, इहु कहा हुवउ इम जंप्यो।
सुणि सख सबद हरि डोल्यो, बलिभद्र इम बोल्यो।
अहो भाई बिण ठौकाजो, अदि तदि यह लेसी राजो।
को मोटो मन्त्र उपाये, तपु ले धरि तजि वन जाये।
तब कुडइ मनि सलियमी, आयी उग्रसेणि घिय मगी ॥

दोहडा

सुरनर जादव मिलि चल्या व्हाण नेमिकुमारि।
पसु दीया गुवाडा भर्या, बध्या ससुर दुवारि ॥७॥

हरण रोझ सूवर सुसा पुककारहि सुह चाहि।
नेम कुमर रथु राषि करि, बूझ्यो सारथ वाहि ॥८॥

रे सारथि ए आजे, पसु बधि बर्या किरिण काजे ।
तिरिण जंप्यौ कृष्ण अनाथी पसु जाति जके मनिआया ।
पोषीबा भगति बराती, पसु बधि बासइ परभाती ।
तब नेमिकुमरु रथु छोडौ, पसु मुकलाया वध तोडो ।
भयभीत जीव ले भागा, त्रिभुवनु गुरु चीतरण लागा ।
इहु जीव विषइ कउ चाल्यौ, हउ जिहि जहि जोणी घाल्यौ ।
तिहि तिहि तिय पासि बधायौ ·· ....
इब सो तपु तपउ विचारे, ज्यो फिर न पडौ संसारे ।
इम चीति रू चल्यौ कुमारो, आको राखण परिवारो ।
अहो कवर कवरिण तू वाडौ, तपु लेवा ओग उमाह्यौ ।
तपु तपिउ न वालै आई, करि व्याहु करहि समझाइ ।
जब प्रोढउ होहि कुमारि, तव लीजइ तपु भवतारि ।
हसि नेमि कुवरु तब बोलैं, मुझ जनम मरणु मन डोलै ।
जइ अइ पहुचइ कालो, तव गिणइ ण वूढौ बालो ।
जहि जहि जोणी हो जायौ, तिहि तउ कुटवु उपायौ ।
इहु मोहु कवण परिकीजै, तिणि काजि माइ तपु लीजै ।
माइ बापु दुवै समझावैं, परियरण जण सयल समावै ।
बिलवतु साधु सबु छोडे, वो नेहु निमष मै तोडे ।
आभरण ते वस्त्र उतारे, चढि लीयो तपु गिरनारे ।।

दोहडा

सुरिणय बात राजमति कवरि परिहरियो सिंगारु ।
पिउ पिउ करती तिह चली, जहि वनि नेम कुवारु ।।९।।

माइ बाप बंधव सखी, समझावहि कहि भाउ ।
अवरु वरहि वरु भावतो, गयो नेमि तौ जाउ ।।१०।।

गयउनु दै पिउ जाणी, उन कहहि सुवरु किरि आणी ।
जपइ रजमतीय अणोरा, जिण विणु वर बधव मेरा ।।११।।

कइ वरउ नेमिवरु भारी, सखि कै तपु लेउ कुमारी ।
चढि गैवरि को खरि बैसै, तजि सरगि नरगि को पैसे ।।१२।।

तजि तीणि भवन को राई, किम अवरुनु वरी वरु माई ।
समझाइ राखि सबु साथो, तिहां चलीय जिहा पिउ नाथो ।।१३।।

तिय भाव अनेक दिखाये, तिथि तवइ न चित्तु डुलाया ।
भूली राजमती मनि चिंतै, नाउ घुण लागै वज्र थंभै ।।१४।।

बिलखी पडि हियै बिचारै, तपु तपिउ तिहां पिउ पासै ।
तपु तपिउ करी क्रिषि काया, रजमतीय अमर फल पाया ।।१५।।

राखियो बाधि मन थोरो, तप तपिउ नेमि अति घोरो ।
तजि मोहु मानु मदु रासा, अति सहिया विषम परीसा ।।१६।।

तिहसठ कर्म्म वलु घायो, प्रह केवल णाणु उपायो ।
मलधोत गई सब दूरे, हुउ समोसरणु रिधि पूरे ।।१७।।

फिरि देसु सयलु समझाया, नर तिरिय धरम पथ लाया ।
बूझता हरिबल तोसो, भाख्यो द्वारिका हि विणासो ।।१८।।

जहि जहि मनिक मति घनेरी, बूझता हरि तिहि केरी ।
अवसाणि आइ गिरणारे, गये मुकतिहु दो भवपारे ।।१९।।

जर जनमु मरणु करि दूरे, हुउ सिद्ध गुणह परि पूरे ।
कवि घेल्ह सुतन ठाकुरसी, किये नेमि सुजति मति सरसी ।
नर नारि जको नित गावै, जो चितै सो फलु पावै ।।२०।।

।। इति श्री नेमि राजमति वेलि जति ठाकुरसी कृत समाप्त ।।

पञ्चेन्द्रिय वेलि

स्पर्शन इन्द्रिय

दोहा—

वन तरुवर फल खातु फिरि, पय पीवतौ सुछंद ।
परसण इन्द्री प्रेरियौ, बहु दुख सहै गयद ।।

छंद—

बहु दुख सहौ गयदो, तसु होइ गई मति मदो ।
कागज के कुंजर काजे, पडि खाडन सक्यो न भाजे ।
तहि सहिय घणी तिस भूखो, कवि कौन कहत स दुखो ।
रखवाला बलगउ जाण्यौ, वेसासिराय धरि आण्यौ ।
बध्यौ पगि सकलि घाले, तिउ कियउन सक्कइ चाले ।
परसण प्रेरं दुख पायौ, निति अकुस घावां जायौ ।
परसण रस कीचकु पूर्यौ, गहि भीम सिला तल चूर्यौ ।
परसण रस रावण नामै, मारिअउ लंकेसुर रामै ।
परसण रस सकर राच्यौ, तिय आगै नट ज्यौ नाच्यौ ।
इहि परसण रस जे धूता, ते सुर नर घणा विगूता ।।१।।

रसना इन्द्रिय

दोहा—

केलि करतौ जनम जलि, गाल्यौ लोभ दिखालि ।
मीन मुनिष संसारि सरि, काढ्यो धीवर[1] कालि ।।

छंद—

सो काढ्यो धीवरि काले, तिणि गाल्यौ लोभ दिखाले ।
मछु नीर गहीर पइठौ, विठि जाइ नही जहि दीठो ।
इह रसणा रस कउ घाल्यौ, थलि आइ मुवै दुख साल्यौ ।
इह रसना रस कै ताई, नर मुसै बाप गुरु भाई ।

---

1 धीवरि

घर फोडै पाडै वाटा, निति करै कपट घण घाटा ।
मुखि झूठ सांच नहि बोलै, घर छोडि दिसावर डोलै ।
कुल ऊंच नीच नहि लेखै, मूरख जहि तहि मिलि भेखै ।
इह रसना रस के लीए, नर कुण कुण कर्म न कीए ।
रसना रस विषै अकारो, वसि होइ न औगण गारी ।
जिहि इहुर विषै वसि कीयौ, तिहि मुनिष जनम फल लीयौ ।।२।।

घ्राण इन्द्रिय

दोहा —

कमल पइठौ भ्रमर दिनि, घ्राण गंधि रस रूढ ।
रैणि पडी सो सकुच्यौ, नीसरि सक्या न मूढ ।।

छंद—

अलि घ्राण गंधि रस रूढो, सो नीसरि सक्यो न मूढो ।
मनि चिंतै रयणि सवायी, रस लेस्यौं अजि अघायी ।
जब उगैलो रवि विमलो, सरवर विकसै लो कमलो ।
नीसरिस्यौं तब इह छोडे, रस लेस्यौं आइ बहुडे ।
चितवतें ही गज आयौ, दिनकर उगवा न पायौ ।
जलि पैसि सरवर पीयौ, नीसरत कमल खुडि लीयौ ।
गहि सुंडि पाव तलि चप्यौ, अलि मार्यौ थर हर कप्यौ ।
इहु गंध विषै छै भारी, मनि देखहु क्यो न विचारी ।
इह गंध विषै वसि हुवो, अलि अहलु अखूटो मूवो ।
अलि मरण करण दिठि दीजे, तउ गंध लोभ नहि कीजे ।।३।।

चक्षु इन्द्रिय

दोहा—

नेहु अघग्गलु तेल तसु वाही वचन सुरग ।
रूप जोति परतिय दिवै, पडहिति पुरुष पतंग ।।

छंद—

पडहिति पुरुष पतगो, दुख दीवै दइ इति अगो ।
पडि होइ तहां जीव पाखै, दिठि थकिन मूरख राखै ।
दिठि देखि करै नर चोरी, दिठि देखित कै पर गोरी ।
दिठि देखि करै नर पापो, दिठि दीहा वधइ सतापो ।

दिठि देखि अहल्या इदो, तनु विकल गई मति मदो ।
दिठि देखि तिलोत्तम भूल्यो, तप तपिउ विधाता डोल्यो ।
ए लोयण लबट झूठा, वरज्या नहि होइ अपूठा ।
ज्यो वरजै ज्यो रस वाया, रंगु देखं आपरण् आया ।
लोयरणह दोस को नाहि, मन प्रेरै देखण जाही ।
जे नयरण दुवै वसि राखै, सो हरति परति सुख चाखै ।।४।।

कर्णेन्द्रिय

दोहा—

वेग पवन मन सारिखो, सदा रहे भय भीतु ।
बधीक बारण मार्यो हिरण, कानि सुरणतो गीतु ।।

छंद—

सो गीत सुरणतो कानै, मृग खडो रह्यो हैरानै ।
धरण् खेंचि बधीक सरि हणियो, रसि वीधो आउ न गिरिणयो ।
इह नाद सुरणतो सापो, विल छोडि नीसर्यो आपो ।
पापी वडियालि खिलायो, फिर फिर दिनि दुख्य दिखायो ।
कीदुरि नाद नर लागै, जोगी हुइ भिष्या मागै ।
वाहुडहि न ते समझाया, फिर आहि घरण घरि आया ।
इहु नादु तरणो रस अैसो, जगि महा विषम विसु जैसो ।
इह नादि जिके नरि मिलिया, ते नर त्रियवेगि[1] न मिलिया ।
इह नाद तरणै रगि रातो, मृग गिण्यौ नही जीउ जातो ।
मृग भाव उपाव विचारो, तो सुरणरणउ नादु निवारे ।।५।।

दोहा—

अलि गजु मीनु पतग, मृग एके कहि दुख दीष ।
जाइति भौ भौ दुख सहै, जिहि वसि पच न किद्ध ।।

छंद—

जिह वसि पच न किरिया, खल इन्द्री अवगुण भरिया ।
तिहि जप तप संजम खोयो, सतु सुकृत सलिल समोयो ।

---

१ तिय वगिन

सब हरतु परतु सत हारे, जिहि इंद्री पंच पसारे ।
जिहि इंद्री पंच पसारया, तिहि मुनिव जनम बसि हार्‌या ।
नित पंच बसै इकक भये, खिर और और ही रंगे ।
चखु चाहे रूप जु दीठौ, रसना मख भखैं सु मीठौ ।
निति न्हालै घ्राण सुगंधो, सपरसण कोमल बंधो ।
निति श्रवण गीत रस हेरैं, मन पापी पंचै प्रेरै ।
मन प्रेर्‌यो करैं कलेसो, इंद्रियान दीजै दोसो ।
कवि बेल्हु सुतनु गुणधामु, जगि प्रगट ठकुरसी नामु ।
करि वेलि सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष समुझाया ।
मन मूरिख सक उपाइ, तिहि तणइ चिति न सुहाई ।
नहि जपौ घणो पसारो, इह एक वचन छै सारो ।
सवत पन्द्रहसैरे पिच्यासे, तेरसि सुदि कातिग मासे ।
जिहि मनु इंद्री वसि कीया, तिहि हरत परत जग जीया ।।६।।

।। इति पञ्चेन्द्रिय वेलि समाप्त ।।

चिन्तामणि जयमाल

पणविवि जिण पासहु पूरण आसहु दूरकिय संसार मलु ।
चिन्तामणि जतहु मणि सुमरन्तहु, सजहुजेम संजवइ फलु ।।१।।

महारत्त गुंजा समादुण्णिणेत्त, सुणे सदुलं कासु सकण्ण चित्तं ।
हुरो होइसो काणणे जंबुमत्तं, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।२।।

दिढ मूसलाया रदंत पयड, मऊणिम्करंतो किए उग्ग सुडं ।
न लग्गोइसो सिन्धुरो कूल मत्त, भरंतासु चितामणे जंतु चित्त ।।३।।

विसे वासि अदुण्णि गोको असतो, न अप्पेय मूली फियो मंत मंतो ।
ण लोभाइ जून्यो फणी अप्पमित्तं, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।४।।

समीरे सहाए मिली धूम झाल, णदापेखि भग फुलिंग विसाल ।
णडुक्केइ या अग्गिणे णीर सित्त, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।५।।

ण तीसार चित्त भमरोट्टारीय, नशल वल मण्डल सण्णिवायं ।
ण दुट्ठं जरा दुट्ठु लेखास पित्त, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।६।।

कुदेवा गहा डायणी भूमिपाल, दिनाइ विस कम्मण बन्ध बाल ।
कुसवण कुसप्न न लग्ग तिणित्त, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।७।।

जरी सकले देह रक्खो विनाणे, णरासीसु विठ्ठलत दिट्ठ कुट्टाणे ।
गिऊ दूरि तह्रो जियताइ णेत, भरतासु चितामणे जतु चित्तं ।।८।।

समुद्दे र वद्दे अवाहे अगम्मे, पडयो को वितच्छो किए पुव्व कम्मे ।
तहा होइसो जाइगो पाइ जित, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।९।।

वरो बीढवा बेड सूली दुहाला, गले घल्लिऊ सप्पु होइ फुल्ल माला ।
णलम्मति घाव रणे दिण्ण सत्त, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।१०।।

तिया रूप सीलम्मला पुत्त भत्ता, सणेही कुण्डबो गुणी हुंति मित्ता ।
पुणो हुंति मेहे अमाल सुवित्त, भरतासु चितामणे जतु चित्त ।।११।।

इय वर जयमाला गुणह विसाला वेल्ह सतनु ठाकुर कहए ।
जो णरू सिरि सिरूवइ दिणि रिसि अक्खइ सो सुहमण वछिउ लहए ।।१२।।

।। इति चिंतामणि जयमाल समाप्ता ।।

कृपण छन्द

किमरणु एकु परसिद्धु नयर निसवसि विलखरणु ।
कही करम सजोग तासु घरि नारि विचक्खण ।
देखि देखि दुहु की जोडि सबु जगु रहिउ तमासैह ।
यहर पुरिष कै याह दई किम देइय थासै ।
वा रहिउ रीति चालै भली दान पुज्ज गुण सील सलि ।
वा देत खाण खरच कियै, दुवै करहि दिनि कलहु कलि ॥१॥

गुरस्यो गोठि न करै, देउ देहुरी न देखै ।
मांगिन भूलि न देई, गालि सुणि रहै अलेखै ।
सगी भतीजी भुवा बहिण भाणिज्या न ब्यावइ ।
रहै रूसणो मांझि आपु न्योतौ जिव पावै ।
पाहुणो सगो आयो सुणो रहइ छिपिउ मुख म राखि करि ।
जिव जाइ तिवहु परि नीसरै, वो धणु सच्यो क्रिपण नर ॥२॥

सुहु परयणु सथरै, सोवै तलि तिणा बिछावै ।
सव धीयाटवि काहि मोलि घरि तवै न ल्यावइ ।
ऊपरि जूडा छुलि कर दश तणि जु बाधी ।
टूटि टूटि तिणि पडइ बालि बाजै जब आंधी ।
सहि ढही भीति सेरी पडी देखि देखि केइ गालि नर ।
मारिजै वर भीती बडै, तवै न छावै कृपण घर ॥३॥

सगला पहिला उठी माथि ते देइक भाइ ।
पगि नायो सिरि भार गाव दश फिरै विनाई ।
घरि भूखो परिवार वार तसु टग टग चाहै ।
जब आवै पापीयो नाजु तब आपु विसाहै ।
लेइ सदा सोधि औगस्यो जहि मरया हुइ त्रिपति ।
ईम रहइ राति कूचक क्रिपणु सहु को जाणै नर नृपति ॥४॥

झूठ कथन नित जाइ लेखै लेखौ नित झूठो ।
झठ सदा सहु करै झूठ नहु होइ अपूठो ।

झूठो बोलै साखि झूठे झगडे नित उपावै।
जहि तहि बात बिसासि धूति धनु घर महि ल्यावै।
लोभ को लियो चेते न चिति जो कहिजे सोइ खवै।
धन काजि झूठ बोलै कृपणु मनुष जनम लाधो गवै ॥५॥

कदेन खाइ तंबोलु सरसु भोजन नहीं भक्खै।
कदेन कापड नवा पहिरि काया सुख रक्खै।
कदेन सिर मे तेल मल मूरख न्हावै।
कदेन चन्दन चरचै अग अबीरू लगावै।
पेषणो कदे देखै नही श्रवणु न सुहाइ गीत रसु।
घर घरणी कहै इम कतस्यो दई काइ दीन्हो न पसु ॥६॥

सिरि बांधै चीथरी रहइ तलि किए न गोटो।
अग उघाडी दुवै झगो पहरो गलि छोटो।
पछहि जूव सैवार कदे कापडा न धोवै।
हाथ पाग सैर को मेलु मलि मूलिन न खोवै।
पहरि वावा णीयर चरण तणी नीसत नहि उट्ठं।
रलायो सचरि सवरि तहि नणी गुण पडी कृपण घरण दूबली ॥७॥

ज्यौ देखै पहरत खत खरचत अवर नर।
बैठा सभा मझारि आणि हासति कुसम सर।
देखि देख तहु भोगु कृपण तिय कहै विचारी।
व्याह तणी एकत पुणि पूरी तेजारीमइ।
पुव्व पाप कृत आपणी कत्तु कुमाण समरि लक्षौ।
इकु कृपणु अरु करपु कुवोलणो लाज मरो लक्खण रह्यो ॥८॥

ज्यो देखे देहुरै त्याह की वर नारी।
तलि पहर्या पटकूला सव्व सोवन सिगागी।
एकि करावै पूज एकि ऊचा गुण गावै।
एक देहि तिय दाणु एक शुभ भावन भावै।
तिह देखि मरौ हीयो हणौ कवणु पायु वीयो दई।
जहि पाप किणहो पापीणी कृपणुकत घरि धण हुई ॥९॥

कै कुदेव पूया करू जिण चलण नवाया।
कै मै पेख्या कुगुर साधु गुरु सावति निंद्यो।

के मै बोलो झूठ अवर विठु दया न पाली ।
के मै भोजनु कियो यति व्रत सवाए ।
स्वामी पुव्व आयु आयो उदै, कृपरणु कत पायो पडयौ ।
तो दिन पायु रिचण सुहै, अरणही मिसि पावै लइयो ।।१०।।

इणीइ रीतिरहि कृपरिण धुति धरणु धणी उपायौ ।
ले सुणि पासै बार गाडि पुर बाहरि आयौ ।
क्यो कलतरि आपिया ताहु जे भेदे न अक्खै ।
बयोरि करै भडसाल व्योर तल मुनिगुन लक्खै ।
परिवार पूत बवल जणहु नीय कुनहु पतियइ कसु ।
यो सूमि सदा धन एकठो करि करि राख्यो आप वसु ।।११।।

दुख भरती देहुरै तासु तिय जाइ सवारी ।
एकहि दिणि तिणि सुन्यो सगु चाल्यौ गिरनारी ।
रयरण समै करि जोडि कहिउ पिय सरिसु हसती ।
सुणहि स्वामि महु एक तणी वीणती ।
नर नारि सबै कोऊ भरघा लीया परोहण बर जु धरि ।
वदिस्यौ जाइ श्री नेमि प्ररु दडि सेरोतजसिरि ।।१२।।

तुती करि पिय मतो चडहि दुवे गिरनारीय ।
वदहु नेमि जिरणदु जेणि तिय तजिय कुमारीय ।
दीप धूप फल लेइ चरू प्रक्खत केशर ।
कुड गयवी न्हाइ पाइ पूजा परमेसर ।
प्ररु चडहु दुवें सेतजसिरि जनम जनम को नाइ मलु ।
उपजानजो पसु नर नरकि लहि अमर पदु परम फलु ।।१३।।

नारि वचन सुणि कृपरिण सीसि सलवटि अणपल्ली ।
कि तू हुई घरण बावली कि वरण वारी मति चल्ली ।
मै धरणु लद्धु न पडयो मेर धरणु लियो न चोरी ।
मै धरणु राजु कमाइ आयु आणियो ना जोरी ।
दिनि राति नीद तिस भूख सहि मैर उपायो दुखि घणो ।
खरचि वा तणो वाहुडि वचनु वरण मु आवै मत भणो ।।१४।।

कहै नारि सुणी कत चपल विज्जु जक्यो लछी गयौ ।
नहु नव निधि मूकि तसु गैलरण लछी ।

अवर किता नर कहउ ज्याहु सचीहु त्याहु हारयौ ।
इम आणि कत अव सइएाँ जिन सूकहि करि काठिएा मनु ।
ज्यौ व नमितु तणइ धरिइ इ छयो होइ अनंत धरगु ।।१५।।

कहै कृपगु सुणि मूध भेदु जगु लहइ न आयो ।
धन बिनु कोइ न सगो पूत परियण तिय बघव ।
धन विगु पडितु मोधु विधाषित मडलि पीगो ।
धण विगुवि तिय हरिचद राइ बेचा पुरि राणै ।
....।।१६।।

नारि कहै सुगा कंत जकै दाता रहुवा घर ।
करण भोज विक्कम अजो जीवै.......................।
नर सूम सदा अपवित्त् सुसु तामुहो मसीगो ।
सूमन ले कोइ नाउ तालसिरि दे सब कोणो ।
दातारि कृपणि यहु अन्तरो लीजै ज्यौ क्यो लेहि फलु ।
नातरि धन गुण वजन अन भौन भरि अजलि करि देहि जलु ।।१७।।

कहइ कृपगु करि रोसु काइ घगु धीर ठावि सचहि ।
मू घर जाता रहै हठु आपणी न छडै ।
करहि पराई होड जाहु धरि लछि अलेलै ।
भूठि भेदु ना लहहि आप घर दिसै न देखै ।
नित उठि बात जपिहि सयाणी ज्याहु चलै मभु कपणी ।
ते गलो हाथ जिहु अरचि जे लछि पाई आपणी ।।१८।।

कहै नारि सुणि कत धनि सो जगती जायो ।
जहि नर करि अपणी वित्त् विलुसियो उपायो ।
होइ न कीज्यै पापु पुण्य की होइ करल्ता ।
होइसु जसु ससारि परति सफलो अरल्ता ।
धरि हुई लछि पुणि पहिल कै धीहूण सर्चे आपणो ।
ते नर अचेत चेत्या नही दसिया सर्प सापिणी ।।१९।।

तबहि कृपगु करि रोस रुसि घर वाहिरि चलीयो ।
ताम एकु सामहो मतु धरि चेलौ मिलियौ ।

कृपणु कहै रे कृपणु आजि तू दूयरण दिट्ठो ।
कि तु राबलि गह्यौ केम घर चोर पइट्ठो ।
आइयउ कि को घरि पाहुणौ कीयौ नर भोजन सरसि ।
किणि काजि मीतरे आजि तुव मुख विलीणु दीठो विरसि ।।२०।।

कृपणु कहै रे मत मुझ घरि नारि सतावै ।
जाति चालि घणु खरचि कहै सो मोहिण भावै ।
तिह कारणि दुब्बलो रयण दिण भूखरण लग्गइ ।
मतु मरण आइयो अह्य पभ्यो तू आगै ।
ता कृपण कहै रे कृपण सुणि मीत मरण न माहि दुखु ।
पीहरि पठाइ दे पापणी ज्यौ को दिण तू होइ सुखु ।।२१।।

कृपण वचन सुणि कृपण हरिखु हीयो अति कीयो ।
पुरिष ले एकु सखि लेखु झूठो लिखि दीयो ।
तिय आगै वाचौ छे तुझ जो जेठो भाइ ।
तुहि घरि जायो पूय तु घरि वण कोकी आइ ।
तुटिसी प्रीति जै ना चलि सिसू नैवो सुण वापडी ।
जाणती पिउ परपच घण चली नवि जासापहि ।।२२।।

तिते सघु सामह्यौ साथि लीयौ भड भारी ।
हय गय रह पालिका चडिवि चल्ली नरनारी ।
जत जत गिरनैर पह राजलु वर वधो ।
साह पजुण चडेवि पुण्य कृत पाप निकधो ।
भरु दिट्ठु जीइ सेत्तसिह गनह रच्यो कवण वणु ।
मनुष जनम को फल लीयो फिरि फिरि वधा जिव भवण ।।२३।।

ठाह ठाई ज्योणार कीय व्यापार महोच्छा ।
ठाइ ठाइ संग पूज दिठ चित्त किया णवेच्छा ।
ठाइ ठाइ मगिणाहं दाणु सुजसु उपायो ।
बाजत ढोल निशाण सब कुसलह घरि आयो ।
इकु पुण्य उपायो पूरिस्यो ल्याया लोग असख धनु ।
या वात सुणे ज्यौ किमणु त्यौ ते तसु पछिताइ मनु ।।२४।।

कहैं कृपणु नित उठि जइरहौं चालौं हूतो।
पडिणतो जिउणार धा दुख रखतो न टौली।
इणि परिल्यां तो अछि रहिरु सगली मति बोली।
उठि भरौं हीयो हणे सिरु पीटैं ले दुवै कर।
अति घणसा कृपणु नैऊसूनी सूल सफोदर सासु जद ।।२५।।

तब मरतो जाणि करि सयल परियण मिलि आयो।
बध न पुत्त कलत्त मात कहि कहि समझावहि।
क्यो आगै हुई सुखी खरचि लै सुकृत सबलो।
ते बल्हौ घरो बताव धाइजो जीवैं पालो।
कुल कहि रह्या सवैं बोलतहीं कृपण कोपु लगाउ करण।
घर सारि आइ अवरो कहे भाति कत बूकउ मरणु ।।२६।।

कहैं कृपणु करि रोसु काइ मिलि मूनोवाहो।
चोर न बूझैं सार चोरे धनु लीयो चाहे।
जीवतां अरु मुवह कोण धणु मुझ ले सककइ।
कै लै चालो साथि कैर धणु धरती थकैं।
ल्यौ काढि आइ अवरह जनमि तुहि न बताउ वरिउ धणु।
सुणि वात उठि बचव गया तितै पहुतै पटण दिणु ।।२७।।

तवह मरतो कहै लछि आणइ ठाणंती।
भाई परियणु पूत मेंऊ राखो तु पाती।
बादनू प्रति ससही देखि दुष्ट घणा उपाई।
माग ताग गिणी काजि तु मालि दिवाई।
एहु चोर ठगारी आणि यो मे राखी करि जतनु तुझु।
णिगुस खिलज्जुनि लछि इव˙˙˙ ˙˙˙ ।।२८।।

लच्छि कहै रे कृपण झूठ हो कदे न बोलो।
जु को चलण दुइ देइ मैल त्यागी तसु चालो।
प्रथम चलण मुझ एहु देव-देहुरे ठविज्जे।
दूजे जात पतिट्ठ दाणु चउतघहि दिज्जै।
ये चलण दुवै तैं भजिया ताहि विहुली क्यो चलौं।
भूखमारि जाय तू हो रही वहुडी न संगि थारे चलो ।।२९।।

यों ही करता कृपण·································बाकी ।
बोल न बोल्यी बयो सैण किकण समझि लै सबकी ।
नाज·································सयल बण धरती छड्यो ।
गयो नरगि· ········· कूपट कृपणु तहा पच परि दुख सह्यो ।
गाव में जेता नारी पुरिष भला हे मुवो सयलाह कह्यो ।।३०।।

मूवो कृपणु कुमीव लोग सगलाह मनि भाव्यो ।
रह्यो राति घर माहि कोइ बालिबा न आयो ।
सब राति हि जणह बीस पुर बाहिरि राल्यो ।
पूरा हुवा णी काठ रहित तैठै धम बाल्यो ।
घर नारि पूत बधव खिल्या मनि हरिष्यारु जुवो जुवो ।
पहरिस्या खाइस्या खरचस्याह भली हुवो जै इह मुवो ।।३१।।

कृपणु गयो मरि नरगि तिहा दुख सह्यो अलेखै ।
रोवै करै कलाप करणै कहै इम अक्खै ।
गत जारो मू जोग गेगरु इव निरमै पाउ ।
जितौ करो बरि लछि तितौ पुणि मारगि लाऊ ।
हसि जपहि असुर कुमार तसु मुनिष जनमु बूझै कहा ।
तु मनसि जनमि पडिसे नरगि दुखु दाहृणु लामै जहा ।।३२।।

तै धनु कूडि कपटि ····· ·· परिपच उपायो ।
न तै जो तप विट्ठ देव देहुरै लगायो ।
न तै करी गुर भगति न ते परिवार सतोष्यो ।
न तै मुवा भाणिजी न तै पिरीजणु पेष्यो ।
न तै कियो उपगारु अडि जौ तू नै आडो फिरो ।
वो गवो पाप फलु आपणो मत विलाप कारण करै ।।३३।।

एक तलै तेल मे एक अगि सूली बामै ।
एक घाणी मै पेलि एक काटा सिरी स्वाणै ।
इक काटै कर चरण एक गहि पाव पछाडै ।
एक नदी मैं छोड बहुडि खाडै खणि गाडै ।
इकि छेद सरीर तिलु तिलु करिवि सु पा राज्यो मिलि ।
जाइणि सागर बध दुख भोगवै मरइण पूरि आयु विणु ।।३४।।

इमो आणि सहु कोइ मरइ ण पूरिय धनु सच्यो ।
दान पुण्य उपचार चित धनु किवंन खचो ।
दान पुनै यह रासो कसो पोष पाचै जानि आणि ।
जिसउ करणु इकु दानु तिसउ गुण कामु बखाण्यो ।
कवि कहै ठकुरसी लखणु मै परमत्थु बिचार्यो ।
धरमियो त्याह उपज्यो जनमु जा याच्यो तिह हारियो ॥३५॥

॥ इति कृपण छन्द समाप्त ॥

शील गीत

पारासरु अस विस्वमत्त रिषि रहुत बुवइ वनि ।
कंद मूल वणि खत हुत अति खीण महा तनि ।
ते तरुणी मुहु पेखि मयण वसि हुवा विकलमति ।
पछइ जि सरस अहारु लिति तह तणी कवण गति ।
परिवो जु एकु मनहि जि के मनु इंद्री वसि रहइ तहु ।
विंध्याचल गिरि सायर तरइ तउ मइ मनिउ सब्बु सहु ॥१॥

सिंघु वसइ वन मज्झि मस आहारि बली अति ।
वार एक वरस मैं करइ सिंघणी सरि सुरती ।
पेखि परे वो पापु जासु मन मुडइ न आसुर ।
खाइ खड पाषाण कामु सेवइ निसि वासर ।
भोयणु वसेसु नहु ठकुरसी इहु विकार सबु मन तणी ।
सील रहहि ते स्पष नर नहि पारामति गिणी ॥२॥

॥ इति शील गीत समाप्त ॥

पार्श्वनाथ स्तवन

नृप अससेणह पुत्तो गुण जुत्तो असुर कमठ मउ मलणो ।
वम्मादेउरि रइणो, वयणो अविरुद्ध अयजस्य ॥१॥

फणि मंडियउ सीसो, ईसो तिल्लोक सोक दुख दुलणो ।
तन तेय जेण निर्जित, कोटी खर किरण मह दीप्ति ॥२॥

जसु सुरपति दासो, खित ससार वासो ।
सयल समै भासो, सत्त तच्चापयासो ।
किय मयण विणासो, दुट्ठ कमट्ठ नासो ।
जयउ सुपहुपासो पत्त सासै निवासो ॥३॥
गुणाण सव्वाण वर निवास, न ध्यावहि जे नर पाय पासं ।
कहुत ये पुज्जै ताह आस, करति जे मिछ पहु विसास ॥४॥

जि कि करहि मूढ विसासू ।
सुणी जाइ मोपाभास ।
खणावैति खान जीवा करै हि विणासु ।
जिकि कु गुर कुतिथ वास ।
सेवै जाइ जेम दास ।
चडी मु डी खेतपाल ध्यावै हि हयास ।
जि कि पत्तर अनावै मास ।
यह गति बूझै कास ।
अवरह मिथ्यात पथ करहि सहास ।
ताकी कहा ये पूजैइ आस ।
न ध्यावै जे प्रभ पास ।
चपावती थानि सब गुणह निवास ॥५॥

सुखसिधाम प्रभ पास नाम ।
न लिंत जे वछित सुख राम ।
तिदुखबता ससि सूर गाम ।
असु दर गेह नर निकाम ॥६॥

जिकि दीसैहि नर निकाम ।
उपाइ न सकै दाम ।
पड्या घर घर माहि येरै तिन थाम ।
धरि नारीय नेह विराम ।
अधिक करुय साम ।
नदण निगुण भरिहुहि विरनाम ।
जाकी कहीय न रहै माम ।
फिरै पीली माम गाम ।
रोक जिसा रोज पून्या दीसै देह साम ।
तिह कीयउ सही कुकामु ।
सकिउ न लेइ नामु ।
चम्पावती पास भव सव सुख धामु ।
जगत्त अधार मणोपहारी ।
जि ध्यावहि पासु सुभाव धारी ।
ति पावहि मानव सुख सारी ।
मनत लछी गुणवत नारि ।।८।।

जाकै दीसै गुणवत नारि ।
रूपवत सीलधारी ।
नदण नृपुत्तनी काजिसउ मुरारी ।
जाकै हय गय असवारि ।
धन धन पूरी सारि ।
कीरति सुजसु जाकै व्याप्यो खण्ड चारि ।
जाकै कहीयन आवै हारि ।
पावै सुख भव पारि ।
दैहन दुखी होइ जाकी रोग मारि ।
तिणि ध्यायो सही संसारि ।
मनह आणै विचारि ।
चपावती पासु जपु जाकै अधारि ।।९।।

पसाउ पास प्रभ जे लहति ।
कुसैणु कुग्रह तसु कि करति ।
हवति धीया सलु ने नेहवत ।
जल थल अग्नि सहाइ वत ।।१०।।

जाकै अग्नि सीलै सहाइ ।
नीर निधि थलु थाइ ।
धके आयो स्याल सम सिव हुव आइ ।
जाकै मानु देहि रूठा राइ ।
अंगुण ति लेहि छाइ ।
विषम सुविसु अंमि अमी हुइ थाइ ।
जाकी जगतु भली कहाइ ।
लागै हि न माल्या धाइ ।
कुग्रह कुसैंस वसु कछु न वसाइ ।
ताकै भेदु पाया इव जाइ ।
सुखी मति दीसै न्याइ ।
चपावती पास प्रभ तर्णो पसाइ ।।११।।

पास तणै सुपसाइ पाइ पणमति आइ भरि ।
पास तणै सुपसाइ थाइ चक्कवइ रिद्धि धरि ।
पास तणै सुपसाइ सग्ग सिव सुखु लहि जै ।
पास तासु पणमति भगि आलस कुन कीजै ।
ठकुरसी कहै मलिदास सुणि ।
हमि इहु पायो भेदु इव ।
जगि ज जं सु दरु सपजै ।
त त पास पसाउ सब ।।१२।।

।। इति पार्श्वनाथ स्तवन समाप्त ।।

सप्त व्यसन षट्पद

पुहमि पट्टि मसि मेरु, होहि भायण सर सायर ।
प्रघस अनोपम लेखि, साख सुरतर गुण आयर ।
आपु इंदु करि लिहै, कहै फणि राउ सहस मुख ।
लिहइ देवि सरसति लिहत पुणु रहइ नहीं चुष ।
लेखणि मसि मही न उव्वरइ, सक्कइ सरिसइ इंद फुणि ।
आयो नबोडु कहि ठकुरसी, तबइ जिणेसरि पास गुणि ।।१।।

जुआ खेलना—

जूव जुवाख्या घणी लामु, गुणु किवइ न दीसइ ।
मतिहीन मानई खेलि, मत चित्ति जगीसइ ।
जगु जाणइ दुखु सह्यौ, पच पडव नरवइ जलि ।
राजरिषि परहरी, रणु सेविउ जुवा फलि ।
इहु विसन सगि कहि ठकुरसी, कवणु न कवणु विगुत वसु ।
इत जाणि जके जूवा रमै, ते नर विणिवि सींगु पसु ।।२।।

मांस खाना—

मुरिख मस म भखहु, तासु कारणु किम गोवहु ।
जहि स्वाद कारणि, काइ लयइ मउ खोवहु ।
फल प्रासत रस लुद्ध कूडु कीयो न मुणिउ मणि ।
मान्या उदर विदारि विप वा तापी उल्लणि ।
प्रै गुण अनन आमिष वसहि कवि ठाकुर केता कहै ।
वगराउ भजउ जगलि भखणि नरइ नीव घणु दुखु सहैं ।।३।।

मदिरा पान करना—

मज्जु पिये गुण गलहि जीव जोगी ज्याख्यो भणि ।
मज्जु पिये सम सरिस माइ महिला मण्णहि भणि ।
मज्जु पिये बहु दुख सुखु सुणहा मैथुन इव ।
मज्ज पिये जादव नरिंद संकटु कवि गय खिव ।

धण धम्म हारिण नरयह गमणु कलह मूलु अवजस उपति ।
हारति जनम हेलइ मुगध, मज्जु पिये जे विकलमति ।।४।।

वेश्यागमन—

वेस्या वणियर चारुदत्त परमाणु परिखिउ ।
सुनया कोडि छत्तीस खद्ध तिन घडी न रखिउ ।
अवर किता नर कहउ ज्याह दिट्ठउ दुखु दारणु ।
गाह हरिषि कवि कालिदास मारिउ निकीणु ।
तसु सग किये प्रतिवइ वहि कुल कीरति छारह मिलै ।
धनु जोवनु कीरति जाइ चलि ज्यौं कायर दीठा किलै ।।५।।

शिकार खेलना—

पारधि पचमु विसनु नरइ पंचमि पहुचावइ ।
जाणतऊ नरु नीचु पेखि पसु मनह सिहावइ ।
तिण चरनिरा पराधइ सौ न नमनह विचारहि ।
तुरिय चडिवि वनिजाहि जीव जोवन मदि मारहि ।
खत्री प्रखत्रु करि सग्रहहि पारधि पापु विसाहि बहु ।
ते सहहि दुखु कहि ठकुरसी ज्यौं चककवइ सुवंमु पहु ।।६।।

चोरी करना—

चोरी करि सिवभूति बिपु ससारि विगुत्तउ ।
तिणि डण्ड तिनि सहिय पुणवि मरि नरयह पतउ ।
अवर किता नर सहहि दुखु दारणु चोरी सगि ।
इम जाणिवि परहरहु जिन रुलावहु अवगुणु अगि ।
जपु तपु सनानु सजमु सुकतु कुल कीरति तीरथ धरमु ।
तउ सहुल सवे कहि ठकुरसी जइ न फुरइ चोरी करमु ।।७।।

परस्त्री सेवन—

परतीय परत विणासु सरव दुख दावइ इह भवि ।
जाणंतउ जा बधु लोउ परहरइ तवइ नवि ।
प्रगट सुणी ससारि कथा कीचक अरु दहमुख ।
सीय दोवइ कारणइ जेम मुंजिय वहु दुख ।

इह भइ अकित्ति पूर्‌यो जगत्‌ परति वासु पायो नरइ ।
सलहिये सुनह कहि ठकुरसी जो परतीय रह रहइ ॥८॥

सप्त व्यसन—

जुवा बिसन बनवासि भमिय पंडव नरवइ नलु ।
मसि गयो बमराउ सुराखो यो जादम कुलु ।
वेसा वणियर चारिदत्तु पारधि सवमुनिव ।
चोरी गउ सिउभूति विपु परती लकाहिउ ।
इकेक बिसनि कहि ठकुरसी नरह नीचु नर दुहु सहइ ।
जहि मगि अधिक मझहि बिसन ताह तणी को कहइ ॥९॥

॥ इति सप्त बिसन छपद ठकुरसी कृत समाप्त ॥

व्यसन प्रबन्ध

जुवा केरा फल प्रगट घर, खिरण होहि भिखारी धनी नर।
जिन खेलहु मूरिख हारि धणी, किन सुणीय कथा पडवह तणी।
सुणि सीख सयाणी मूढ मन, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ॥१॥

रसणा रसु स्वादु न राखि सकै, पलु प्रासै मूढु न परतु तकै।
बगरीव तणी परि नरय गते, सहि से दुखु तब चेतिसी चिते।
सुणि सीख सयाणी मूढ मन, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ॥२॥

जहि पीये प्राठ अनर्थ करै, जननी महिला न विचार फुरै।
तहि मज्जि पिये भणु कवणु सुखो, जहि जादव वसह दिणु दुखो।
सुणि सीख सयाणी मूढ मन, तजि विस्न बुरा देहि दुख घण ॥३॥

विहि वेसा सिरजी नरय घर, घण जोवन कीरति हाणि कर।
जहि सग कियो वणि चारुदत्तो, रालियउमरो हुइ सेज सुतै।
सुणि सखि सयाणी मूढ मन तजि, विस्न बुरा देहि दुख घण ॥४॥

जोवनि मदि मूरिख जाहि बन, पसु पारिधि मारहि मूढ मन।
चकवइ सुवभहु तणीय परे, दुर्गति दुख देखहि मूढ मरे ॥ सुणि० ॥५॥

खर रोहण सूली वध घण, तहि चोरी किये कवण गुण।
प्रभ परयणु पुञ्जणु होइ रिपो, किन प्रगट सुण्यो सिवभूति विपो ॥ सुणि० ॥६॥

इह परतिय परत विणासु करै, इह रत सयल गुणि दूरि हरै।
परहरइ जको सुणि रावण कथा, सो लहइ सरव सुख विणु अनिथा ॥सुणि० ॥७॥

सुणि धर्मचन्द उपदेसु लह्यो, कवि ठाकुर विस्न प्रबंध कह्यो।
परहरइ जको ए जाणि गुण, सो लहइ सरब सुख बछित घणं।
सुणि सीख सयाणी मूढ मन, तजि विस्न बुरा देहि दुख घणं ॥८॥

॥ इति व्यसन प्रबन्ध समाप्त ॥

पार्श्वनाथ जयमाला

दारुणु नयणारुणु नयविहूरे, जिह गय बह भय भगइ ।
तह जिण गुण मणि सुमरतियहि, थिक्कण थाहि उवसंगइ ।
महा दिढु दंत उपाणि पयडु, चहू दिसि चालीय सू डा डडु ।
नलग्गइ हथियरु तणु जासु, धरनहु चित्ति चिंतामणि पासु ॥१॥
डरावणु देहु सु सद्द् करालु, दुरा रुण णेत्त जिसहि बिम्फालु ।
सुस्याल समौ हरि होइन कासु, धरतहु चित्ति चिंतामणि पासु ॥२॥
जसु ठियज्झाल समीर सहाय, चहु दिसि लग्ग न भगउ जाय ।
न ढुक्कइ नीडउ सो जिहु वासु, धरतहु चित्ति चिंतामणि पासु ॥३॥
करेण छियो जसु जाइन अगु, भरिउ विसि लच्छुरि किण्हु भुवगु ।
न लग्गइ चूरि उसो जिदु रासु, धरतहु चित्ति चिंतामणि पासु ॥४॥
तरग सु मुठिय नीरि अगाह, भरिउ जल जंति न लभइ थाह ।
सुहोइ समुदु जिसउ थल वासु, धरतहु चित्ति चिंतामणि पासु ॥५॥
जिसण्णिय लेस मसिय सिरवाहि, भग्गदर सूल जलोदर आहि ।
तिणासहि कोढ पमुहु खय खास धरतहु चित्ति चिंतामणि पासु ॥६॥
कुसौण जिकु ग्रह कूर कुदेव, कुमित्त कुसज्जन कुप्रभ सेव ।
करति न ते भय दुख पमासु, धरतहु चित्ति चिंतामणि पासु ॥७॥
कही चिरू कम्मि बिये धरि वधि, भरिउ तनु सकलि घल्लि निरधि ।
तहू त गयो अरि करिवि निरासु धरतहु चित्ति चिंतामणि पासु ॥८॥
महा ठग चोर जि डाएणि दुट्ठ, दिनाइय कम्मण मत असुठ ।
नलगहि लील गमे दिन पासु, धरतहु चित्ति चिंतामणि पासु ॥९॥
तिया सुव बंधव सज्जन इट्ठ, उपज्जीह चित्त् रमै जिह दिट्ठ ।
मण छिय सव्वइ पूरहि आसु, धरतहु चित्ति चिंत्तामणि पासु ॥१०॥

घत्ता

इय वर जइमाला पास जिण गुण विसाला ।
पढ़हि जि णर णरी, तिण्णि सका विचारि ।
कहहि करि अनदो, ठकुरसी घेल्ह नदो ।
लहहि ति सुखसार, बछिय बहु पयार ॥११॥

॥ इति पार्श्वनाथ जयमाला समाप्त ॥

ऋषभदेव स्तवन

पांडव पंच भमत देश इक्कहि पुरि थकिय ।
तहि कुंभारि रोवत पुत्त दुखि देखि न सकिय ।
तासु मरण वीसरइ जाइ आपणु हक्कारिउ ।
रखिउ जणु जगडतु भीमि रणि राखिउ सुमरिउ ।
तिम कहइ ठकुरसी रिसह जिणु तुह निवसतह चित्त धरि ।
जइ आइन तिय न दोस दुख, तवरि कहउ इव कासु फिरि ।।१।।

तुहु जग गुर जोतषी तुही वड वैदु विचखिणु ।
तुहु गरवो गारुडी सयल विसुहरहि ततखिणु ।
तुहु सिद्धक्षर मतु ततु तुही तिभवणपति ।
तुहु सजीवन जडी तुही दातार महत गति ।
इख्वाक वस श्री रिसह जिणु, नाभि तणु मम भव हरणु ।
सब अहल अवर कहि ठकुरसी, तुहु समरथ तारण तरणु ।।२।।

।। इति ऋषभदेव स्तवन समाप्त ।।

कवित्त

किसउ णरवै भइं न भड रिद्धि नि ने ही सुहि किसो ।
किसौ मति जसु बुद्धि मंदी किसौ तुरगमु वेग विणु ।
किसौ जति जसु बसिन इदी किसौ वैदु जो ना लहो ।
देह व्याधि कर जोइ निगुणी कियण गुण विथरै किसो कवीसरु सोइ ।।१।।

ज्यौ क जणणी जणसु गुणवत वियगरुई हीण वरु ।
पेखि पेखि मन मै विसूरइ ज्यों सेव कुसेवा किया ।
होइ दुमणु आसा न पूरइ ज्यौ पछितावो जणा ।
अवसरि सुजसु न लिद्ध कहि ठाकुर त्यौ कवियण नर निगुण गुण किद्ध ।।२।।

नर निर खर निकुलनि लज्जा निनेहीनी चरइ ।
निगुण सगुण अंतरु न जाणै बोल चूक बहुली कहण ।
विनय वचनु बोलि विन जाणे कूवर कुसर कठोर अति ।
सचक सदासलोभ कहि ठाकुर तइ गुण कहहि ते कवि लहहि न सोभ ।।३।।

सगुण सुदर सदा सद्धम साहमी सनहे कर ।
सुजसु संचि जे अजसु मूकै विनइ विचखिण बड चिता ।
वस सुष बोलै न चूकै पाप परमुह पर तणउ ।
परइ करहि दुखु भखि तह जमु कहहि जि ठकुरसी तेरु कवीसर धखि ।।४।।

कहा बहिरउ करइ रसुगीउ कहा करै ससि अंधलो ।
कहा करै नरु सढु नारी कहा करै कर हीण नरु ।
गुण सजुत्त को वडुकारी कहा करै चपउ भवरू परिमल ।
परिमल अधि विसाल कहा करै त्यों निगुण नरु कवियण कव्वु रसालु ।।५।।

जइ रूवहि रइ सुण्यौ नहु गीतु, जइ न दिठ ससि अंधलइ ।
जइ न तरुणि रसु सढि जाण्यौ, जइ न भवरू चपइ रम्यो ।
जइ न धणकु करहीणि ताण्यौ, जइ किणि निगुणि निलखणो ।
कव्वि न कीयो मण्णु कहि ठाकुर, तउ गुणी मण नाउ जासी सुणु ।।६।।

।। इति कवित्त समाप्त ।

पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी

अस धवलवि धवल गलिहारु धवलासणु कमलु असु ।
धवल हंस वाहणि वइठि वीणा पुस्तक कर लियइ ।
करइ वि दुरजइ जोग तूठी तहि परमेसरि पय कमल ।
पणविवि निम्मल चित्ति पगडु करिसु चंपावती पास नाह गुण किति ।।१।।

एक दिवसह पास जिण गेह मल्लिदास पंडिय कहय ।
ठकुरसीह सुणि कवि गुणग्गल गाहा गीय कवित कह ।
तइ किय मय निसुणी समग्गल इव श्री पास जिणंद गुण ।
वर वम्मा देवी जणणी सुयणा सोलह निसि ण जणणु अखै ।
तुह सुवहो सइ अतुल बलु दयाल या कलकडु अमयो जाणि जगनाथु ।
करहि न किं तुहु भव्व जहि कीया ये पाविए मन वंछित सुख सव्व ।।२।।

ताम विहसिवि कहइ कवि एम णिसुणि मित्त तसु गुण कहत ।
सरसय इंदु धणिंदु थक्कइ कवि माणस अम्हा सरिसु ।
लहा कवण परि कहिवि सक्कइ, पणि तुहु वयणु न अवयउ ।
मू मनि पुव्व अगीस वुधिसार तसु, गुण कहिसु जस फणि मंडिउ सीसु ।।३।।

देस सयलह मज्झि सुपसिध ।
जसु पटतर अलहतविहि ।
ढुंढि ढुढाहडु नामु अखिउ ।
तह चंपावती वरु णयरु ।
जहा न को जणु वसइ दुखिउ ।
जैन महोछा महम घणा ।
जहि दिनि दिनि दीसन्ति ।
तहा वसइ ते धण्णु णर ।
इउ जण दिवस कहंति ।।४।।

तासु णयरी म.........   ....।
....।

---

१. पाण्डुलिपि मे छन्द ५ से १४ तक नहीं है ।

ते गुणवित जिय परमाद ।
षट्ट बाहरि षट्ट भितरिहि ।
तविउ सु तपु अइ दुसहु दुद्धरु ।
मय अट्ठ परहरि कियो ।
तेरह विहु चारित्त उद्धरु ।
बम्ह चेरु मव बिहि चरिउ ।
दह विहु पालिउ धम्मु ।
एम जिणेसर पास प्रभि ।
खयो पुव्व किउ कम्मु ।।१५।।

अरु परीसह सहिय बावीस, अरिइट्ठ कक्कर करणं ।
थुइ णिंदा सम भाइ भावण, गुण थाण गुणि चडिउ ।
नवो कम्मु नहु दिण्णु आवण, चम अणेह पयार तव ।
तवि उतिथ करि जाम, असुर इक्कु एहि अतु सिरि थक्कुबि मारणे ताम ।।१६।।

भिरु विमाणिहि वैरु सभलिउ ।
इल आइ विलगउ करण ।
घोर बीरु उवसगु दुठउ ।
जान चलिउ ता असुरु ।
जलु असखु दिन सत्त वुठउ ।
चिरुउ वयारु विसभरिवि ।
सो रखिउ धरणिद ।
पउ इवसमिउ पाविइउ ।
केवल णाणु जिणिद ।।१७।।

तवहि आविय सयल सुर मिलिवि, जय जय पभणत गिरि ।
नियवि तह सुरु कमठु णवउ, समोसरण लछी सहिउ ।
हुवो दोस तजि गुणि गरिट्ठिउ, चइतीस तिसय मडियउ ।
वसु पडिहारु सजोउ, अट्ठ कम्मह णिदिट्ठ तिनि ग्यान नयणि तिलोउ ।।१८।।

तवहि दरसिउ मग्गु कुमग्गु, षट दव्व ससक्वसिद्ध ।
तव पयय गुण भेउ अखिउ, ससार सागरि विषमि ।
पडत भव्व जनु सयलु रखिउ इम बोहतउ सयल जगु ।
पुग्गु पत्तउ निव्वाणि, हूवो सिद्ध वसु गुण सहिउ सारुप सुख निहाणी ।।१९।।

तासु जिणवर तणउ पडि बिंबु ।
अट्ठधात पाखाणमइ ।
थापइ थुकल कल कालि जिथुवि ।
तहा तहा अतिसय सहितु ।
परत्या पूरण छहि समथवि ।
पाणि जु मुत्ति चपावती ।
कृस्न वणि अयट्टु ।
तासु परत्यो हुउ कहऊ ।
जो मइ णयणह दिट्टु ।।२०।।

जवहि लिद्धउ राणि संग्रामि, रणथम्भुवि दुग्ग गढु ।
जव इब्राहिम साहि कोपिउ, बलु बोली मोकलिउ ।
बोलु कोलु सवु तेण लोपिउ, अव लग उज्झलि हाइसिउ ।
मेछ मूढु भय वज्जि, विणु चंपावती देस सहि गया दहइ दिसि भज्जि ।।२१ ।

तिवहि कपिउ सयल पुर लोउ ।
कोइन कसु वरज्जिउ रहइ ।
भज्जि वहइ दिसि जाण लगउ ।
मिलिवि करी तव बीनती ।
पासणाह सामी सु अगउ ।
सवणा जोतिग केवली ।
चित्तु न मडइ आस ।
कालि पचमी पास प्रभ ।
जगि तुव तणउ विसासु ।।२२।।

तेण तुहु सिउ कहहि जगनाथ ।
निसुणि सिद्धि सुंदरि रवण ।
इहि निमित्त कउ किसउ कारणु ।
भूत भविषित जाण तुहु ।
तुहु समथु जगि तरण तारणु ।
उञ्चावता उचवहु ।
जहि भव देखहि गाइ ।
अवरिन देखहि पास प्रभ ।
होइ रहहु थिरु ठाइ ।।२३।।

एम जपवि करिवि थुय पूज, मल्लिदास पढिय पमुह ।
सइ हुया सामी उचायउ, तुझ मूरति उभी न तिलु ।
हुवो जाणि सुर गिरि सवायउ, इणि विधि परतिउ वारतिहु ।
पूरिवि हुरी भरांति जयवतउ, जवि पास तुहु जेख करी सुख सांति ।।२४।।

तासु पर तेजि के णर अव्वनी अग्गा दिढु रह्या ।
हुवा सुखी ते घरा वासै ।
जो भग्ग मति करि ।
दुखि पाया अरु पडया सासै ।
अवरइ परत्या बहु इसा ।
प्रभु पूरिवा समथु ।
अजउन जिसु पतियाइ मनु ।
सो नर निगुण निरथु ।।२५।।

इव जि सेवहि कुगुरु कुदेव, कु तिय जि गमु करहि ।
इवहि जि के पाखडु मडहि, धगड धम्मु पावहि न ते ।
मुनिष जम्मु लद्धउ ति मडहि, सेवहि जिन चपावती ।
परत्या पूरण पासु, हरत परत जिउ हुइ सफलु वछिर पूरइ आस ।।२६।।

घेल्ह णदणु ठकुरसी नाम ।
जिण पाय पकय भसलु तेण ।
पास थुय किय सचो जवि ।
पदरासय भट्ठुतरइ ।
माह मासि सिय परव दुइजवि ।
पढहि गुणहि जे नारि नर ।
तहि मन पूरइ आस ।
इय जाणे विणु नित्त तुहु ।
पढि पडित मल्लिदास ।।२७।।

।। इति श्री पार्श्वनाथ सकुन सत्तावीसी समाप्ता ।।

□□□

महाकवि ब्रह्म रायमल्ल
एवं
भ० त्रिभुवनकीर्त्ति पर मंगल आशीर्वाद

परम पूज्य एलाचार्य १०८ श्री विद्यानन्द जी महाराज

समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागो मे प्रकाशित करने की श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर की योजना बहुत ही समयानुकूल है। इस योजना मे बहुत से अज्ञात एव अप्रकाशित जैन कवि प्रकाश मे आ सकेगे। सम्पादन एव मूल्याकन की दृष्टि से अकादमी के प्रथम पुष्प 'महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एव भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति" का बहुत सुन्दर प्रकाशन हुआ है। हमारा इस अकादमी को आशीर्वाद है। समाज द्वारा अकादमी को पूर्ण सहयोग साहित्य प्रेमियो को देना चाहिए, ऐसी हमारी सद्भावना है।

× × ×

आचार्य कल्प परम पूज्य १०८ श्री श्रुत सागर जी महाराज

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी द्वारा अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित करने की योजना महत्वपूर्ण एव उपयोगी है। हिन्दी भाषा की अज्ञात एव अप्रकाशित रचनाओ को प्रकाश मे लाने का जो काय प्रारम्भ किया है उसमे अकादमी एव पदाधिकारी गणो को सफलता प्राप्त हो यही मगल आशीर्वाद है।

☐ ☐ ☐

अनुक्रमणिका

ग्राम एवं नगर

कवि, विद्वान् एवं श्रावकगण

कृतियां

जाति एवं गोत्र

□□□